॥ हरिः ॐ ॥

श्रीमोटा के साथ वार्तालाप

लेखक

रतिलाल मेहता

अनुवादक

डॉ. कविता शर्मा 'जदली'

संपादक

रजनीभाई (हरिः ॐ आश्रम, सुरत)

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

● **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम,
कुरुक्षेत्र महादेव मंदिर के बाजु में, जहाँगीरपुरा, वाया रांदेर,
सूरत - ३९५००५
फोन : (०२६१) २७६५५६४ / २७७१०४६
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© हरि:ॐ आश्रम, सुरत : ३९५००५

● प्रथम संस्करण २०१२

● **पृष्ठ :** ८ + २७२ = २८०

● **मूल्य : ३०-०० रु.**

● **टाईटल डिजाइन : मयूर जानी,** मो. ९४२८४०४४४३

● **प्राप्तिस्थान :**
(१) हरि:ॐ आश्रम, जहांगीरपुरा, सूरत - ३९५००५
(२) हरि:ॐ आश्रम, पो. बो. नं. ७८, नड़ियाद-३८७००१

● **टाईप सेटींग : अर्थ कॉम्प्यूटर**
२०३, मौर्य कॉम्प्लेक्स, सी. यू. शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटेक्स, अहमदाबाद-३८००१४ फोन : (०७९) २७५४३६९९

● **मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.**
सिटी मिल कंपाउंड, कांकरिया रोड, अमदावाद-३८००२२
फोन : (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिः ॐ ॥

समर्पणांजलि

हरिः ॐ आश्रम, सुरत में अब तक १५ बार २१ दिन की मौन साधना करनेवाले, मूल गाज़ियाबाद, उत्तरप्रदेश के निवासी, पिछले २३ साल से बंगलुरु में श्री स्वामी विवेकानंद युवा अनुसंधान संस्थान में निःशूल्क सेवा करनेवाले, पुस्तक प्रकाशन कार्य में पहले पुस्तक पठन एवं मुद्रणशुद्धि के कार्य में माहिर, हिन्दी, अंग्रेजी एवं जर्मन भाषा के विद्वान, पाली एवं संस्कृत भाषा के पुस्तकों के प्रुफरीडींग के अभ्यासु, हरिः ॐ आश्रम सुरत से प्रकाशित पू. श्रीमोटा के हिन्दी एवं अंग्रेजी पुस्तको के प्रुफरीडींग में मददकर्ता, जिन्होंने अपने वील में पू.श्री के चरणों में कुछ जमा राशि का प्रबंध किया है, एसे ज्ञानमार्ग से प्रभुप्राप्ति की दिशा में मग्न, एकाकी साधक जीव,

श्री नोगेन्द्रजी उजागरमल जैन

को अत्यंत प्रेम और सन्मानपूर्वक 'पू.श्रीमोटानी साथे वार्तालाप' पुस्तक का हिन्दी अनुवादित प्रथम संस्करण समर्पण करते हुए हम आभार की अनुभूति व्यक्त करते हैं ।

दिनांक : १३-१०-२०१२ **ट्रस्टीगण**
आसो वदि अमास, दिपावली हरिः ॐ आश्रम, सुरत
वि. सं. २०६८

॥ हरिः ॐ ॥

भक्तिमार्ग के जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी

('जन्मभूमि' का अवलोकन)

वर्तमान साधु परम्परा में कुछ अनोखा स्थान रखनेवाले पूज्य श्रीमोटा मौन, ध्यान एकान्तवास द्वारा अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने के मार्ग के लिए प्रसिद्ध हैं । अनेक लोगों ने उनके आश्रमों का लाभ लेकर कृतार्थता प्राप्त की है । व्यवसाय से एक रंगरेज के पुत्र-मूल नाम चूनीलाल भगत-और अनेक कष्ट उठाकर श्रीकेशवानंदजी धूनीवाले दादा, श्रीबालयोगीजी, शिरडी के श्रीसांईबाबा, साकुरी के श्रीउपासनीबाबा आदि की गुरु भक्ति द्वारा ज्ञान भक्ति का मार्ग पाकर स्वयं भी अनेक विशाल भक्त समुदाय को इसी तरह ही प्रेरणारूप बने रहे ।

जिज्ञासु भक्तों की उनके साथ बार-बार मुलाकात में प्रश्नोत्तरी द्वारा अध्यात्मज्ञान और भक्तिमार्ग की जो समझ पायी थी, उन सभी को योग्य ढंग से और प्रामाणिकता की मुहर के साथ यहाँ ग्रंथस्थ किया गया है । प्रश्नोत्तरी के अलावा अन्य भागों में पूज्य श्रीमोटा के कितने ही प्रसंग और पतली जीवन रेखाएँ भी उसमें समाहित हैं । भक्तिमार्ग के सहवासिओं और जिज्ञासुओं को यह अवश्य उपयोगी रहेगी ऐसी आशा है।

ता. २७-१२-१९९७ **रतिलाल मेहता**
मुंबई

॥ हरिः ॐ ॥

निवेदन

पू.श्रीमोटा के तमाम पुस्तक हरिः ॐ आश्रम, सुरत में मूल गुजराती भाषा में उपलब्ध हैं, इन पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद का आयोजन के अंतर्गत यह पुस्तक प्रकाशित किया गया है। मुंबाई स्थित श्री रतिलाल मेहताने पू. श्रीमोटा के साथ हुई प्रश्नोत्तरी का पुस्तक रूपमें संकलन किया है ।

पूज्य श्रीमोटा जहाँ भी उपस्थित रहते वहाँ अनेक स्वजन उनसे विविध विषय के बारे में प्रश्न करते, उनके प्रतिउत्तर में कई बार पूज्यश्रीने बाल परवरिश, गृहस्थ जीवन, जन्म, मृत्यु के विषय में विस्तृत विवरण किया है । प्रश्नोत्तरी से अतिरिक्त पू.श्रीमोटा की विनोदी बाते, स्वयंस्फुरित आशीर्वचन, देहत्याग का प्रसंग एवं उनके जीवन की तवारीख भी इस पुस्तक में शामिल है । यह सभी बातें श्री रतिलाल मेहताने पू. श्रीमोटा की मूल भाषा, ढब एवं लाक्षणिकता में पेश की है ।

हमारे ट्रस्टीगण के सदस्य श्री रजनीभाई बर्मावाला ने हिन्दी अनुवाद का पठन, संपादन, एवं मुद्रणशुद्धि उनकी जवाबदारी अनुसार किया है । अंतिम मुद्रणशुद्धि बेंगलुरु स्थित श्री नोगेन्द्र जैनने की है, हम उनके अत्यंत आभारी है ।

पू.श्रीमोटा के संपूर्ण अक्षरदेह के छापकाम में अमदावाद स्थित साहित्य मुद्रणालय प्रिन्टींग प्रेस के मालिक श्री श्रेयसकुमार

विष्णुप्रसाद पंड्याजी अपना बहुमूल्य सहयोग देते हैं । उनके भक्तिपूर्ण सहयोग से ही पू.श्रीमोटा के तमाम पुस्तक अत्यंत वाजिब कीमत से समाज में उपलब्ध है । हम ट्रस्टीगण श्री श्रेयसभाई पंड्याजी के प्रति खूब खूब आभार व्यक्त करते है।

दिनांक : १३-११-२०१२ **ट्रस्टीगण**
आसो वदि अमास, दिपावली हरिःॐ आश्रम, सुरत
विक्रम सं. २०६८

॥ हरिः ॐ ॥

अनुक्रमणिका

१. खण्ड : १ श्रीमोटा के साथ वार्तालाप १
२. खण्ड : २ श्रीमोटा का आविर्भाव २०४
१. सांईबाबा के दर्शन २०४
२. भक्तिभाव का प्रभाव २०५
३. जिसके पास दृष्टि हो वही समजे २०६
४. तब भी भक्त कहाँ ? २०७
५. बुद्धिभेद करना हमारा काम नहीं २०८
६. अब काम से फुरसत ले लो २०९
७. श्रीमोटा कैसा ध्यान रखते हैं ! २१०
८. स्वर्ग और नरक सभी समान २१२
९. साहब कहाँ से ? २१३
१०. वजन घटाया और रोग गया २१४
११. आनंद की भेंट २१५
१२. निर्भय बनाने के लिए २१६
१३. भाव विकसित करने का तरीका २१७
१४. मनोरंजन के साथ सीख २१८
१५. छोटे व्यक्ति के लिए भी करुणा २१९
१६. पूजा का स्वीकार क्यों ? २२०
१७. एक की एक लीला का मात्र छोटा प्रसंग २२१
१८. दुःख में हिस्सा चाहिए २२२
१९. विविध-संतो के विविध आचरण २२३
२०. हनुमान कूद २२४
२१. '...बारह मन के सभी जगह क्या ताले भी मारे है' २२५
२२. सोमवती अमावस के दिन २२६
२३. केवल प्रशंसा काम की नहीं २२८
२४. प्यार और कठोरता २२९
२५. ईश्वर रखें वैसा रहें २३०

२६. 'प्रेम रख सकें तो रखें' २३१
२७. बिलकुल निःस्पृही २३१
२८. महँगा कोलनवोटर कहाँ से खर्च करे ? २३३
२९. मैं कौन ? २३४
३०. केवल पुरोहित के रूप में २३४
३१. मेरे साथ थकान नहीं होगी २३५
३२. त्याग और गुणों की कदर २३६
३३. चलते फिरते भजन लेखन २३७
३४. अहम् पर प्रहार २३८
३५. भगवान को त्रिगुणरहितं नहीं कह सकते २३९
३६. वाद-विवाद से दूर २४०
३७. भक्तों के श्रेय के लिए २४१
३८. स्वजन का स्मरण २४३
३९. शक्ति का ह्रास २४३
४०. बालक क्यों बिगड़ते हैं ? २४४
४१. दिया हुआ बेकार नहीं जाता २४५
४२. 'राम रा...म' 'राम रा...म' २४६
४३. कालका माता...बचाना ! २४८
४४. सिर पर पेटी रखकर २४८
४५. ध्यानावस्था २४९
४६. सच्ची कला...विद्या २५०
४७. मदद २५१
३. खण्ड : ३ हलकी पलों में श्रीमोटा २५३
४. खण्ड : ४ बीमारी और प्रवास २६२
५. खण्ड : ५ बिदाई २६४
पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना २६६

॥ हरिः ॐ ॥

खंड : १

श्रीमोटा के साथ वार्तालाप

(अनुष्टुप)

व्यापक तत्त्व जो सूक्ष्म, गूढ़ में गूढ़ भी जो;
अनंत रीति का ऐसा, सद्‌गुरु का ही होता है ।

– **मोटा**

श्रीमोटा के साथ वार्तालाप

प्रश्न : महात्मा प्रारब्ध को बदल सकते हैं ?

उत्तर : हाँ, यह सब प्रारब्धशात् है ऐसा कुछ भी नहीं । जिसे हृदयस्थ जीवंत चेतनमय संबंध हों उसे वह योगी उपयोगी बनता है ।

प्रश्न : हमारे वर्तमान संबंध किसे आभारी होते है ?

उत्तर : पूर्वजन्म के कर्म को आभारी होता है, पर सब प्रारब्धवशात् नहीं होता । कितनी ही वस्तुएँ पुरुषार्थ के आधीन है । बुद्धि मिली हो, पर यदि उसका सदुपयोग न हो तो कोई विकास का अवकाश नहीं । यदि पुरुषार्थ भी प्रारब्धवशात् है ऐसा कहें तो 'पुरुषार्थ' शब्द उपयोग करना अर्थहीन है । कैसा भी हो, पर हमारे भावी संबंधो का निर्माण इसी जन्म में निश्चित कर सकते हैं ।

प्रश्न : मोटा, भगवान अंतर्यामी कहलाते हैं तो वे हमारे

मन की बात जानेंगे कि नहीं ? हमें किसकी आवश्यकता है, उसका उन्हें पता लगे कि नहीं ? हम उनसे मात्र प्रार्थना किया करते हों फिर कुछ माँगने की आवश्यकता रहती है ?

उत्तर : उन्हें किसी का अंतर जानने की क्या पड़ी है ? तुम्हें गरज हो तो उन्हें तुम बतलाया करो, आत्मनिवेदन किया करो, प्रार्थना किया करो, यानी उसके साथ 'साइकिक कोन्टेक्ट' – चैत्य संबंध बनेगा । और तभी वे हमें जानेंगे, क्या रास्ते में आते जाते किसी भी मनुष्य की 'खबर' रखने की उन्हें गरज है ? अरे ! संसार में कोई किसी को ऐसे ही कुछ नहीं दे देता है । तो इस मार्ग में बिना मेहनत के प्राप्त हो ऐसी आशा रखना बिलकुल मूर्खता है । उसके साथ हिलमिल, जुड़, गल जाओ । फिर देख लो उसका चमत्कार – यदि तुम उसे चमत्कार कहते हो तो । सर्वभाव और सर्व तरह से उसे यदि अपना समर्पण किया होगा तो फिर तुम्हें कुछ माँगना नहीं होता है । इसलिए यह सोचना चाहिए कि हमने ऐसा समर्पण किया है ? बाकी, ईश्वर के पास माँगने में कोई खराबी नहीं है । यह भी एक प्रकार की प्रार्थना है ।

प्रश्न : मेरे भाई मुझे कहा करते है, 'तुम श्रीसत्यसांईबाबा के पास जाते हो तो अपनी परीक्षा के लिए क्यों नहीं पूछते ?' मैं कभी अपने स्वार्थ के लिए किसी के पास नहीं जाता और कुछ माँगता भी नहीं । तो वह क्या गलत है ?

उत्तर : हम निष्काम हुए हों तो निष्काम भक्ति होती है । तुम निष्काम हुए ?

प्रश्न : नहीं, जी ।

उत्तर : तो, मनुष्य प्रारंभ में एकदम निष्काम नहीं हो जाता, इसलिए भगवान के आगे निवेदन करना, प्रार्थना करनी इसमें कोई गलत नहीं । निष्काम हुए हों तो भक्ति की जरूरत नहीं रहती । गीता में कहा है – मेरे चार प्रकार के भक्त हैं : (१) आर्त[१] (दुःखी), (२) अर्थार्थी और, (३) जिज्ञासु और (४) ज्ञानी ।

प्रश्न : जो भक्ति करता हो, वह दैनिक कर्मों के प्रति मंदता रखे सही ?

उत्तर : बहुत ही शुरुआत में ऐसी मंदता आये, क्योंकि तब उसे पता नहीं होता, पर जब भान होता है कि करने का काम ठीक उत्तम ढ़ंग से होना चाहिए और भक्ति भी साथ-साथ होनी चाहिए । तब सब ठीक ढंग से चलता है । सच्ची भक्ति इसका नाम –

---

१ : आर्त : कोई प्रकार की आधि, व्याधि या उपाधि आदि दुःखो से व्याकुल होकर उसमें से छूटने के लिए केवल भगवान का आश्रय लेनेवाला ।

अर्थार्थी – इस लोक और परलोक में केवल भगवान के द्वारा भगिसाधन चाहनेवाला ।

जिज्ञासु – आत्मज्ञान पाने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए भगवान की भक्ति करनेवाला ।

ज्ञानी – विवेकशील, आत्मनिष्ठ, निष्कामी सहज भक्ति करनेवाला जीवन्मुक्त संत ।

(अनुष्टुप)

भक्ति, उत्साह, उमंग, उल्लास, होश, उद्यम;
प्रेरित करे कर्म भक्ति का क्रम ऐसा सनातन ।

प्रश्न : विकारों का आक्रमण हो तब क्या करें ?

उत्तर : तब तुरन्त सजग हो जाँए, मनपसंद भजन गाँए । जोर से नामस्मरण करें । रात को ऐसे अधिक आक्रमण हो, तब बिस्तर पर बैठ जाना है । भजन, नामस्मरण बैठकर करें, दूसरा सद्वाचन करें । बिस्तर पर पड़े रहने से ऐसे विचार अधिक आते है ।

प्रश्न : सद्गुरु बनाने की आवश्यकता सही ?

उत्तर : गुरु तो तुम्हारे अंदर बैठा है । वेदांत के रूप में कहें तो गुरु खोजने जाने की आवश्यकता नहीं । सच्ची जिज्ञासा जागी होगी तो सभी स्पष्टीकरण अपने आप हो जायेंगे और मार्ग दीखेगा । अभ्यास करें ।

प्रश्न : सभी संत एक ही है यह सही, तब भी अलग अलग संतो के दर्शन करने जाने पर उनका शरीर बीच में आता है, इसलिए हमारे गुरु का विस्मरण हो जाय उसका क्या ?

उत्तर : किसी भी संत के दर्शन करने हम जाते है, तब हमें अपने सद्गुरु के भाव को दृढ़ रखना है ।

प्रश्न : और सद्गुरु को याद करके पुकारें तो वे हमें याद करें सही ?

उत्तर : नहीं, उन्हें क्या पड़ी है ? हाँ, द्रौपदी की तरह हृदय में, हृदय से आर्त पुकार करें, तभी वे हिलेंगे, पर ऐसी भक्ति

कहाँ है ? पर ऐसा हो कि किसी कोने में पड़ा, गुफा में रहता संत अपने भक्तों को याद करता हो । (जिसका पता उन भक्तों को नहीं होता, तब वे भक्त न हुए हों ।) वैसे संत अपने भक्तों को सूक्ष्म रूप से मदद करता होता है और जब भक्तों का काल पके, तब उनके सद्‌गुरु की ओर मुड़ते होते है ।

प्रश्न : मोटा, आपको करांची में सांईबाबा के दर्शन हुए अथवा आपको आपश्री मिलते यह आपको पहले से पता लगता ईस लिए क्या आप जाते और पश्चात् मिलना होता ?

उत्तर : नहीं, अचानक दर्शन हुए ।

प्रश्न : आपने ईद के दिन (करांची में) नमाज पढ़ी ? फिर आपको वे किस तरह मिले ? क्या आप उनके कहने से नमाज पढ़ने गये थे ?

उत्तर : नहीं, मैं अपने आप गया था । वहाँ से लौटते हुए रास्ते में अचानक सांईबाबा के दर्शन हुए ।

प्रश्न : कितनों को सांईबाबा की आवाज सुनाई देती है, जैसे कोई सूचना देते हैं, ऐसा कितने ही कहते है । यह संभव है ?

उत्तर : हाँ, संभव है ।

प्रश्न : आपका चमत्कार के विषय में क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : चमत्कार करनेवाली शक्ति का मूल्यांकन कम नहीं करना चाहता । यद्यपि बालक का जन्म होता है, यह कोई कम चमत्कार है ? हम सभी हवा से ही जीते हैं, यह भी जैसा तैसा चमत्कार नहीं है ? इसलिए चमत्कार को महत्त्व न दें ।

जीवन में गुण और भावना प्रगट हो, उसके प्रति महत्त्व प्रगट होने दो । चमत्कारों से भक्ति अधिक फैलती या नवपल्लवित नहीं होती, नवांकुरित नहीं होती ।

प्रश्न : मौन-एकान्त मंदिरों से क्या लाभ होता ?

उत्तर : मौन-एकान्त मंदिरों का समय मेरे मन में तो **इस जीव** के साथ उन उन जीवों के जुड़े रहने की किया है । यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे में से कोई भी मेरे साथ नहीं रह सका होता । **प्रत्येक जीव के मौन-एकान्त का काल मेरे मन एक बहुमूल्य और फिर न मिल सके ऐसा अमूल्य काल है ।** जब कि इन मौन-मंदिरों में थोड़े दिन बैठने से जीव कोई एकदम शिव नहीं हो जाएगा, पर उससे शिव होने की संभावना है सही । सतत नामस्मरण अथवा तो किसी न किसी ढंग से प्रभु की भावना को निरन्तर रख सकने के प्रयत्नों में से प्रभुकृपा से जीव को 'लग' जाय । और एक बार जिसे 'लगा' उसे हमेशा के लिए 'लगा' है । इसप्रकार, मौन मंदिर में सुदृढ़ प्रभु-भावना के संस्कार पड़ते हैं, यह हकीकत है और वे संस्कार उदयमान हुए बिना नहीं रहेंगे ।

प्रश्न : हमारा उद्धार किस तरह हो सकता है ?

उत्तर : चरण के रज की भी रज हुए बिना किसी का उद्धार नहीं हो सकता ।

प्रश्न : अलग अलग संत अलग अलग ढंग से व्यवहार करते है । आविर्भाव भिन्न भिन्न होता है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर : प्रकृति और गुण के कारण भी वे ऐसा व्यवहार करते है । यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं कि वे दूसरा कुछ जानते नहीं होते । महंमद पैगंबर उनके काल में अमुक ढ़ंग से बोलते, कहते क्योंकि उस काल के समाज की दशा और संयोगों के अनुसार वे सभी व्यवहार करते है । इसके अलावा अमुक मूल्यांकन प्रवर्तमानकाल और देश अनुसार बदलते जाते है । उस काल में जो अर्थ उसमें प्रगट होते है, वही दूसरे काल में उससे अधिक विस्तरित अर्थ भी प्रगट कर सकता है ।

प्रश्न : मनुष्य मृत्यु पश्चात् प्राणीयोनि में जन्म लेगा सही ?

उत्तर : मनुष्य में पाँच तत्त्व - मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् कम ज्यादा अनुपात में विकसित होते है । इसलिए कर्म अनुसार उन पाँच तत्त्वों में से जिस तत्त्व का विकास अधिक हो, उसके अनुसार उन उन तत्त्वों के गुण लेकर वह मनुष्ययोनि में जन्म लेता है । ऊपर के पाँच तत्त्व मात्र मनुष्य में ही होते है । उन तत्त्वोंवाला मनुष्य प्राणीयोनि था अन्य जीव जंतुवाली योनि में किस तरह जन्म सकता है ? पर इससे उल्टा क्रम भी हो सकता है । यदि कोई पशु पर संत पुरुष ने प्रेमभाव रखा हो तो वह उसके दूसरे जन्म में मनुष्ययोनि में जन्म ले सकता है । उदाहरण - श्री रमण महर्षि को एक गाय पर प्रेम था । जिसे वे 'लक्ष्मी' कहकर बुलाते थे । उसकी मृत्यु उनके सांनिध्य में हुई थी । उसका उद्धार हो गया होगा ।

प्रश्न : धर्म अर्थात् क्या ? सच्चा धर्म कब व्याप्त होता है ?

उत्तर : रुढ़िगत दिखावा अर्थात् धर्म नहीं है, परन्तु **प्रजा में गुण और भावना पैदा हो ऐसा आचरण, उसका नाम धर्म । गुण अर्थात् साहस, हिंमत, धैर्य, तितिक्षा, देशप्रेम, सद्‌भाव, प्रामाणिकता, त्याग आदि । भावना यानी प्रभुप्रीत्यर्थ सबकुछ करने की तमन्ना ।** भावना सरेश का काम करती है । यह सूक्ष्म है । गुण और भावना सचमुच प्रगट हो गये हो तो वह सच्चे धर्म का प्रतीक गिन जाएँगे । **ऐसे गुण युवा पीढ़ी में पैदा कराने के लिए मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ ।** भावरहित काम बांझ है ।

प्रश्न : रामावतार चौदह कलावाले, श्रीकृष्ण सोलह कलावाले गिने जाते है, यह ठीक है ?

उत्तर : श्रीरामचन्द्र भगवान की शक्ति श्रीकृष्ण से कम थी, ऐसा मानना गलत होगा । उनके समय में कालधर्म में उन्हें इतनी ही कलाओं का उपयोग जरूरी था । बाकी उनकी शक्ति श्रीकृष्ण भगवान जितनी ही थी, परन्तु आवश्यक लगी उतनी ही उपयोग की । किसी काल के संत महात्मा के छोटे बड़े का माप उसकी प्रसिद्धि या व्यक्तता नहीं है । संतों को मापने का प्रयत्न मत करो ।

प्रश्न : इसका अर्थ यह है कि सारे संत एकसमान विकास प्राप्त किये होते हैं ?

उत्तर : इस क्षेत्र में 'धस फार एन्ड नो फर्दर' जैसा नहीं है । सतत विकास होता ही रहता है पर साधक को ऐसी तुलना में कभी नहीं पड़ना चाहिए । हमारी ऐसी दशा होने पर सब

कुछ सच स्वयं ही समझ में आ जाएगा । सभी संत प्रभु की विभूतियाँ हैं, ऐसी दृढ़ भावना अपने हृदय में रखें । प्रत्येक संतात्मा में छोटा बड़ा कुछ भी नहीं । जिस प्रकार के काम के निमित्त बने हों और उसमें जितनी शक्ति उपयोगी हो उतनी ही वह उपयोग करेगा ।

प्रश्न : सच्चे झूठे चमत्कारों के बीच समझ नहीं आता, इसे कैसे समझें ?

उत्तर : जैसे सूर्य की गरमी और प्रकाश सहज है, अंगारे की गरमी कुदरती है, उसी तरह आत्मनिष्ठ मनुष्य में आत्मा का प्रकाश सहज रूप से प्रकाशित होता है । उसकी आत्मा की शक्ति भी जीवन में व्यक्त होती है सही, पर वह बाहर आती है किसी निमित्त के कारण । दूसरे भी एक प्रकार का चमत्कार करते है । जैसे कि महंमद जैसा आदमीने । वे आध्यात्मिक नहीं होते । अर्थात् वे सहज नहीं होते, इतना तुम्हें समझाने हेतु कहा । किसी का मान भंग करने का उद्देश्य नहीं है ।

प्रश्न : श्री सांईबाबा की इतनी भक्ति से उन्होंने कृपाकर अनुग्रह किया और अपनी लीला दिखाई, तब भी पतन के समय में वे बचा क्यों नहीं लेते ?

उत्तर : अरे भाई, यह तो गप्प है । वे तो प्यारे ऐसे दयालु हैं कि तुम्हें खुश करने जरा कुछ लीला बताये, इसलिए तुम लोग ऐसा समझो कि तुम्हारी भक्ति से वे खुश हुए हों । जाने दो यह बात । कहाँ है तुम्हारी भक्ति कि जिससे वह तुम्हारे आगे चौबीस घण्टे हृदय में खड़े रहें ? कोई शेठ कब तुम्हें खुश होकर

ईनाम देगा ? यदि ऐसा सुरुचि के साथ वफ़ादारीपूर्वक और प्रामाणिक रूप से नौकरी की हो तो । इस क्षेत्र में इससे भी अधिक अच्छी नौकरी और सेवा करनी पड़ती है । सर्वभाव से उसके शरण में जाओ, फिर वे तुम्हारे सामने देखेंगे । और पतन के विषय में कहना है कि उतारचढ़ाव इस मार्ग में आते हैं, पर जो तुरन्त खड़े हो जाय यह ही सच्चा साधक कहलाएगा । ईश्वर साधना के आगे के मार्ग में सहायता करता होता है । पर प्रथम तो तुम्हें भारी तमन्ना से कूद पड़ना है ।

प्रश्न : 'आप स्त्रीशरीर को पुरुष के शरीर से अधिक बढ़कर है ।' अनेक बार कहते हो यह किस तरह इसे समझाओगे ?

उत्तर : स्त्री के शरीर में सर्जन की कला रही होती है । जिसमें सर्जनशक्ति है, वह प्रभु की चेतनशक्ति की द्योतक चेतनारूप है । वह सृष्टि के लीला विस्तार में महत्त्वपूर्ण योगदान है । उसकी सहनशक्ति अपार है । उसमें प्रेमार्द्रता, कोमलभाव, माधुर्य, मार्दवता, आकर्षण शक्ति, त्याग, श्रद्धा, आत्मस्मर्पण आदि अनेक गुना पुरुष जीव से स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ करता है ।

प्रश्न : तो पुरुषजीव का कोई महत्त्व नहीं ?

उत्तर : पुरुष अंतर्गतता साक्षी रूप में व्याप्त होता है । स्त्रीजीव में दैवी प्रकृति के गुण सविशेष प्रमाण में – उसे सर्जन करने का होने से – होता है । यद्यपि उसे पुरुषजीव का आधार आवश्यक होतै है तो मात्र सूक्ष्म आधाररुप में ही । बाकी तो सभी कुछ उसे ही करना होता है ।

प्रश्न : शास्त्रों में स्त्री की निंदा की है उसका क्या ?

उत्तर : कहलाती निंदा का उद्देश्य पहचानें । शास्त्र में स्त्रीजीव की निंदा की है ऐसा कुछ नहीं, वहाँ तो वृत्ति की निंदा की है । वृत्ति में स्त्रीत्व या पुरुषत्व कुछ भी नहीं । उसमें प्रकृति के नीचले स्तर की वृत्ति से पराङमुख होने के लिए यह सब लिखा है । बाकी, गीता में 'भगवानने नारिओं में स्मृति, मेधा धृति आदि हूँ ।' ऐसा कहा है । इसलिए उसमें जैसे गुणों को ही स्त्री कहा है । उसी प्रकार शास्त्रों में स्त्रीजीव की निंदा की है ऐसा कुछ नहीं । स्थूल अर्थ करने जाये तो शास्त्रों और महात्माओं को (जिन्होंने ऐसा कहा है उन्हें) अन्याय हो जाएगा । बाकी, स्त्रीत्व या पुरुषत्व तो दोनों पुरुषजीव तथा स्त्रीजीव में कम ज्यादा अंश में कहाँ नहीं रहते ?

प्रश्न : मन की शांति के लिए त्राटक आदि साधन सूचित किये गये हैं, वह कितनी सीमा तक फलदायी होते हैं ?

उत्तर : हेतु के ज्ञानभान बिना होते कोई भी साधन हमें लाभ करने के बदले नुकसान करता हैं । त्राटक आदि जो होता है, इससे एकाग्रता पाते है, पर उसका उपयोग किस लक्ष को पाने के लिए है, उसका यदि भान न हो तो बेकार है । कितने धर्मों में अनेक लोग बहुत दिनों के उपवास करते है, पर उससे हमारे रागद्वेष कितने कम होंगे, उसका उन्हें ज्ञानभान नहीं रहता । हम संयम करें, उपवास करें, तो उसका हेतु हमारे सामने होना चाहिए । यदि उद्देश्य की स्पष्टता बिना और संसार में रचेपचे रहकर त्राटक जैसे साधन करें तो उल्टा हम जीवदशा की वृत्तिओं में अधिक गहरे जाते जाएँगे और निम्नगामी वृत्तियाँ अधिक

मजबूत हो जाएँगी । इससे उल्टा यदि जीवनविकास के उद्देश्य के साथ यह साधन होता हो तो हम कदमकदम पर सजग होंगे । और ऊर्ध्व विकास के लिए ही यह साधन है, इसका महत्त्व समझ आएगा । और तभी मन को सचमुचकी शांति मिलेगी । इसलिए कितने भी त्राटक, कितने भी उपवास हेतु की स्पष्टता बिना होते हमें कोई शांति नहीं दे सकते । साधन के प्रयोग के साथ साथ समर्पणभाव व्यक्त होते रहना चाहिए ।

प्रश्न : कितने ही योगी दूसरों के दु:ख-दर्द स्वयं पर ले लेते होते हैं, यह क्या है ?

उत्तर : *'वीकेरियस सफरिंग'* की बातें तो प्रसिद्ध है । इसतरह आत्मनिष्ठ उच्चतम स्तर पर पहुँचते दूसरे जीवों में होते रोग, उस आत्मनिष्ठ में, तादात्म्यभाव के कारण होते है । कितनी ही बार दूसरों के दु:ख, उसमें प्रगट होकर चले जाते हैं और कितनी ही बार सीधे अदृश्य रूप में चला जाता है । इसका पता सामने के जीव को नहीं लगता, प्रयत्न करके दूसरों के दर्द ले लेते हों, ऐसा नहीं । यह क्रिया सहजरूप से, उपरोक्त जैसा कहा वैसे महात्मा के उन उन जीवों के साथ के तादात्म्यभाव के कारण होता है ।

प्रश्न : ध्यान के समय भाव जागे वह अच्छा ?

उत्तर : ठीक नहीं, किसी भी दौर में *एब्स्ट्रेक्ट* (अव्यक्त और निराकार) भाव जागे यह ठीक नहीं, परन्तु उदाहरण - तब मेरे प्रति भी प्रेमभाव जागे तो वह न आने दो, पर भगवान का भाव रहे और काम करे ऐसा ही होना चाहिए । ध्यान के समय

विचार तरंगें आती हों तो उसे आकर बह जाने दो और उसके अनुगामी विचारों में पड़ न जाँय यह ख्याल रहना चाहिए ।

प्रश्न : ध्यान के अंत में प्रार्थना हो सकती है ?

उत्तर : अवश्य हो सकती है । प्रार्थना के समय चित्त या लक्ष हृदय पर रखें । यद्यपि **प्रार्थना भी एक प्रकार का ध्यान है ।** प्रार्थना साकार है । ध्यान निराकार है । भाव की वृद्धि के लिए प्रार्थना का आधार लेते हैं । **भावना का भाव में लय हो जाय, यह प्रार्थना का रहस्य है ।** ध्यान और प्रार्थना का परिणाम यद्यपि एक समान है ।

प्रश्न : जब शरीर स्वस्थ न हो, तब ध्यान किस तरह करें ?

उत्तर : सोये सोये ध्यान हो सकता है । सोये सोये पलांथी लगाकर करना अच्छा । बाकी, लम्बे पैर करके अंगूठे से अंगूठा लगाकर भी हो सकता है । ध्यान के लिए आसन की आवश्यकता प्रारंभ में अवश्य ही रहती है । पश्चात् जब साधक उसमें लीन हो जाता है, तब किसी प्रकार के आसन की उसे जरूरत नहीं होती । हमारी प्रत्येक आदत से हमारी संकल्पशक्ति कैसे बढ़े इसे देखकर अपना काम निश्चित करें ।

प्रश्न : संयम अर्थात् क्या ?

उत्तर : संयम अर्थात् जीवन का संपूर्ण रूप से रक्षा करने को योजित आचार की दीवार । संयम में अपने प्रति कठोर से कठोर होना होता है । क्योंकि इसके बिना रक्षा करने का कोई मार्ग नहीं । परन्तु साथ ही साथ अंतर में रहकर अंतर से बल पैदाकर प्रत्येक आचार-विचार की वह चौकी करता है । शरीर

जैसे त्वचा से पूरी तरह बंधा रहता है और अंदर के जीवनदायी पदार्थ टिककर बढ़ते हैं, वैसे खिलते जाते आंतरिक जीवन के आसपास ज्ञानात्मक संयम का कवच अनिवार्य है ।

प्रश्न : संयम की कोई सीमा होती है सही ?

उत्तर : हाँ, उसका अतिरेक न हो जाय वह भी हमें देखना है । समझ बिना का अतिरेक विधातक होता है । सरल अर्थ में संयम अर्थात् जीवन में आचरित भावों की सीमा अथवा समभाव की सीमा । 'समभाव की सीमा' इसलिए कि सभी जीव और अपने प्रति समभाव भरा व्यवहार रखनेवाले को हमेशा ऐसी सीमा की आवश्यकता रहती है । यह सीमा साधु पुरुष को ही मात्र नहीं, पर प्रत्येक के लिए अनिवार्य है ।

प्रश्न : सच्चे संयम का लक्षण कैसा होता है ?

उत्तर : जो सच्ची प्रामाणिकता और नेक दानत से व्यवहार करता है, उसके जीवन के बाह्याचार में उसके अंतर के संयम की छाप थोडी भी वह नहीं पड़ने देगा । जिस संयम को बारबार व्यक्त होना होता है, वह संयम ही नहीं है । संयमी जीवन स्वयं ही अपने जीवन में शक्ति प्राप्त करता है, ऐसी इस संयम की शक्ति है ।

प्रश्न : भक्ति किसे कहेंगे ?

उत्तर : भक्ति यह ऊर्मिमय जीवन नहीं, बनावटी भी नहीं; उसकी नींव ज्ञान के वास्तविकता भरे हकीकत भी ठोस नींव पर रची है । **भक्ति अर्थात् मनादिकरणों को सतत निरन्तर उसके प्रिय चिंतन में गोंद या सरेश की तरह चिपका के**

रखे, तब उसे भक्ति कह सकते है । भक्ति के लिए हृदय के उन्माद और उत्कटताभरे विशाल, अपार भाव की जरूरत रहती है । भक्ति परम पराक्रम और शौर्य से भरी है ।

प्रश्न : भक्तिभाव सभी संतो के प्रति रखें या एक के प्रति ?

उत्तर : एक के प्रति । जिस जीव का मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि का समर्पणभाव एक संत में हो जाता है, तब उसे दूसरे किसी संत द्वारा भी उसमें वैसा ही भाव प्रेरित होता है । **उस जीव** को गुरुमहाराज के स्थूल शरीर के अतिरिक्त दूसरों के पास से भी साधना सीखने का श्रीप्रभुकृपा से मिल सका है । यदि हृदय से सच्ची तरह एक को पा सके, तो अनेक को भी पा सकते है । जो एक को इसतरह, सर्व तरह से और सर्वभाव से चयन किया है, ऐसे जीव में भी प्रत्यक्ष उस उस दशा के लक्षण पैदा होते है ।

प्रश्न : जिसने एक को चयन किया हो, उस जीव में कैसे लक्षण दीखेंगे ?

उत्तर : ऐसे जीव में एक प्रकार का जनून और धुन लगी होती है । उसके भाव की उत्कटता जैसी तैसी नहीं होती । एक संसारी जीव तो मात्र खाली बात करनेवाला होता है और दूसरा ऐसे क्षेत्रों का जीव पर जिसका मन एक को ही चुनने का हुआ है और जिस तरह वह आतुर है – उन दोनों जीव के व्यवहार, आचरण और बोली में अंतर आये बिना नहीं रहता है ।

प्रश्न : सद्गुरु मुख्य काम क्या करते है ?

उत्तर : माँ बालक को पालती है, तो उसके मलमूत्र का उसे संग करना ही पडता है । बालक के मूत्र से गीले हुए में भी सोना पड़ता है, क्योंकि बालक के प्रति माँ की प्राकृतिक प्रेरणा, उसे उस अनुसार व्यवहार कराती है । उसी तरह ही सद्गुरु का है ।

प्रश्न : गुरु की प्रथा पर अनेक लोग प्रहार करते है, इसका क्या कारण होगा ?

उत्तर : जीवनविकास की भावनावाले जीव तो बहुत ही विरल, कम प्रमाण में होंगे । तथा चेतन की अपेक्षा से चेतन को प्रगटकर प्रेरित कर सके ऐसे सद्गुरु भी विरल ही होंगे । समाज में अनेक अपनी स्वार्थी कामनाओं की पूर्ति के लिए, उस प्रकार के गुरु में उलझ जाते है । ऐसे गुरुशिष्य के प्रकार में दोनों को नुकसान ही होता है । इससे उस पर प्रहार हो, यह बिलकुल यथार्थ ही है ।

प्रश्न : ज्योतिषशास्त्र विषयक आप क्या मानते है ? उस पर कितना आधार रख सकते है ?

उत्तर : एक शास्त्र के रूप में उसकी गिनती सही, परन्तु सभी उसमें से निकला सच है, ऐसा कुछ भी नहीं । यह न बतलाए यही उत्तम । दिखाने के बाद उनके ऐसे विचार तो दिल में बैठ जाते है और फिर वैसे विचार हमें सताया करते है । इसलिए या तो बतलाएँ नहीं या दिखलाने के बाद उसका संतोष हो इस तरह तथा दिखलाने से हमारे मन में प्रवेश कर गये विचार को शांति मिले उसके अनुसार वैसा करें तो अच्छा । तब भी

ज्योतिष पर श्रद्धा न हो उतना ही उत्तम । ज्योतिष पर सारा आधार रखनेवाले दुःखी होते है, ऐसा मेरा मत है । ग्रह आदि जो मत दर्शाते है, उसे पुरुषार्थ और प्रभुकृपा से बदल भी सकते है, ऐसा मैं मानता हूँ ।

प्रश्न : 'मातृपितृदोष' हो तो वह 'नारायणबलि' कराने से दूर हो जाता है, यह बात सच है ?

उत्तर : 'नारायणबलि' तो बनावटी बात है । यदि ऐसे मातृपितृदोष के विचार आया ही करें तो उस समय सच्चे दिल से प्रार्थना किया करें, यह उपाय उत्तम है । और नामस्मरण तो चलतेफिरते करते रहे । ऐसे स्मरण से शरीर के आरोग्य को भी मदद मिलती है । यह कोई मन की कल्पना नहीं है । नामस्मरण जीवन के सर्वक्षेत्र और पहलू में मददरूप, उत्साहप्रेरक है ।

प्रश्न : मृत्यु के विचार आते ही भय लगता है, तो क्या करें ?

उत्तर : प्रार्थना करें । पर मृत्यु का विचार ही न करें क्योंकि जो हमारी इच्छा अनुसार तो होगा ही नहीं, इससे पहले या बाद का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता । फिर, ऐसे विचार मन की कमजोरी बतलाते है । डर तो निकलना ही चाहिए । जिसका भी डर लगता हो, वह उस तरह के पड़े हुए संस्कारों के कारण है । इसलिए सही समझ से वैसे सभी डरों को निकाल डालें । उल्टा डर के विचार मनुष्य को उसमें अधिक जकड़कर रखते है ।

प्रश्न : आप भावना पर इतना भार रखतें है, इसका हार्द समझाएँगे ?

उत्तर : जब जीवन में सचमुच की भावना आती है, तब वैसी समझ पैदा हुए बिना नहीं रहती । जिसमें ध्येय के प्रति झंखना पैदा हुई है, उसमें भावना आती है और वैसी झंखना प्रगटाने के लिए अभ्यास, उद्यम, उत्साह आदि की भी जरुरत है । इसमें से फिर गति आ सकती है और भावना हमारी आँख खोलती है, हमें वह बैठे नहीं रहने देगी । शरीर के प्रत्येक अंग की तालीम भावना में से आती है । इससे भावना को हजार हाथवाली और हजार आँखवाली कह सकते है । भावना एक रंगी होने पर अनेक रंगी भी है । भावना एक स्वरूपवाली होने पर भी बहुस्वरुपिणी भी हो सकती है । इसप्रकार भावना गुरु, माता, पिता, पति और सखा भी बनती है । इसलिए भावना के साथ हमारा सबंध हो यह आवश्यक है । स्मरण, प्रार्थना, भजन, कीर्तन आदि अभ्यास से भाव★ प्रगटता है ।

प्रश्न : चित्त की प्रसन्नता के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : साधना में पड़े जीव को यह प्रश्न नहीं होगा, क्योंकि साधना का एक लक्षण ही प्रसन्नचित्तता है । तब भी प्रसन्नता पाने के लिए निम्नानुसार करना चाहिए ।

१. प्रत्येक जीव के साथ मैत्री की भावना रखें, जिससे वैरवृत्ति कम हो ।

२. करुणा का भाव प्रत्येक के लिए बनाने का अभ्यास करें । इससे अहंकार आदि वृत्तिओं का लय होता है ।

★ श्रीमोटाने भाव पर १९७१में ८८ श्लोकों का पद्य-विवरण लिखा है ।

३. मुदिता के भाव लायें । इससे सहज ही कदरवृत्ति की भावना जागती है और परस्पर सहायता से उच्च भावना आती है । और

४. उपेक्षा अर्थात् नि:स्पृहता से लोभ, क्लेश, मोह, ममता आदि का नाश होने लगता है ।

इसके अलावा निंदा और लौकिक बातें प्रसन्नता को जन्म लेने से रोकते है ।

प्रश्न : जिस 'आत्मनिवेदन' की बात पर आप बारबार भार देते है, उसे समझाएँगे ?

उत्तर : प्रत्येक के जीवन में कोई न कोई उलझन तो आएगी ही । साधक का उसमें समावेश हो जाता है । अब यदि वह संपूर्णरूप से खुला न रह कर इससे भिन्नता न रखा करे तो वह कहीं फँस जाएगा । इसलिए साधक अपने मन के विचारों को आत्मनिवेदन की भावना से जतलाता है । जो विचार मन में सूक्ष्म रूप से छिपे पड़े होते है, वे समय जाने पर बलवान होते जाते है और हमें उल्टी पट्टी पर चढ़ाते है । इसलिए हम में 'आत्मनिवेदन' का प्रकार उत्तम प्रकार की भक्ति गिनी गई है ।

प्रश्न : कर्म अनुसार बदला मिलता हो तो फिर भगवान का नाम लेने का क्या अर्थ है ?

उत्तर : कर्म का बदला भुगतना पड़ता है, परन्तु *'शूली का विघ्न काँटे से गया'* इसके जैसा भगवान को भजने से होता है । कर्म के परिणाम की वेगात्मक मात्रा-*इन्टेन्सिटी* - घटकर

बहुत ही कम - बिलकुल सूक्ष्म स्वरुप से–नामस्मरण से हो जाएगी । यह हकीकत अनेक संत भक्तों के अनुभव की है और मुझे भी भगवान के नामस्मरण में विश्वास और श्रद्धा सही लगती है । इसलिए कर्म का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है, ऐसा कुछ भी नहीं ।

प्रश्न : दुनिया के दीखते सभी दु:ख, त्रास, अंधाधुंधी, अन्याय आदि देखकर अनेकबार ईश्वर के अस्तित्व के विषय में शंका होती है । यदि ईश्वर सचमुच हो तो ऐसा सब कैसे संभव है ?

उत्तर : ऐसे प्रश्न कितनी ही बार ऊपरी तौर पर होते है । प्रश्न पर से ऐसा लगे कि लोगों में मंथन होता है, पर यह सच में तो केवल चर्चा रूप में ही होते है । ऐसी चर्चाएँ विशेषकर सभ्य कहलाते लोगों की होती है । मेरे मत से ऐसे लोग जड़ लोगों से भी तुच्छ है । जिसे सच्चे दिल से मंथन होगा, उसे एक दिन उसकी समझ आएगी । जगत के बड़े हिस्से के मनुष्यों के हृदय में किसी न किसी प्रकार के भगवान या देव विषय की भावना रही हुई है । इसलिए ऐसा कह सकते है कि यह भावना सुषुप्त रूप में पूरे जगत में रही है । यह हकीकत हमारे गले पूरीतरह उतरी हो तो हमारे जीवन के ध्येय को सतत अधिक से अधिक तमन्नावाले बनाएँ । इसके लिए नामस्मरण यह बड़े से बड़ा साधन है ।

प्रश्न : भावदर्शन और आकृतिदर्शन, यह दोनों क्या हैं ?

उत्तर : हम जिस सद्गुरु या ईश्वर के जिस स्थूल स्वरूप

को मानते हों और उसकी छबि का पूजन-अर्चन करते हों, उसका भाव हमारे हृदय में उतारने का प्रयत्न करते है । फिर वह भाव इतना हृदय में उतरे कि छबि प्रत्यक्ष न दीखती हो, तब भी मन की आँख आगे और फिर तो हृदय के स्थान पर वह प्रत्यक्ष दिखती है । इस साधना को और उसके परिणाम को मैं 'आकृतिदर्शन' नाम देता हूँ ।

पर भावदर्शन इससे आगे की स्थिति है । जो कोई भी अपना पूज्य हो, उसकी आकृति के सूक्ष्म दर्शन के साथ हमारे में ऐसा भाव जागे कि वह आकृति तो भगवान का व्यक्त स्वरूप है । यानी कि भगवान उसके हृदय में सदा बसे है, ऐसा भाव हमारे मन में जागे और यह भाव सतत हृदय में रहे, तब ऐसे भाव के साथ का दर्शन 'भावदर्शन' कहलाता है ।

जब जब उस पूज्य व्यक्ति का विचार करें, उन्हें व्यक्ति के रूप में न विचारें या न देखे, पर उसे चेतनभाव से हृदय से पहचान सके तो उस भावदर्शन में हमारी प्रगति हुई कहलाएगी । और अंत में उस व्यक्ति के बदले उसके पीछे रहा सूक्ष्म भाव ही हम अनुभव करते है और हम स्वयं ही अनुभवमय हो जाये, तब 'भावदर्शन' की साधना फलीभूत हुई कहलाएगी । और फिर यह सूक्ष्म भाव सभी जगह और सभी समय हमें अनुभव होगा ।

प्रश्न : दिल को रुपान्तर करने की शक्ति आप नहीं दोगे ?

उत्तर : दिल से दिल हिलमिल, पिघल जाय और हमारा मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् - इन कारणों के जैसी

हेतुलक्षी सभानता आती जाय तो ऐसी शक्ति मिलकर ही रहेगी । और अहम् की गूँज भी नहीं सुनायी देगी और पूर्ण रूप से नम्रता आएगी और शरणागति की भावना जीवंत बनती जाये, तभी चेतन की शक्ति काम करने लग जाएगी सही । शक्ति माँगने से मिले ऐसा तो खास कुछ नहीं । हमारा दिल स्वीकारात्मक और सहकारयुक्त *'रिसेप्टीव* और *रिस्पोन्सिव'* हो तो वह शक्ति प्राप्त होने के अनुभव बिना नहीं रह सकती ।

प्रश्न : स्वप्न आते हैं तो क्या सूचित करते हैं ?

उत्तर : स्वप्न यह तो अनेक प्रकार के संस्कार जो चित्त में पड़े होते है, उनके मिश्रण का पैदा होना वही है । स्वप्न से हमें कितनी ही बार समझना होता है । जीवन के प्रति की भावना, जब दिल में सचमुच प्रतिष्ठा कर रही होती है, तब ऐसे स्वप्नों का अर्थ हम स्वयं अपनेआप मूल्यांकन कर सकते है । कितनी ही बार सद्गुरु अपने शिष्य को स्वप्न द्वारा सूचन भी करते हैं । साधना के मार्ग का बोध देते है और साधना भी करवाते है ।

प्रश्न : कितने ही मनुष्य नियमित रूप से देव मंदिर जाते रहते हैं, तब भी वे अंत समय में अनेकबार मन की शांति खोकर, व्यग्र होकर बकवास करते है, अनाप-शनाप बोलते रहते हैं और भगवान का नाम उन्हें याद नहीं आता । इसका क्या कारण है ? और इसका कोई उपाय है सही ?

उत्तर : क्योंकि उनके हृदय में भावना के विषय में सच्ची भावना नहीं होती हैं । वे मंदिर में आने जाने पर भी निंदा में मग्न रहते हैं और हेतु का ज्ञानभान नहीं रहता । इससे वे कोरे ही रहते हैं । इससे उन्हें अंतकाल में भगवान याद नहीं आते ।

इसका उपाय एक है 'जागते नर का समागम' । जागे हुए नर का सहवास अंतकाल में काम आ जाता है । इस संबंध में मेरे गुरुमहाराज ने मुझे एक अनुभव कराया था । मेरे गुरुमहाराज अनेक बार कहते, 'दिल की सच्चाई के साथ हुआ संतसमागम कैसे भी खराब मनुष्य को भी सद्‌गति होने के प्रति प्रेरित करता है ।' यह मैं समझ नहीं सका । मेरी यह शंका उनके आगे व्यक्त न की, तब भी वे उसे भाँप गये ।

और एक बार मुझे पास के (गुरुमहाराज के पास के) एक गाँव में जाकर 'मृत्युशय्या पर पड़े' एक मनुष्य को देखने जाने का हुकम किया । उस गाँव में मैं गया और जाँच की कि कोई मनुष्य भारी बिमारी से मरणासन्न है ? उसका घर मिल गया । इसलिए मैं घर में जाकर उसके बिस्तर के पास बैठा । वह सचमुच मृत्युशय्या पर पड़ा था और सन्निपात में गाली बोल रहा था । मुझे उससे ऊब तो हुई, तब भी बैठे रहा – गुरुमहाराज की आज्ञा थी इसलिए । कुछ देर बाद उसकी भाषा और भाव बदले और वह प्रार्थना करने लगा, 'हे धूणीवाले दादा ! हे गुरुमहाराज ! हे दयालु प्रभु ! मेरे गुन्हा माफ कर, मुझ पर दया कर ।' आदि । गुरुमहाराज उसके सामने उपस्थित हो, उस अनुसार वह बोलता और थोड़ी देर बाद उसने शांतिपूर्वक भगवान का, गुरु का नाम लेते लेते प्राण छोड़े । इसप्रकार 'जागे हुए' पुरुष का किया गया सहवास कैसा भी दुराचारी मनुष्य को भी सद्यमुक्ति देता है । इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रभुकृपा से हुआ ।

प्रश्न : श्रीउपासनी महाराज दुर्गाबाई के उकसाने पर पूज्य

गोदावरी माता को (उनकी छोटी उम्र दौरान) क्यों मारते थे ? दुर्गाबाई भी उन्हें मारती !

उत्तर : दुर्गाबाई पूज्य गोदावरी माता कों मारती थी, वह अपने स्वार्थ के लिए और श्रीउपासनी महाराज मारते, वह गोदावरी माता के उत्कर्ष के लिए, जो दूसरे देखनेवालों के समझ में नहीं आ सकता था । मैं ऐसा अर्थ करता हूँ । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे एक बार एक मनुष्य जा रहा था, उसे बताकर कहा, 'उस मनुष्य को पथ्थर मार....मार, मार, साले को, लहू-लुहान हो जाय इसतहर मार ।' गुरु का हुक्म कैसे तोड़ सकता था ? इसलिए उस रास्ते जानेवाले को मैंने पत्थर मारा । इसलिए उस मनुष्य ने मुझ से आकर कहा, 'अरे ! पत्थर क्यों मारा ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?' मैंने कहा, 'देखो, अपनी इच्छा से मैंने नहीं मारा । वहाँ वे गुरुमहाराज बैठे हैं न, उन्होंने मुझे तुम्हें मारने को कहा । इसलिए मैंने तुम्हें मारा । इसलिए वह गुरुमहाराज के पास गया और पूछा । तब गुरुजी ने वह कैसे खराब कर्म करने जा रहा था वह कहा । वह मनुष्य महाराज के पैरों पड़ा और रोकर पश्चाताप करने लगा । इसप्रकार, योगीजनों की बात निराली होती है ।'

प्रश्न : कहते हैं कि संत उनके देह विलय पश्चात् भी अपने भक्तों को मार्गदर्शन देते रहते है, यह सच है ?

उत्तर : हाँ, अवश्य ! गीता में नहीं कहा कि ईश्वर अवतार लेते हैं, उसी तरह संत भी, अरे, सूक्ष्म रूप से भी भक्तों को मार्ग बतलाते है ।

प्रश्न : मनुष्य आत्महत्या करने के बाद तुरन्त ही पुनर्जन्म ले सही ?

उत्तर : नहीं, ऐसा मनुष्य भूत बन जाता है, पर उसका आधार किस कारण उसने आत्महत्या की है । कामक्रोधादि वासनाओं को लेकर उसने आत्महत्या की हो तो वह भूत बनता है । परन्तु कुदरती मृत्यु होनेवाले कोई महान भक्त हो, संत महात्मा के साथ हिलमिलकर, पिघल जाता है, महान संशोधक हो तो वैसा जीव तुरन्त ही पुनर्जन्म लेगा और वासनाबद्ध जीव बहुत देर से जन्म लेता है

प्रश्न : मोटा, मैंने सुना है कि आप स्त्री का जन्म लेनेवाले हो ?

उत्तर : हाँ, क्योंकि मुझे उनके बीच उनके लिए काम करना है । वह इस पुरुषदेह से नहीं हो सकता – चाहिए उतना । पर मैं संतान पैदा करनेवाली स्त्री नहीं होऊँगा ।

प्रश्न : आप दक्षिण में जन्म लोंगे ?

उत्तर : नहीं, निश्चित रूप से नहीं ।

प्रश्न : देह छोड़ने के बाद कितने समय में ?

उत्तर : तुरन्त ही ।[३]

---

३ **:** यह उत्तर बहुत वर्ष पहले का है । देहत्याग के थोड़े समय पहले (करीब एक वर्ष पहले) उन्होंने बताया था कि वे पुनर्जन्म इतना शीघ्र नहीं ले, क्योंकि उनको उनके साथ बहुतों को, इस जन्म के भक्तों को साथ रखना है ।

प्रश्न : प्रभु, हमें अपने साथ रखोगे ?

उत्तर : उसका आधार तुम पर है । अभी तुम सभी मिले हो, वह ऐसे के ऐसे नहीं मिले । भक्ति से चिपके रहना चाहिए ।

प्रश्न : अवसान हुए जीवात्मा को मिल सकते है सही ? देहत्याग के बाद जीवकी गति कैसी होती होगी ?

उत्तर : चली गयी जीवात्मा को मिलने के लिए क्यों प्रयास करें ? उस जीवात्मा को नहीं मिल सकते । *प्लेन्चेट* या गोले से देख, मिल सकते है । हमारे सब *कोन्शियस माइन्ड* का–सुषुप्त मन का परिणाम *प्लेन्चेट* या गोले में प्रतिबिंबित होता है । मृत्यु के बाद शायद मिल सकते हैं, पर वह कब ? जब वह दोनों जीव खूब प्रेम में हों, दीर्धकाल पर्यंत, तो शरीर छूटने के बाद मिल सकते है । शरीर छूटता है, तब हमारा जीव शरीर के साथ के वातावरण में कुछ घण्टे रहा करता है ।

जीव जाने के बाद उस जीवात्मा के लिए रोना कलपना नहीं चाहिए । उस समय शांत रहें । भगवान का अखंड स्मरण तेरह दिन तक करें । इससे शरीर छोड़कर गयी आत्मा को शांति मिलेगी । ईश्वर का गुणगान करें, स्मरण करें । उसे शांति मिलेगी । मृत्यु पश्चात् बहुत समय के बाद दान करोगे तो वह बेकार है । परन्तु मृत्यु के बाद उसकी स्मृति रखकर दान करोगे तो वह काम का । गत जीव को पसंद हो ऐसा अच्छा काम करें ।

तेरह दिन के बाद धीरे धीरे जीवात्मा का संबंध, आसक्ति कम होती जाती है । कालक्रम यानी कि बारह महीने में ये संबंध – बिलकुल चले जाते है । इसलिए बारह महीने तक उसके लिए

नामस्मरण, प्रार्थना आदि किया करें । और उन बारह महीने के बाद वे भिन्न भिन्न शरीर को अपनी वासना अनुसार धारण करता है । इसलिए उसके साथ हमें किस लिए संबंध बांधना चाहिए ?

उसका जन्म फिर दुबारा कब होगा, यह निश्चित नहीं होता । जैसे मनुष्य अधिक विलासी, विषयी, कामी, लोभी, मोही, प्रपंची हो तो उसे जन्म लेते अधिक काल चला जाता है । जल्दी कौन जन्मता है ? जो सत्त्वगुण में जन्मा है, जिसकी भक्ति अधूरी रह गयी है, जो मुक्तात्मा है और जिसकी इच्छा भक्तों की सेवा करनी है उसे, वैसी आत्मा के प्रति सचमुच का राग प्रगट हुआ हो, जिनसे वह हिलमिल गया है, वे सभी शीघ्र जन्म लेते है । इसप्रकार, बिछड़े जीवों का मिलन इसतरह संभव है । यद्यपि इकट्ठे हों तो तुम पहचानोगे किस तरह ? इसलिए यह सब बला छोड़ दें । सत्य से चिपके रहें । कोई जीव खराब स्थिति में पहुँचा हो तो दूसरा वहाँ क्यों जाँए ? और उस स्थिति में कोई किसी को ले जाएगा नहीं ।

प्रश्न : बीमारी के समय 'कोमा' बेहोशी की हालत हो जाने की स्थिति आ जाय, तब प्रभुस्मरण किस तरह रहेगा ? और कुछ जीवन में सच्चा स्मरण करने की कोशिश की हो और मृत्यु के समय 'कोमा' आ जाय तो उसका क्या सब व्यर्थ जाएगा ?

उत्तर : व्यर्थ न होगा । समग्र जीवन की पूर्णता देखनी होती है । थोड़ा बहुत भी यदि किया हो तो वह बेकार नहीं

जाएगा । विरोधी पक्ष-किसीने जीवनभर में प्रभुस्मरण बिलकुल न किया हो और मृत्यु के समय उड़ता विचार ईश्वर का आ जाय जो कि ऐसा होना संभव नहीं है - तो इससे कोई उसकी सद्‌गति ही होगी ऐसा कुछ भी नहीं है । हाँ, यदि दो-तीन दिन सतत ऐसा स्मरण हुआ हो या रहा हो तो अवश्य लाभ होगा ।

प्रश्न : क्या जगत मिथ्या है ?

उत्तर : वेदान्तमार्गी लोग इस जगत को मिथ्या मानते है, वे ब्रह्म को सत्य मानते है । शिखाऊ लोग उसे पूरी तरह समझे बिना मानते रहते हैं । तो जगत क्या सचमुच मिथ्या है ? हमारा जन्म, हमारा व्यवहार, संबंध, नियम, कर्तव्यपालन यह सब क्या बेकार है ? सामान्य जन के लिए संसार मिथ्या नहीं है, यह एक सत्य है । उनका हजारों मनुष्यों के साथ अनेक क्षेत्रों में संबंध बंधा हुआ हैं । जगत को मिथ्या मानकर उन संबंधो को क्या तोड़ दें ? जो साधनामार्ग में आगे बढ़कर परमात्मा का अनुभव करते है, उनके लिए भी क्या जगत मिथ्या है ? संबंध मिथ्या है ? सारा संसार ईश्वर की लीला के रूप में लगता है, इससे उसे भी वे मिथ्या नहीं मानते । इसका अर्थ है कि लोगों को नाशवंत संबंधो के पीछे दौड़कर मरना नहीं चाहिए और उस सत्य को समझकर सच्चा जीवन जीना है । इसतरह हमें प्राप्त कार्य करने है । आसक्ति रागादि के संबंधो को तोड़ना है - सभी ईश्वर को समर्पण करके । उस चेतन की अपेक्षा से जगत मिथ्या है । संपूर्ण समाधि की कक्षा में पहुँचने के बाद अपने अस्तित्व का भान भी नहीं रहता, इसलिए उस स्थिति में जगत मिथ्या है ।

प्रश्न : शिवलिंग के प्रतीक का क्या अर्थ है ?

उत्तर : शिवलिंग का प्रतीक मानव के ऊर्ध्वमुखी पुरुष की चेतना का प्रतीक है । उसे सतत ऊर्ध्व विकास करते रहना है । शिवलिंग के आसपास लिपटे गोल वृत्ताकार प्रतीक का अर्थ प्रकृति की मर्यादा है । इस मर्यादा अन्तर्गत पुरुष-चेतना को ऊर्ध्वगति करते रहना है । आगे नंदी है, वह मदमस्त प्राणशक्ति और वृत्तिओं का (जीवदशा का) प्रतीक है । उसे काबू में लेकर उसका मुख महादेव (ईश्वर) की ओर फेरकर दूसरी दिशा के सामने जो कछुआ होता है, उसके जैसा अंतर्मुख (इन्द्रियों का संकुचन) करना है ।

प्रश्न : श्रीरामकृष्ण परमहंस 'कामिनी-कंचन' का शब्द प्रयोग बारबार करके एक प्रकार से अपनी अरुचि नहीं जतलाते थे ?

उत्तर : हाँ, वे अपनी साधना के दौरान कामिनी-कांचन के विषय में कड़क, नकारात्मक अर्थ में ले सके इतनी हद तक समझ रखते थे और साधना के लिए यह जरूरी भी है । उनका पहला गुरु स्त्रीशरीरवाला जीव ही था न ? माता की भक्ति का इतना सारा महत्त्व हमारे शास्त्रों में है ।

प्रश्न : खूब सत्त्वशील मनुष्य हो पर वह नास्तिक हो ऐसा हो सही ?

उत्तर : हाँ, ऐसे मनुष्य जिंदा है । वे ईश्वराभिमुख न भी हो । गुण की अपेक्षा से उत्तम गिना जाएगा । उसमें उनके जन्म के जन्म चले जाते है । तब भी चेतन की कक्षा में पहुँचने के

लिए वह बहुत कठिन है । ऐसे मनुष्य से चेतन का अनुभव नहीं हो सकता ।

प्रश्न : अन्नदान, वस्त्रदान, विद्यादान आदि दान से गुण और भावना के लिए दिया जाता दान श्रेष्ठ है, ऐसा आप कहते हैं, तो वह किस तरह, यह समझाएँगे ?

उत्तर : इन दोनों की असर जीवन पर्यंत नहीं रहती । गुण और भावना के लिए किया दान चिरंजीवी है । मरते समय मन गुण और भावना लेकर जाता है । चेतन के अनुभव के लिए गुण और भावना जरुरी है । अन्नदान देकर अधिकत्तर हम उन मनुष्यों के दुर्गुणों को भी पोषते है । हमारे जीवन को समृद्ध करनेवाले गुण और भावना है । गुण और भावना के बिना समाज समृद्ध नहीं बनेगा । जैसे धन बिना जीवन नहीं वैसे गुण और भावना बिना धर्म नहीं । दान से ज़ो लाभ मिलता है, वह यदि दूसरे जन्म में भी साथ आ सके ऐसा हो तो उस दान का क्षेत्र उत्तम ।

प्रश्न : हमारे देश में वर्गभेद है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । ऐसे चार वर्णों को लेकर ही वर्गभेद होता है ?

उत्तर : वेद पश्चात् ही चारों वर्णों में धीरे धीरे इसप्रकार की प्रगति होती गई । असली अनुभविओंने, आर्षद्रष्टाओं ने देखा कि धर्म का हार्द जिसने अनुभव किया है, वह बागी होता है । क्रांतिकारी होता है । वह रुढ़ि के आधीन नहीं होता, 'धर्मराजा जैसे युधिष्ठिर ने जुगार में पत्नी प्रस्तुत की, वे कैसे सत्य का पालन करनेवाले होंगे ?' ऐसा प्रश्न मैंने पूज्य विद्यानंदजी महाराज को पूछा था, तब उत्तर मिला कि उस समय में जुगार

खेलना यह शिष्ट रिवाज था । कोई जुगार खेलने का निमंत्रण दे तो उसे ठुकराते नहीं थे । वेदकाल में बहनों और माताओं के लिए अनेकों को मान था । उनमें तपस्विनी और वेदवेदांत की ज्ञाताएँ भी थीं । ऐसा भाव अभी लोगो में नहीं है । तब क्षत्रिय में से ब्राह्मण हो सकते थे । विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हो सके थे । वे क्षत्रिय थे । रामायणकाल में भी ज्ञातिभेद था । उस काल में एक बात आती है कि हरिजन तप करता था, उसके सामने विरोध होता था । आज हरिजनों में सभानता जागी है । उसे हमारे आचार्य भूल जाँय तो हिन्दुओं की बहुमति लघुमति में फिर जाय । असल के समय में गुरुकुल की प्रथा श्रम का महत्त्व बतलाती है । उस समय में चार वर्ण थे, वे आपस में लड़ने के लिए नहीं थे, पर सूचित धर्म निभाने, पर तब स्पर्शास्पर्श न था । गुण और कर्म से वर्ग या ज्ञाति पड़ी, जन्म को लेकर नहीं । पर समय बीतने पर वे ज्ञातियाँ (वर्णों) रुढ़िगत हो गयीं । इसलिए हिन्दू समाज में से हिन्दू ख्रिस्ती होते जा रहे है । हिन्दू समाज की मटकी छिद्रवाली होती जा रही है । समाज के लोग यह सोचते नहीं हैं । **हमारे आचार्यों को इन सभी को अपना लेना चाहिए, नहीं तो हिन्दू वर्ग मिट जाएगा ।** खोये हुए भेड़ों की संभाल भरवाड़ पहले रखता है । कालक्रम में भावना का पतन होते ज्ञाति का, रुढ़ि का बढ़ता गया । पहले ऊँचनीच के भेद न थे, जो आज है ।

प्रश्न : श्रीराम और श्रीकृष्ण ये सच्चे पात्र हैं ? इसतरह कथा कहानी कितना भाग तथ्यपूर्ण है ?

उत्तर : श्रीराम और श्रीकृष्ण ये कोई काल्पनिक पात्र नहीं है । उनका अस्तित्व एक ऐतिहासिक सत्य है । रामभक्ति इतने हजारों वर्ष से चली आ रही है । अरे ! एकांत जंगल की झोंपड़ी में उनकी भक्ति होती है, यह क्या सूचित करती है ? उन अवतारों की चेतनाशक्ति को प्रजा अनंतकाल से लेती चली आ रही है और वे खूब प्रभावशाली होकर प्रजा के दिल में जकड़ी रहती है । यह भक्ति कोई रामायण और भागवत की कथाओं से बढ़ती नहीं पर उनकी चेतना की धारणा के प्रभाव-प्रताप के कारण, कुदरती आकर्षण को लेकर है ।

प्रश्न : आपके पास कालाबाजारवाले और अन्य लोग भक्त होने का दिखावा करने आते है और उन पर आपकी कृपा बरसती दीखती है, यह ठीक है ?

उत्तर : मेरे पास सब आते है । मैं किसी को न्यौता नहीं देने जाता । जिसे आना हो आये । सुरत में जब नवाबी अमल चलता था, तब एक श्री निर्मलदासजी नाम के महात्मा रहते थे । उनके यहाँ नवाब आते, शेठ आते, एक वेश्या भी आती । धीरे धीरे वेश्या के सत्संग की बात फैलते ही नवाब और अन्य गृहस्थों ने श्री निर्मलदास जी से कहा, 'आपके यहाँ वेश्या आती है, यह ठीक नहीं है, उसे आते हुए बंद करो ।' पर महात्मा ने कहा, 'जिसे आना हो, वह मेरे पा आ सकता है, मैं किसी को मना नहीं कर सकता हूँ ।' धीरे धीरे शेठ, लोग और नवाब श्री निर्मलदासजी के यहाँ जाते बंद हो गये । एकमात्र वेश्या नियमित जाती रही । कालक्रम में वह बड़ी भक्त हो गई । यह

एक सत्य है । अस्पताल में सभी प्रकार के रोगी जाते है, सभी को जाने का अधिकार है ।

प्रश्न : इस जमाने में धन की बोलबाला है । कितने कहते है, 'मोटा, आप अब श्रीमंतो के हो गये हो ।' ठीक है न ?

उत्तर : पहले मेरी थोड़ी पहचान थी । नड़ियाद में दो-पाँच आदमीओं के अलावा कोई मेरे पास आता नहीं था । धीरे धीरे मेरी प्रवृत्ति बढ़ती गई और अखबारों में मेरा नाम आता गया और आनेवाले भी बढ़ते गये । यद्यपि जो कोई बुलाते है, उनके यहाँ मैं जाता हूँ । भोजन के लिए बुलावे तो सहकुटुंब मुझे बुलाना पड़ेगा, और ऊपर से दक्षिणा देनी होगी । यद्यपि मेरा घर जैसा कुछ भी नहीं है । जो मिलता है, वह सब समाज के काम में ही उपयोग करता हूँ । पहले जो मुझे बुलाते उनमें से कितने ही मुझे अभी नहीं बुलाते । तब भी भाववाले कितनों के यहाँ तो मैं बिना आमंत्रण के जाता हूँ । मैं तो जिस तिस को प्रेम करना जानता हूँ । एक बार मेरे साथ संबंध बांधकर देखो, फिर अनुभव करो उसका परिणाम । मैं इतने रोगों के होने पर भी फिरता हूँ । सूर्य चौबीस घण्टे घूमता रहता है । मैं अंत तक काम करूँगा । कोई मुझे पैसों का पूजारी कहे तो भले, क्योंकि पैसे समाज के काम में आते है ।

प्रश्न : साधना में एकाश्रय जरूरी गिना है । एक भाई ऐसा पूछते हैं कि पूज्य श्रीमोटा तो उपासनीबाबा और अन्य संतो के पास जाते थे । श्री सांईबाबा का भी मार्गदर्शन स्वीकार किया था । तो एकाश्रय का क्या ?

उत्तर : हाँ, साधना में एकाश्रय की खास आवश्यकता है । जिसे गुरु माना हो, उनका मार्गदर्शन ही हमारे लिए हितावह है । तब भी इसका अर्थ यह नहीं कि हमारी दृष्टि संकुचित हो, मन संकुचित हो । दूसरे महात्माओं के लिए अन्यथा भाव नहीं होना चाहिए । प्रसंग आने पर अनायास अन्य कोई महात्मा के पास जाने का हो, तब उनमें अपने गुरु का भाव दृढ़ करना चाहिए । यद्यपि जहाँ तहाँ दौड़ना नहीं है । 'मोटा' उपासनीबाबा आदि के पास जाते, वे स्वयं स्फुरणा से या गुरुमहाराज के आदेशानुसार जाते और उनमें अपने गुरुमहाराज के दर्शन करते । सापेक्ष रुप से तो सभी संतों में एक ही चेतन निहित है । तब भी साधक की आँख जब तक खुली न हो, वहाँ तक उसे अपने गुरु में ही सभी को समा लेने के लिए एकाश्रय खास जरुरी है ।

प्रश्न : सगुण और निर्गुण भगवान का अनुभव अर्थात् क्या ?

उत्तर : चेतन के गुणधर्म हमारे में प्रगट हो, वही सगुण ईश्वर का अनुभव कहलाता है । निर्गुण अथवा निराकार को तो अनुभव ही कर सकते है, बोल नहीं सकते । शंकराचार्य तो महान अद्वैतवादी थे और उन्हें निर्गुण ईश्वर का अनुभव हुआ था, तब भी उन्हें श्रीनगर में सगुण अथवा साकार प्रभु का भी अनुभव हुआ । उसके बाद ही उन्होंने देश में पंचायतन की स्थापना की । उन्होंने बाद में अनेक भक्ति स्तोत्र रचे हैं । निराकार परब्रह्म में रचते आचार्य भी आकार में दुबारा आते है, क्योंकि उसका आनंद निराला होता है ।

प्रश्न : जप को एकाद सरल वाक्य में किस तरह समझ सकते है ?

उत्तर : जप यह तो अनंत चेतना का सतत बहता रहता प्रवाह का प्रतीक है और उसकी सभानता प्रेरित करने का छोटा साधन मात्र है । **चेतनभाव का सातत्य रहे यह जप ।**

प्रश्न : ईश्वर, विश्व और मानव एक और अविभाज्य है ?

उत्तर : ऐसे प्रश्न तो अभी अनेक हो सकते है । परन्तु ऐसे प्रश्नों का जीवन के साथ कोई संबंध नहीं है । जिस प्रश्न का आधार सीधे जीवन के साथ हो वैसा प्रश्न हल करना जरूरी है । ऐसे प्रश्न *'एकेडेमिक'* है । इस ब्रह्मांड में भगवान अथवा तो चेतन स्वयं ओतप्रोत है । तब भी उतना और वैसा ही मात्र चेतन है वैसा नहीं । और उससे सभी तरह भिन्न भी है । ब्रह्मांड स्वयं अनादि है, इसलिए उसका सर्जन भी अनादि कहलाएगा । यह सब ब्रह्मांड और उनके सकल प्रकार का सर्जन यह भगवान से भरा है, ब्रह्ममय है । एकदूसरे से अलग न हो सके वैसा है – ओतप्रोत है । *(ईशावास्य इदं सर्वम्)* चेतना का अनुभव जब होता है, उससे पहले तो सर्वप्रथम एकाग्रता की संपूर्ण चोटी पर पहुँचे उसके बाद ही केंद्रितता में व्याप्त होता है और केंद्रितता के विकास की सर्वोत्तम चोटी पहुँचने पर ही विस्तार की स्थिति में उस भूमिका में प्रवेश कर सकते हैं तो ऐसे विस्तार की भूमिका में ही ब्रह्मांड में चेतन का अनुभव हो सकता है ।

प्रश्न : योगनिष्ठ आत्माएँ कुदरत के चलन के बीच हस्तक्षेप कर सकती है ?

उत्तर : नहीं ।

प्रश्न : कितने महात्मा हवा में से खाद्य, पेय और ऐसी अनेक वस्तुएँ पैदा करते है । तो वैसा ही वे बड़े बुनियादी तौर पर अकालग्रस्त स्थान पर नहीं कर सकते ?

उत्तर : ऐसे महात्मा जो हो, उन्हें ही पूछो ने !

प्रश्न : आप उस कक्षा के, उस *'लाईन'* के जानकर हो, इसलिए पूछ रहा हूँ ?

उत्तर : कुदरत के बीच नहीं पड़ सकते, पड़ेंगे भी नहीं ।

प्रश्न : मेरी माँ की कितनी महत्त्वाकांक्षा मैं पूरी नहीं कर सकता । इससे वे नाखुश रहती हैं । मुझ में भी अनेक कमजोरियाँ है । पर मेरी माँ को लेकर मेरे भाई भी मुझ पर गुस्सा करते है, वह ठीक है ?

उत्तर : सभी कारणों का मूल हम में रहा होता है । मैंने स्वयं अनुभव किया है, सहन किया है । मैं अनेक लोगों के बीच काम करता था । सभी के मन को संभालना पड़ता । सभी को मैं अनुकूल होकर रहता । युवावस्था में सभी मुझसे नाराज रहते, काम अच्छा करूँ तो दूसरों को यश, खराब करूँ तो मुझे अपयश । इसलिए मैं अपनेआप को टोक टोककर, गम खाकर छोटे से छोटा काम उत्तम ढंग से करता । कोई गुस्सा करे या प्रेम करे उसका मूल कारण हम में ही होता है । तुम्हारा भक्ति की ओर झुकाव है, इसलिए तुम्हें यह कह रहा हूँ । किसी का पक्ष नहीं लेना चाहता, समझे भाई ?

प्रश्न : शिरडीवाले सांईबाबा तब *'मिस्टीक'* अवधूत थे । वे फिर से दूसरे प्रकार के संत रूप में – आंतरराष्ट्रीय अवधूत रूप में – अवतरित हो सकते हैं सही ?

उत्तर : वेश्री अपने मिशन कि खातिर भी वैसा कर सके अथवा भक्तों की इच्छा पर आधार रखता है ।

प्रश्न : मोटा, मातापिता का माने या गुरु का माने ?

उत्तर : दोनों का ।

प्रश्न : यह किस तरह से हो सकता है ?

उत्तर : व्यावहारिक बातों में मातापिता का और जीवनविकास की बात में गुरु का ।

प्रश्न : विवाह जैसी बात में मातापिता की हठ पूरी करे या शादी न करने की गुरु की सलाह को मान्य रखे ?

उत्तर : ऐसे प्रसंग में गुरु की – यदि गुरु शादी न करने की सलाह देते हों तो ।

प्रश्न : स्वामी विवेकानंद कहते थे, 'प्रथम गुरु की, फिर माँ की और उसके बाद पिता की सलाह माने, क्योंकि मातापिता जन्म देते हैं और गुरु मुक्ति देते है ।'

उत्तर : मातापिता के दिये जन्म द्वारा यह शरीर गुरु को, ईश्वर को पा सकता है । यह भी सच है ।

प्रश्न : शास्त्रों में उत्तम शास्त्र कौन सा है ?

उत्तर : वेदांत । बड़े से बड़ा अनुभव का शास्त्र, किन्तु जब तक उसे अपने आचरण में न रखो, वहाँ तक क्या काम का ?

प्रश्न : विवाह के विषय में आप क्या मानते हैं ?

उत्तर : विवाह यह कोई महत्त्व देने जैसी वस्तु नहीं । प्राचीन ऋषिमुनि विवाहित जीवन जीते थे । श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण जैसे अवतार भी विवाह करके प्रजोत्पत्ति की है । विवाह सृष्टि का कानून है । प्रभु की कल्पना के तीन स्वरूप है – ब्रह्मा, विष्णु और महेश । उनमें विष्णु और महेश विवाहित है । महेश अर्थात महादेव की विशिष्टता समझने जैसी है ।

१. जिन्होंने काम को जलाया है और दूसरी ओर उनकी जांघ पर उमा निराजती है ।

२. जो देवों के देव है और साथ ही साथ पिशाच – भूतों के भी देव है । इसप्रकार वे दूसरे अंतिम छोर के भी स्वामी हैं ।

३. कुबेर–धन का स्वामी – जिनका दास है, तब भी जो भस्म लगातार स्मशान में बसते है, भिखारी दशा में रहते है ।

विवाह शब्द का हेतु – यह मात्र स्थूल देह के विवाह के लिए सीमित नहीं है, पर मनुष्य को अपने अंदर की परस्पर विरोधी प्रवृत्तिओं का समन्वय कर, अपना विवाह स्वयं में करवाना होता है । रागद्वेष, सुखदु:ख, प्रकाश–अंधकार आदि जोड़ के विवाह करने है, उच्चभाव में भाव से प्राप्त करने में रहता है । प्रजोत्पत्ति विषय वासना से उद्‌भव हो ऐसा कुछ नहीं । विषयवासना से पर रहकर भी प्रजोत्पत्ति संभव है । अवतारी पुरुष श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि की प्रजा थी । संतो में तुकाराम, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य आदि की प्रजा थी । ऋषिओं के लिए

विवाह यह यज्ञ था ।

प्रश्न : परमपद को पाने के लिए ब्रह्मकुल में जन्मना और ब्रह्मचर्य पालना यह आवश्यक है ?

उत्तर : ब्रह्मकुल अर्थात् ब्राह्मणों के यहाँ जन्म लेना । गुण और कर्म द्वारा ज्ञाति है, जन्म के द्वारा नहीं । पर आज जन्म से सब गिना जाता है । ब्राह्मण के यहाँ ही जन्म लेना जरुरी नहीं है । **ब्रह्मचर्य व्रत पालना ही चाहिए । भगवान का अनुभव करने के लिए द्वन्द्वातीत और गुणातीत होना चाहिए ।** हरिजन ने भी परमपद को पाया है । वे ब्राह्मण न थे । इसलिए ब्राह्मण ही परमपद को पाये ऐसा नहीं है । मानो कि ये दोनों हो तब भी क्या ? ज्वालामुखी जैसी प्रचंड तमन्ना उस पद पर पहुँचनेवाली न हो तो कुछ भी नहीं होगा ।

प्रश्न : गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्यों कहा गया है ?

उत्तर : गुरु यह शरीर नहीं, भावना है । भगवान निराकार है । तब भी भावनानुसार वे साकार होते हैं, यह अलग बात है पर साधक को भावना द्वारा जुड़े हुए रखने के लिए, भावना दृढ़ करने के लिए गुरु की ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ तुलना की है, पर समझने के लिए इतना ध्यान रखें कि गुरु कहो या परम भक्त कहो या परम अनुभवी कहो, वह किसी भी भगवान के समान नहीं हो सकता । चेतननिष्ठ देहधारी इस लिए उसे प्रारब्ध सही है, पर कैसा ? जली हुई रस्सी की ऐंठन जैसा । भगवान को प्रारब्ध नहीं, निमित्त नहीं । देहधारी परमवेत्ता यह सही रूपक देकर समझा सकते हैं । लोटे में भरा हुआ समुद्र का पानी

और समुद्र का पानी यह दोनों गुणधर्म में समान होने पर भी विस्तार में, अनंत शक्ति में एक समान नहीं है । उसी तरह चेतननिष्ठ और भगवान के बीच अंतर है ।

प्रश्न : गोवध के बारे में आपका क्या अभिप्राय है ? सरकार सच्ची है या प्रजा ? गायमाता में तैंतीस कोटि देवता बसते हैं तो उनके वध के समय वे देवता उनकी रक्षा के लिए क्यों नहीं आते ?

उत्तर : गोवध हो ऐसी इच्छा नहीं है, पर उसके सामने आंदोलन, उपवास आदि अच्छी रीत नहीं है । हम गाय का दूध पीते नहीं, उसकी चाय अच्छी नहीं लगती, उसके लिए मान नहीं है, उसके लिए मर जाने की तमन्ना नहीं है और आंदोलन करते हैं । गाय का संवर्धन हो, उसकी औलाद अच्छी हो, उसका दूध अधिक मिले, उसका खाद अच्छा मिले, उसकी वैज्ञानिक जाँच कहाँ होती है ? हमारे देश से परदेश में उसकी देखभाल अच्छी होती है । इसतरह की सेवा उत्तम सेवा है । भाषण देने से गायमाता की सेवा नहीं होगी । गाय को माता क्यों कहा ? उसकी औलाद - बैल से - खेती होती है । खेती से अनाज उत्पन्न होता है और अनाज से हम जीते है । इसलिए गाय हमारी माता हुई । उस समय हिन्द की बस्ती तैंतीस करोड़ होगी, इसलिए वह प्रजा का गाय के दूध से, उसकी औलाद से पोषण होता होगा उसी कारण से उसे देवता कहा और गाय उनकी माता । इस प्रश्न में सरकार और प्रजा दोनों में से कोई सही नहीं है ।

प्रश्न : आसक्ति कैसे टालें ?

उत्तर : जिसके लिए आसक्ति हो उसका काम न करें ऐसा नहीं है । निमित्त आने पर जरूर काम करें । परन्तु वह प्रभुप्रीत्यर्थ और उसी प्रकार की भावना रखकर नहीं कि उस स्वजन की ।

प्रश्न : मंत्रसिद्धि कब होती है ? थोड़े-थोड़े मंत्र जाप करते वह हो सकती है ?

उत्तर : यह बहुत ही *'जनरल'* प्रश्न है । कैसे भी कुछ भी थोड़े-थोड़े करने से नहीं चलेगा । पहले उसमें अखंडता आनी चाहिए । फिर एकाग्रता, केंद्रितता और अंतिम विस्तारता आये । जहाँ तक रागद्वेष निर्मूल न हो, वहाँ तक कोई सिद्धि नहीं होगी ।

प्रश्न : प्रारब्ध सच या पुरुषार्थ ?

उत्तर : यह जोड़ी है । एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं । प्रारब्ध के कारण पुरुषार्थ नहीं होता । अनेक जीव शिव हो गये, वे पुरुषार्थ से । श्रीरामकृष्ण परमहंस और ऐसे महात्माओंने साधना की थी । मनोबलयुक्त पुरुषार्थ से प्रारब्ध को भी पलट सकते है । तब भी प्रारब्ध है, पर वह हमें बांधकर नहीं रख सकता । यह एक ही सिक्के के दो पहलू है ।

प्रश्न : भगवान के स्मरण से पैसे कमा सकते है ?

उत्तर : हाँ, इससे एक प्रकार की सहाय मिलती है । बुद्धि तेजस्वी होती है । हृदय की सूझ पैदा होती है । कमायी हृदयसूझ से होती है, यह तो समझते हो न ? मर्यादित बुद्धि भावपूर्ण भक्ति से विकास पाती है । इसलिए प्रज्ञाशीलता आती है और समय

जाने पर शांति मिलती है । उदासभाव चला जाता है । प्रयोग करके देखो । भाई, मैं बहुत गरीब था । पढ़ने के लिए भी भीख माँगनी पड़ी थी । यद्यपि भगवान के पीछे पड़ने से मुझे कितना सारा मिला !!! एक करोड़ से भी अधिक किंमत का योगदान समाज को देने के लिए मिला, जड़ को बुद्धि मिली ! कितनी पुस्तकें, भजन और पत्र प्रकाशित हुए ! और तुम सभी मिले वह अलग !

प्रश्न : मोटा, कितने मनुष्य अपनी मृत्यु के पश्चात् चक्षुदान करने को कहते हैं तो उस विषय में आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : एक तरह से गलत नहीं है । अच्छी आँखें आवश्यकतावालों को मददरूप हो, पर देखादेखी से ऐसा करना ठीक नहीं, क्योंकि गत जीव को अपने देह की होती काँट-छाट देखकर बहुत दुःख होता है । जो खूब कठोर मनवाला हो, भाववाला हो और सेवा का आदर्श अपने सामने रखकर ऐसा दान करने का विज्ञापन किया हो तो उसे आपत्ति नहीं ।

प्रश्न : जीवात्मा गत हो, फिर उसके लाभ की खातिर मरनेवाले के आत्मीयजन पुण्यदान करें तो उसका पुण्य गत जीव को मिलेगा या नहीं ?

उत्तर : नहीं मिलेगा । बिलकुल नहीं मिलेगा । जीवित होने पर उसके हाथ से जो हो, वह करें - उसका ही पुण्य उसे मिलेगा । उस कर्म से उसकी वृत्ति का विकास होता है और उतना लाभ उसे मिलता है । बाकी मृत्यु के पश्चात् उसके नाम से होते दान से गत जीव को कुछ लाभ नहीं होगा, पर एक दूसरी

बात सच है कि यदि देवगत होने के बाद तेरह दिन के अंदर मरनेवाले की स्मृति सतेज रखकर जो कुछ पुण्य, सत्कार्य उसके अर्थ से हो तो उसकी सभानता-जानकारी-उस गत जीव को होगी सही । उसे संतोष और ज्ञान होगा इतना ही-बाकी वैसे होते दान से उसकी - गत जीव की वृत्तिओं का कोई विकास संभव नहीं । वैसा विकास करना हो तो जीवित दशा में स्वयं ही वैसा दान हेतु के भान के साथ करना चाहिए । बाकी रूढ़ि से, देखादेखी से, दबाव से, लोकरीति से होते दान, वे दान ही नहीं है । और इससे जीवनविकास में कुछ लाभ होना संभव नहीं है ।

प्रश्न : दुर्घटना से किसी की मृत्यु हो और उसके पश्चात् उसके निमित्त पुण्यदान हो तो उसे लाभ मिलेगा ?

उत्तर : नहीं, ऊपर के उत्तर में इसका समावेश हो जाता है ।

प्रश्न : गत जीव की शांति के लिए उत्तम उपाय क्या ?

उत्तर : बारह दिन तक अखंड नामस्मरण करना चाहिए । चौबीस घण्टे हो तो उस जीव को शांति मिलेगी ।

प्रश्न : बारहवें दिन में पिण्ड काटने आदि की जो क्रिया होती है, वह ठीक नहीं ?

उत्तर : क्रियाएँ ठीक है, पर वह गत जीव के स्वजनों को स्वयं करनी चाहिए तो अधिक शांति हो । जैसे पूजा आदि ब्राह्मण पंडित के पास करवाते है, वह और हम स्वयं भारपूर्वक, हेतु के भाव के साथ करते हैं उन दोनों के बीच जितना अन्तर है, उसी तरह उत्तरक्रिया के विषय में भी है । कोई भी पूजा,

क्रिया आदि स्वजन को स्वयं करनी चाहिए । मेरी माँ मर गई, तब मैंने स्वयं उस विधि को किया था ।

प्रश्न : जीवन की अंतिम घड़ी में ईश्वर को याद करे तो उसकी अच्छी गति हो और शीघ्र नहीं जन्म लेगा ?

उत्तर : जरूर हो, पर जिसने ईश्वरस्मरण पूरी जिंदगी में न किया हो, उसे वह अंत समय मे उद्‌भव ही नहीं होगा । शायद उपर उपर से विचार ईश्वर विषय आ जाय या उसे याद करे तो इससे कोई लाभ नहीं होगा । पर यह तो सरलता से समझ आ जाय कि जिसने जिस तरह से जीवन व्यतीत किया हो, उसके ही विचार अंत समय में आएँगे और उसी अनुसार ही गति, उसका पुनर्जन्म आदि होगा । इसलिए पहले से ही युवावस्था से ही स्मरण की आदत डालो ।

प्रश्न : समाज इतना दुःखी है, तब भी महात्माओं की कृपा क्यों नहीं अवतरित होती ?

उत्तर : कृपा का अवतरण हो, पर कोई ऐसे ही कुछ नहीं दे देता । जैसे ईश्वर निरीच्छ है, वैसे महात्मा निरीच्छ होते हैं । उन्हें हिलाओंगे तो हिलेंगे और् चलाओंगे तो चलेंगे । सूर्य का गुणधर्म सर्वत्र प्रकाश फैलाना है । उसी तरह आत्मनिष्ठ संत का गुणधर्म सर्व पर कृपा बरसाना है । पर यदि हम पर्दा गिराकर सो जायें तो प्रकाश कहाँ से मिलेगा ? अमानित्व और् भय छोड़कर सर्वभाव से प्रभु की शरण में जाओ, प्रभु के समान महात्माओं के पास जाओ तो तुम्हें उनकी कृपाप्रसादी जरूर मिलेगी ।

प्रश्न : साधना में चित्तशुद्धि को आप अनिवार्य मानते हो ?

उत्तर : साधना में चित्तशुद्धि जरूर अनिवार्य है । जब तक कामक्रोधादि हृदय से नहीं जाएँगे, तब तक साधना में आगे नहीं बढ़ सकते । यदि साधना न कर सकते हो तो महात्माओं के साथ मैत्री करो, सत्संग करो । संतो के साथ मैत्री करने से उनके पवित्र संस्कार हम पर पड़ेंगे और लंबे समय बाद वे उदयमान जरूर होंगे । जिससे जीवनविकास में सहायता मिलेगी ।

प्रश्न : ईसु ख्रिस्त ने कहा है, **'सुई के छेद में से ऊँट जा सकता है, पर लक्ष्मीवान मनुष्य के लिए प्रभु प्राप्त करना संभव नहीं ।'** यानी कि श्रीमंत मनुष्य कभी मुक्तात्मा नहीं हो सकता ?

उत्तर : अधिकत्तर लक्ष्मीवान अपनी लक्ष्मी का उपयोग एश आराम के लिए करते हैं । जब तक लक्ष्मी का जनकल्याण में उपयोग न हो और स्वार्थ के लिए ही उसका उपयोग हो, तब अवगुण आते है । भोगविलासी धनपति कैसे भक्त बन सकते है और किस तरह मुक्तात्मा हो सकते है ? पर यदि लक्ष्मी का परमार्थ में उपयोग हो और वैसी प्रवृत्ति में, कार्यों में मन पूरे दिन रहा करता हो तो वैसे विरल धनवान को प्रभुप्राप्ति होती है ।

प्रश्न : *'निर्बल के बल राम'* इसका अर्थ क्या है ? निर्बलता अर्थात् किस तरह की निर्बलता - शारीरिक, आर्थिक या मानसिक ?

उत्तर : इसका अर्थ यह नहीं कि बल बिना के व्यक्ति

का बल राम है । हम कुछ भी न करें, तब भी ईश्वर मदद करें ऐसा नहीं है । परन्तु यदि हमें परमेश्वर में पूर्ण विश्वास-श्रद्धा हो और हमसे जो जो बन सका, वह हम कर चुके हो और उसमें हम सफल न हो सके हो तो प्रयत्न चालू रखकर परमेश्वर को सच्चे हृदय से प्रार्थना करें तो वे कृपालु भगवान हमें जरूर मदद करेंगे । जब द्रौपदी को भरी सभा में उसके वस्त्राहरण के समय किसी ने मदद न की, उसकी विनंती करने पर भी वह निःसहाय, लाचार हो गयी, तब उसने परमेश्वर को मदद के लिए पुकारा । उस समय वह निर्बल थी । ऐसी परिस्थिति में ईश्वर उसकी मदद को आये । इसलिए *'निर्बल के बल राम'* कहा है ।

प्रश्न : तन, मन और धन - ये तीन मनुष्य की संपत्ति हों तो इनमें से किस तत्त्व का समर्पण अधिक सरल या आसान है ? धन का समर्पण होने पर बाकी के तत्त्वों का समर्पण हो सही ?

उत्तर : धन का समर्पण करना प्रमाण में सरल है, पर धन अर्पण करने से तन और मन अर्पण होगा ही ऐसा नहीं कह सकते । तन और मन का समर्पण भक्ति प्रगट हुई हो तो ही संभव है । संपूर्ण भक्ति मनादिकरणों में उसकी आत्यंतिक पराकाष्ठा से जीवंत हो जाय, तब तो वैसी भक्ति का प्रकार तो अनोखा ही होता है । और वैसी भक्ति से अपनेआप ही उसके पास उसका अपना कहलाये, ऐसा जो कुछ हो, वह सभी श्रीभगवान के चरणकमल में वैसे हृदय से अर्पण हो ही जाता है ।

प्रश्न : 'हरि का मार्ग है शूरा का, देखों ईस में कायर

का काम नहीं, प्रथम पहला मस्तक रख, फिर लो नाम उसका ।' मोटा इसका भावार्थ समझाओगे ?

उत्तर : इसमें कोई गूढ़ अर्थ या रहस्य नहीं है । सर्व प्रवृत्तियों के पीछे कोई *'एनर्जी'*-शक्ति विद्यमान है । वह हमें काम करने को प्रेरित करती है । तो अनेकबार जानबूझकर प्रयत्न होते रहते है पर जो कुदरती प्रयत्न होते रहते हैं, उसके और मेहनत द्वारा होते प्रयत्न के बीच अंतर है । तो वैसे प्रयत्न कब फलदायी हों ? गुण और भावना बिना कुछ भी प्रगट नहीं होगा । गुण अर्थात् हिंमत, साहस, तितिक्षा, धैर्य, शौर्य, देशसेवा, परोपकार, त्याग आदि । किसी भी गुण में भावना न हो तो वह गुण शोभा नहीं देता और परिणाम फलदायी नहीं होता । भावना की सूक्ष्मता को लेकर हमें जिसमें और उसमें चिपका के रखते हैं । भावना का दूसरा लक्षण श्रद्धा है । श्रद्धा के भी लक्षण है ।

(अनुष्टुप)

'गति को दृढ़ प्रेरित कर, श्रद्धा क्या कर्मशील है,
प्रेरणा, भाव व ज्ञान, श्रद्धा सर्जनशील है ।'

प्रत्यक्ष चेतन का अनुभव करना हो तो पहले मस्तक रखना पड़ता है । प्राप्त कर्म को परिपूर्ण करना ही पड़े, पार उतारना ही पड़े । अनासक्तिभाव से करना चाहिए । द्वन्द्वातीत और गुणातीत होना चाहिए । इसतरह प्रथम मस्तक रखना साधना क्षेत्र में - यदि चेतन का अनुभव करना हो तो । इस क्षेत्र में मृत्यु की परवाह न करके झुकाने की उत्कट से उत्कट तमन्ना होगी तो आगे बढ़ा जाएगा - इन पंक्तिओं का अर्थ यह है ।

इसके लिए मार्ग तो अनेक हैं, जिसमें जप उत्तम साधन है, पर उसका उठाव किसी भी तरह जीवन में नहीं आता, क्योंकि रागद्वेष कम नहीं होते । जहाँ तक रागद्वेष कम नहीं होंगे, तब तक आगे नहीं बढ़ सकते । इसलिए सतत नामस्मरण, मौन, अभय और नम्रता ये आवश्यक वस्तुएँ हैं । जब नामस्मरण बारह-तेरह घण्टे तक पहुँचे, तब कुछ रास्ते में है ऐसा कहलाएगा । जब इतना जप हो, तब सभानता आती है और विवेकशक्ति गतिशील, क्रियाशील, सर्जनशील होती है । भगवान का नामस्मरण हो उतना करना । मात्र बहुत पढ़ने और चर्चा करने से अहम् बढ़ेगा । मेरे गुरुमहाराज की यह शीख है ।

प्रश्न : संस्कृति के विकास के लिए भारत को किस प्रदेश की सलाह मिलेगी ?

उत्तर : दक्षिण भारत की । दक्षिण से बड़े बड़े आचार्य पैदा हुए हैं । इसका कारण यह भी है कि दक्षिण हिन्दवासी अधिक भावनाशील है । गरीबी भी दक्षिण हिन्द में अत्यंन्त है । संस्कृति की दृष्टि से यह देश अधिक विकसित है ।

प्रश्न : साकार से निराकार भक्ति अधिक अच्छी होती है ?

उत्तर : साकार भक्ति - ध्यान के सिवा दूसरा करना बहुत कठिन होता है । निराकार का ध्यान तुम्हारे जैसों के लिए संभव नहीं है । **सामान्य मनुष्य के लिए जीवनविकास में पैर रखने के लिए तो साकार ध्यान ही योग्य है ।** निराकार की उसके लिए तो संभावना ही नहीं । निराकार में गये हुए भी साकार में वापिस आते हैं, क्योंकि उसमें अनोखा आनंद होता है, यद्यपि

साकार और निराकार के भी आगे एक ऐसी स्थिति है, जहाँ अमुक पहुँचते हैं ।

प्रश्न : लीक अनुसार नाम का स्मरण हुआ करे तो लाभ हो सही ?

उत्तर : नाम का स्मरण होना, वहग सरल बात नहीं है । कोई मनुष्य भगवान का नाम ऐसे ही नहीं ले सकता है । यदि इतनी सभानता रखने पर भी नाम न रहता हो तो लीक अनुसार रहेगा ही कैसे ? और मानो कि लीक अनुसार रहे तो भी उसका परिणाम बेकार नहीं जाता, परन्तु जैसे कोई किसान बीज बोने से पहले अपने खेत में खाद डालकर, जमीन को जोतकर नरम बना देता है और फिर बीज डाले तो और भगवान की कृपा रूपी बरसात बरसे तो उसमें से परिणाम आये बिना नहीं रहता । परन्तु कोई आलसी किसान ठीक से जोतकर खाद न डाले और बीज डाल दे, तब भी थोड़ा बहुत उगे बिना नहीं रहता । कुछ नहीं तो पशुओं के लिए चारा तो होगा ही । इसलिए भगवान का स्मरण यदि खाद और जोत करके यानी कि हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार को उन सभी को नामस्मरण उगने की भूमिका योग्य बनाने के लिए नामस्मरण किया करें तो प्रत्यक्ष परिणाम अपने जीवन में अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा ।

प्रश्न : गयाजी आदि स्थान पर श्राद्ध करने और पितृओं को तर्पण करने का रिवाज है, इस विषय में आपकी क्या मान्यता है ?

उत्तर : गयाजी, सिद्धपुर आदि स्थान में श्राद्ध करने और

वैसा करके पितृओं को तर्पण करने का कोई अर्थ नहीं है । इससे कोई गत जीव को लाभ नहीं होगा । ऐसा रिवाज पड़ने का कारण ऐसा हुआ होगा कि कोई प्रखर पुरुष या पुरुषों ने उस स्थान में शुभ संकल्प ऐसे कुछ विषय में पहले के काल में किया हो और इससे उस स्थान में श्राद्ध करने का रिवाज पड़ा हो । यह सब अब तो रूढ़िगत हो गया है ।

प्रश्न : एक उत्तेजितभरा हिन्दू टोला जमा हुआ हो, तब सामान्य मनुष्य इस उत्तेजना के प्रवाह में बह जाता है । साधक को ऐसा कुछ स्पर्श नहीं होता । किन्तु एक मुक्तात्मा हो, उस पर क्या असर हो ?

उत्तर : मुक्तात्मा को कुछ भी असर नहीं होती । अज्ञानी प्रकृतिवश होता है, उसे टोले की असर होती है और उसमें वह घिसटता है । जो साधक होता है, वह सत्त्व में प्रवर्तमान होता है । और चाहे तो भी रजस या तमस में व्याप्त नहीं होता । त्रिगुणातीत मुक्तात्मा समय और प्रसंगानुसार तीनों गुणों का आश्रय लेकर या किसी भी तरह एक या दो गुणों को आगे रखकर उसका उपयोग करे । जैसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रेरित किया । मुक्तात्मा उसकी आत्मा की प्रेरणानुसार ही काम करता है । वह गुणों का गुलाम नहीं । वह कहीं तो टोले में कूदकर काटने लगे या तो उससे अलिप्त रहकर देखा करे । वह अपनी आत्मा की आवाज का अनुसरण करता है । इसलिए किसी ने कहा है –

'काम सभी ज्ञानी-अज्ञानी गुणाश्रय से करे,

दोनों के हेतु में ज्ञान भिन्न परस्पर रहे ।'

प्रश्न : कामवासना किस तरह कम हो और मिट जाये ?

उत्तर : कामवासना को एक *'प्रोब्लेम'* महाप्रश्न के रूप में क्यों देखते हो ? वह भी एक प्रकार का मल है । जैसे शरीर में मल इकट्ठा होता है, तब हम घबराते नहीं, वैसे कामवासना से क्यों धबराये ? यह भी शरीर का एक धर्म है, इससे घबराना क्या ? जैसे जैसे सात्त्विक गुण बढ़ता जाय वैसे वैसे कामवासना घटती जाएगी । इससे हो उतना अलिप्त रहने तनतोड़ मेहनत, सत्संग, सद्वाचन, प्रार्थना, भजन, नामस्मरण और जागृति रखनी चाहिए ।

प्रश्न : मुक्त को फिर जन्म लेना हो तो जन्म से ही मुक्त अवतरित होगा या नये जन्म में उसे साधना करनी पडेगी ?

उत्तर : नये जन्म में उसको थोड़ी सी साधना तो करनी ही पड़ेगी । मनुष्य को उदाहरणरूप होने पर कुछ साधना करनी ही पड़ती है । फिर उनकी बाल्यावस्था में या किशोरावस्था में उनके जीवन की मुक्तता चिन्हरूप में सविशेष की अमुक अमुक घटनाएँ भी होनी संभव रहती है । बाल्यजीवन में मुक्त आत्मा को अपनी वैसी मुक्त होने की प्रतीति भी नहीं होती ।

प्रश्न : एक मुक्तात्मा दूसरी मुक्तात्मा को प्रथम द्रष्टि से तुरन्त पहचान सके सही ?

उत्तर : नहीं, कारण मुक्त को वैसे पहचानने की जरूरत नहीं रहती । वैसी उसे इच्छा उद्भव नहीं होती । वह उसका कार्य नहीं है ।

प्रश्न : भक्ति के फल और ज्ञान के फल में – इन दो प्रकार की मुक्ति के परिणाम में क्या अंतर है ?

उत्तर : ज्ञानमुक्ति में मात्र साक्षात्कार हो, जानने का हो, साक्षीवत् रहने का होता है । जबकि भक्ति के साक्षात्कार का परिणाम से ऊपर बताया ऐसा तो होता ही है । इसके अलावा उसका उपभोग करने का सामर्थ्य भी प्राप्त होता है । उसमें ज्ञान और उपभोग का सामर्थ्य इन दोनों का समावेश होता है । उसके साथ ही वह साक्षी, अनुमंता, भर्ता और प्रभु भी होता है और वह वैसे जागृत रूप से चेतना के भाव से वे सभी एक साथ उसमें व्याप्त होता है ।

प्रश्न : सभी साधनाओं का और साधन का हेतु मन की अंतिम नीरवता प्राप्त करनी है, ऐसा गिन सकते है ?

उत्तर : हाँ, फिर भी सभी साधनाओं का उतना ही मात्र हेतु है, वैसा भी नहीं । उससे कहीं कहीं पार जाना है ।

प्रश्न : भूख, प्यास पर काबू पाये बिना मुक्ति नहीं होगी न ?

उत्तर : नहीं होगी । भूख, प्यास, शौच, इच्छा आदि पर पूर्ण काबू आ जाने के बाद मुक्त दशा प्रारंभ होती है । भावना के जोश को लेकर वह सब संभव होता है । मन, प्राण और शरीर की सब माँग शांत हो जाती है और उन सब पर काबू सहजता से आता है ।

प्रश्न : *सेक्स* (कामवासना), *वेल्थ* (लक्ष्मी) और *पावर* (सत्ता) इन तीन पर जिसे काबू हो वह मुक्त ना भी हो वैसी संभावना सही ?

उत्तर : हाँ, वैसी संभावना है । परन्तु वैसी जिसकी दशा हो, वह मुक्त थोड़े काल में हो जाय सही ।

प्रश्न : मुक्तात्मा के हाथ से अहित होगा सही ? साधारण रूप से ऐसी समझ व्याप्त है कि मुक्त जो कुछ करे, जो कुछ सलाह दे, इससे सामने के व्यक्ति का अहित कभी नहीं होता, श्रेय ही होगा ।

उत्तर : वैसा हमेशा न भी हो । मुक्त को स्वयं वैसी सलाह का बंधन नहीं होता, क्योंकि वह स्वयं तो सलाह देता नहीं है । माँगने में आये तो तब देता है और वह भी रागद्वेष से पर । परन्तु सलाह जिसे दी गई हो, उस व्यक्ति वैसी सलाह से कभी उसे स्थूल रूप से अहित होने की पूरी संभावना रहती है सही । तब भी उसकी आंतरिक श्रद्धा उसके श्रेय पंथ पर ले जाएगी सही । अस्थिर श्रद्धा के कारण वैसी श्रद्धा हमेशा शुभ फलदायी हो ही ऐसा न भी हो । मुक्त-हरेक मुक्त-व्यावहारिक ही हो वैसा न भी हो । सांसारिक घटनाओं में उनकी सलाह कामियाब न भी हो । मुक्त की वाणी फलित होने का आधार सलाह लेनेवाले की श्रद्धा की भूमिका तथा स्वीकारात्मक, ग्रहणात्मक शक्ति पर आधारित है । जो सभी में होना संभव नहीं है । मुक्त की सलाह जीवनश्रेय यानी आत्मकल्याण की बात में खास करके श्रेयस्कर सिद्ध होती है, जबकि ऐहिक या स्थूल लाभालाभ की बात में स्थूल लाभ ही हो वैसे निश्चित रूप से नहीं कह सकते । फिर जो कोई

मुक्तात्मा होती है, उसकी अपनी स्वयं के व्यक्तव्य पद्धति होती है । प्रत्येक मुक्तात्मा के जीवन के पीछे उसके व्यतीत हुए समग्र जीवन को तथा जीवनविकास की साधना के लिए जिस तरह से यह वह जो भावना से और जो टेकनीक के साधन से परिश्रम करना हुआ हो, वह उन सभी में से व्यक्त होता एक सहज स्तर उसके जीवन में प्रकटता था । उसके आधार पर वह वैसी सलाह उन सभी जीवों को देता होता है । इसके अलावा भिन्न भिन्न देश की भिन्न भिन्न संस्कृति में शिक्षा ली जीवात्माएँ मुक्तदशा को प्राप्त करता है, तब भी उसके पीछे जो उसका अभ्यास और मूलगत संस्कृति है, उसकी भी प्रतिध्वनि वैसे वैसे दूसरे जीवों को दी जाती सलाह में पड़ती होती है ।

प्रश्न : आपको आखिरी साक्षात्कार श्री सांईबाबा ने करवाया था ऐसा पुस्तकों में आता है, यह ब्योरेवार बतलाएँगे ?

उत्तर : आखिरी साक्षात्कार तो नहीं, पर उस दिशा में सांईबाबा ने मुझे खूब मदद की थी । उसके बाद मुझे अमुक प्रक्रियाओं में से गुजरना पड़ा था । उपासनीबाबा ने भी मुझे मदद की थी । ब्यौरा जानने के लिए खर्च करना पड़ता है । यहाँ के (सुरत) आश्रम के पन्द्रह दिन का खर्च अथवा नडियाद में सत्तर हरिजन विद्यार्थीओं का एक भोजन का खर्च दो, क्योंकि मैंने भी दूसरी तरह से समय-शक्ति का खर्च किया है, ऐसा ब्यौरा मुफ्त में जानने को नहीं मिलेगा ।

नोंट : ऊपर का प्रत्युत्तर ता.२२-१०-६३, मंगलवार को

पूज्य श्रीमोटाने प्रार्थनासभा में दिया था । उसके बाद व्यक्तिगतरूप से उन्होंने प्रश्नकार रतिलाल मेहता को कहलाया, 'प्रभुकृपा से मेरे आश्रमों का खर्च निकलता है, इसलिए चिंता नहीं है । खर्च की बात इसलिए कही थी कि ऐसे प्रश्न सभी न पूछें । बाकी जब हम कभी कभार मिलेंगे, तब बात होगी । फिर, तुम्हें अभी जानने की क्या आवश्यकता है ?' श्रीमोटा ने आगे जाकर अपनी साधना में सांईबाबा ने कब प्रथम प्रवेश किया, वह बतलाया है । यह सत्य 'पूज्य श्रीमोटा : जीवन और कार्य' पुस्तक में प्रकाशित हुआ है ।

प्रश्न : कोई जारी मंत्र कारणवशात् बदल जाय तो बांधा आएगी ?

उत्तर : बारबार मंत्र न बदलें । किसी एक को ही पकड़कर रखें । उसकी संख्या पर बहुत भार-मदार न रखें । पर उसका सातत्य और भावना अविचल हो वैसा हृदय में प्रकटना चाहिए । मंत्र के देवता में ओतप्रोत होते चलते फिरते मंत्र हो, तब मंत्र की सिद्धि गिनी जाएगी ।

प्रश्न : मौन एकांत से बाहर आने के बाद क्लेश का अनुभव होता है, इसका क्या कारण होगा ?

उत्तर : क्योंकि संसार में आने पर इतने विक्षेप आते है पर मौन के दौरान कोई अड़चन नहीं होती । इसलिए वहाँ एकाग्रता, आनंद और ध्यान रहता है । जब बाहर निकलते हैं और दैनिक कार्य में मग्न होते हैं तब मौन के दौरान हुई एकाग्रता को, आनंद को और अशांति मिलती है । इसलिए क्लेश हो यह

स्वाभाविक है । यदि हमारा ध्येय यह है कि हम तो उसके ही रास्ते आगे बढ़ना है और अड़चन से घबराना नहीं है, ऐसा निर्णय करेंगे तभी कुछ नहीं बिगड़ेगा और एकाग्रता दुबारा प्राप्त होगी ।

प्रश्न : अंतरनाद जो सुनाई देता होगा, वह अनाहत नाद कान में जो कितनों को सुनाई देता है, उसकी तरह स्पष्ट कान को सुनाई दे, उसतरह वह अंतरनाद उठता होगा ?

उत्तर : हाँ, जैसे एक व्यक्ति दूसरे को आदेश देता हो, वैसी स्पष्ट आवाज हृदय में, अंतर में उठी-सुनाई देती है । पर ऐसा अंतरनाद खूब आगे बढ़ी हुई कक्षा में साधक को संभव होता है ।

प्रश्न : मुक्तात्मा को ऐसा अंतरनाद उठता होगा ? और उसके आधार पर वे कार्य होते जाते होंगे ?

उत्तर : नहीं, उसे अंतरनाद उठने का सवाल ही नहीं होता । अंतरनाद तो साधना की अमुक उच्च कक्षाएँ पार करने के बाद ही प्रगट होता है । मुक्त पुरुष को तो प्रेरणाएँ उठती होती है । प्रेरणा में आवाज नहीं होती ।

प्रश्न : इस मौनएकांत के दौरान कितने ही बैठनेवालों को प्रत्यक्ष आपके दर्शन होते हैं, तो यह 'प्रत्यक्ष' अर्थात् मानसिक रूप से या चर्मचक्षु द्वारा ? तो सभी को वैसा क्यों नहीं दिखता ?

उत्तर : मानसिक रूप से नहीं, पर चर्मचक्षु द्वारा, खुल्ली आँख से, जागृत दशा में स्थूल सदेह से देख सकते हैं । यह (अपना शरीर बताकर) कहीं भी हो, तो भी वह वहाँ भी हो,

जा सकता हैं और श्रद्धा के बिना सभी यह नहीं देख सकते । यह शरीर वहाँ आता जाता है ।

प्रश्न : मोटा, श्री सांईबाबा के विषय में एक यह (Sayings & Charters of Sai Baba) पुस्तक है । उसमें श्री सांईबाबा के श्रीमुख से नीचे के शब्द बाहर आये, वह इसप्रकार है :

'मैं कबीर था और कपड़े बुनता था ।'

'अकबर के दरबार में मैं काम करता था और वे मुझे आदर से देखते थे ।'

'झाँसी की रानी की सेना में भी मैं था और उसके साथ घूमता था ।'

'मैं बहुत काम करता था । इतना काम करता कि मेरी हड्डियाँ दीखती ।'

उत्तर : देखो, ऐसे महान पुरुष इतने जन्म लेकर काम किया करते है तो उसका कोई अर्थ होगा न ? अवतार अनंत हैं । कुछ भी स्थिर नहीं । जितना काम करो उतना कम । तो हमारा क्या ? हम तो हिलना नहीं चाहते ! इसलिए जहाँ खड़े हो, वहाँ से थोड़ा हटो तो सब अच्छा कहलाएगा । बढ़ते चलो, चलते चलो ।

प्रश्न : वेदांती ब्रह्म को ही सत्य मानते हैं और जगत को मिथ्या अर्थात् बैठे रहना ?

उत्तर : वटवृक्ष ऊपर ऊठकर फूलताफलता है और दुबारा नीचे जमीन पर आता है । इसी तरह हमें भी पढ़ लिखकर विकसित होकर जमीन पर वापिस आना है और काम करना है ।

'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या', यह यादकर करके बेदरकार नहीं होना है । इस परमसत्य का अर्थ पचाना है, अनुभव करना है और सृष्टि के प्रति प्रेम से देखना है । वेदांत के नाम से ढोंग नहीं करना है । तुम जहाँ हो, वहाँ से आगे बढ़ो ।

प्रश्न : हमें कौन रास्ता दिखलाएगा ?

उत्तर : तुम्हारे गुरु को पूछो न ! अरे ! कुछ निश्चित रूप से करोगे तो उत्तर अंदर से ही मिला करेगा ।

प्रश्न : तोतापुरी नागाबाबा ने (अथवा नागटा ने) जिन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंस को अद्वैत का साक्षात्कार कराने में सहायता की थी और जो ब्रह्मज्ञानी थे, उन्होंने एक भाई को अपनी धूनी में से छूकर अंगारे लेने के लिए अच्छा खासा क्रोध करके चीमटा मारने उठे थे । तो ऐसे ब्रह्मज्ञानी को ऐसा क्षुल्लक कारण से क्रोध कैसा ?

उत्तर : यह क्रोध सतही होता है । अंतर में वे खूब शांत होते है । फिर, कर्मकांडी, फिर वे मुक्त हो तो भी ऐसी छुआछुत यह तो उनके स्वभाव का मात्र एक लक्षण है । कोई बाह्य लक्षण से किसी का योग्य मूल्यांकन नहीं हो सकता । गुण गुण में व्याप्त है, ऐसा संपूर्ण प्रत्यक्ष साक्षीभाव अनुभवी में जीवंत अखंडित प्रत्येक पल चेतनात्मक व्याप्त होता है, इसलिए उन्हें ऐसे साक्षीभाव के कारण लागू नहीं होता । फिर, कर्मकांड के लगातार अभ्यास में जिसका जीवन बीता हो, वैसी आत्मा उसके कर्मकांड के अध्ययन के फलस्वरूप उसके प्रति अध्ययन जीवंत रखता है और उसके मन में कर्मकांड एक क्षुल्लक आचार मात्र

नहीं होता, उसे वह पवित्र से पवित्र गिनता है । फिर दूसरे किसी संयोग में जैसे साप अपनी त्वचा उतार डालता है, वैसे वह छुआछुत को संपूर्ण रूप से छोड़ सकता है ।

प्रश्न : (एक पारसी भाई) पूज्य श्री सत्यसांईबाबा ने उनकी छबी और पतावाला कार्ड हवा में से निकालकर भेंट दिया था । यह कार्ड देने का क्या कारण ?

उत्तर : उन छबीवाले सांईबाबा की भक्ति करो ।

प्रश्न : भक्ति कैसे होती है ?

उत्तर : बाबा की सतत, चलते फिरते याद लानी । सब उन्हें समर्पण करते रहें, इसका नाम भक्ति ।

प्रश्न : शांति कैसे मिले ?

उत्तर : भक्ति हो तो । तुम बाबा को बारबार याद करते हो ?

प्रश्न : हाँ प्रभु ।

उत्तर : तो शांति मिलनी चाहिए ।

प्रश्न : मैं एक युनियन का मंत्री हूँ । उसमें बहुत झगड़े होते है, तब त्यागपत्र दे देने का मन होता है, तो क्या करूँ ?

उत्तर : त्यागपत्र दे देना कायरता है । सच्चा भक्त प्राप्त संयोगों से भागता नहीं है । सत्य के लिए लड़ना चाहिए । चुनाव में हार जाँए तो आपत्ति नहीं, पर निराशा होकर त्यागपत्र न दे और निरासक्त भाव से जो काम आये उसे करें । इससे शांति मिलेगी ।

प्रश्न : भगवान के पास कुछ भी माँग सकते हैं ?

उत्तर : बालक मातापिता से क्या नहीं माँगता ? तो ईश्वर से माँगने में क्या आपत्ति ?

प्रश्न : ईश्वर तो अंतर्यामी हैं और हमें किसकी आवश्यकता है, इसका पता न हो ?

उत्तर : रास्ते में जानेवाले की भी वह (ईश्वर) खबर रखता है ? तुम उसकी ओर न मुड़े हो और तुम उसके पास आशा रखो ? यह कैसे हो ?

प्रश्न : मोटा, श्रीराम और श्रीकृष्ण अवतार थे, तब भी उनकी मर्यादाएँ सही ?

उत्तर : हाँ, पूर्ण चेतन का अनंत विस्तार होता है । अवतारधारी अर्थात् अवतारधारी, उसका प्रारब्ध होगा – फिर भले ही वह जली हुई रस्सी की ऐंटन जितना हो ।

प्रश्न : पर आजकल अनेक-अमुक महात्माओं के भक्त ऐसा कहते होते हैं – 'हमारे' गुरु तो साक्षात् भगवान, सर्वशक्तिमान, मुक्तात्मा और उनके बीच बहुत अंतर – ऐसा सब वे कहते है ।

उत्तर : भले कहते हैं । शुद्ध चेतन और अवतार के बीच अंतर है सही । यह समझने जैसी बात है ।

प्रश्न : (एक बहन का) कभी कभी ऐसा अनुभव हो जाता है कि यह शरीर अलग है और अंदर की आत्मा के साथ इसका कोई संबंध नहीं है ।

उत्तर : ऐसा अनुभव हो वह अच्छा है । पर उसकी असर हमारे जीवन में प्रकटनी चाहिए । देवत्व का अनुभव होता हो तो दूसरों के प्रति सद्भाव आना चाहिए । हमें गाली देनेवाले पर भी भाव टिकना चाहिए ।

प्रश्न : इस जन्म में जो दो दोस्त होते है, वे आनेवाले जन्म में भी दोस्त बने रहेंगे ?

उत्तर : यदि वे दोनों जन बहुत लम्बे समय तक — लगभग तीस वर्ष तक जिगरी दोस्त रहे हों तो दूसरे जन्म में भी वे दोस्त रहेंगे सही । पर उसका आधार है, उनकी मृत्यु के समय उन उन जीव की मति-गति के ऊपर । वे मित्र रूप में ही मिले ऐसा न भी हो, पर पिता-पुत्र के रूप में, पति-पत्नी के रूप में मिले । यद्यपि इसका आधार उनकी दोस्ती की अंतिम भावना के प्रकार पर है । यही बात इस जन्म में पति-पत्नी और अन्य संगेसंबंधिओं पर लागू होती है ।

प्रश्न : भक्ति के लिए चित्तशुद्धि आवश्यक है ? चित्तशुद्धि से भक्ति जाग्रत होगी ?

उत्तर : भगवान का अनुभव करने के लिए गुण केवल मदद नहीं करते । इसके लिए भावना आवश्यक है । और् साथ ही साथ प्रभुप्रीत्यर्थ काम करना । इसलिए मैं कर्म करते करते नामस्मरण, भजन, आत्मनिवेदन करना, मौन पालता और अभय प्रकट हो उसकी सक्रिय कोशिश में प्रवृत्त रहता । जीवनविकास के प्रति चिपके रहने की भावना, **सरेश की तरह उसमें जुड़े रहने की उत्कट तमन्ना, उसका नाम भावना ।** इसलिए केवल चित्तशुद्धि पर झुकाव देने से भक्ति नहीं प्रगट होती ।

भगवान का अनुभव करने के लिए चित्तशुद्धि अनिवार्य है । पर उसके साथ भावना, मौन, अभय आदि गुण और नामस्मरण

अनिवार्य रूप से जरूरी है । उच्च चारित्र्यवाले नास्तिक भी होते है । ऐसे मनुष्य ज्ञान में प्रगट हो भी सही । इसलिए चारित्र्यशील मनुष्यों में ही भक्ति अपनेआप जग जाती है, ऐसा मानना गलत है । फिर केवल चित्तशुद्धि करना बहुत कठिन काम है, क्योंकि संसार के प्रवाहों से हम वंचित नहीं रह सकते । यदि भक्ति बढ़ाते बढ़ाते चित्तशुद्धि के प्रति ध्यान देंगे तो वह काम सरल हो जाएगा । फिर, भक्ति को लेकर अनेक गुणसमुदाय का विकास होता है । इससे वह निर्भय होता जाता है, जो गुण ईश्वर के अनुभव के लिए खूब जरूरी है ।

प्रश्न : जप और ध्यान दोनों परस्पर जुड़े नहीं लगते ?

उत्तर : वाचिक जप में से आदत डाल कर, मुँह बंद करके मात्र जीम हिलाकर मन में जप हो सके । उसमें से प्रयत्न करते हृदय में से अपनेआप वह होता जाएगा । हृदय की धड़कन के साथ जप हो वह उत्तम, क्योंकि **जप का उद्‌भव स्थान हृदय है । जप स्वयं एक भाव ही है, इसलिए उस भाव में स्थापित हो गये तो ध्यान अपनेआप लग जाएगा** और उसमें से धारणा भी रहा करेगी । इसतरह जप, ध्यान, धारणा सभी व्यवस्थित हो जाएँगे । आजकल ध्यान के केन्द्र चलते हैं और संक्षिप्त रास्ते उसके लिए बताये जाते हैं, पर उसकी क्रमबद्ध प्रक्रिया बताने में नहीं आती । इसलिए दुबारा जो तो सभी ध्यान के विषय में जहाँ तहाँ पूछते रहते है । पुस्तकें तो उन पर हजारों लिखी गई है, पर वे केवल पढ़ने से कुछ न हो ! नियमित रूप से, सतत तमन्ना से, प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक, एक समय, एक ही

स्थान में अभ्यास की आदत डालो और उस विषय में ओतप्रोत हो जाओ तो बहुत सहज है । बात करने से कुछ नहीं होगा । चलने लगो, चलने लगो ।

प्रश्न : जोर से नामस्मरण करने में कोई विशेष लाभ सही ?

उत्तर : हाँ, इससे विचारों की परम्परा रुक जाती है । मानसिक स्मरण, जप से भरपूर विचार उभारते होते हैं और अधिक रुकावट खड़ी होती है । यद्यपि जोर से जप करने के बाद मन में जप करने की आदत डालनी चाहिए और हमें ध्यान, जप पर, उसके भाव पर, उसके मूल स्थान चेतन, के विषय में भावना जगानी है । जोर से स्मरण करने से आंदोलन खड़े होते है और आधार★ के केन्द्रों को स्पर्श करते है ।

प्रश्न : भगवान के साथ संबंध बांधना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए आदि कहा गया है, पर ऐसा मन होता न हो तो क्या करें ?

उत्तर : एक उपाय है । ईश्वर हमारा अपना प्रियजन हो उसतरह, मित्र, पत्नी या दूसरे कोई ऐसे प्रिय से बात करते हों उसतरह और जो तो सभी खूब भावना से हमेशा संबोधन करना रखें । ऐसा करते करते ऐसी आदत हो जाएगी, उस वस्तु में सातत्य आ जाएगा । फिर, सत्संग की भी बहुत आवश्यकता है । जीवंत सत्संग न मिले तो ऐसे संत पुरुषों के जीवनचरित्रों को पढ़ने का रखें । इससे ईश्वर के विषय में भाव जागेगा ।

★मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार

प्रश्न : आदि शंकराचार्य ने एक जगह इस अनुसार कहा है –

दुर्लभम् त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रय : ॥

आप इसे विस्तार के समझाएँगे ?

उत्तर : मानवपना, मुमुक्षत्व (मुक्ति – प्राप्ति की उत्कट जिज्ञासा) और महापुरुष का आश्रय मिलना, यह तीनों बात बहुत दुर्लभ हैं, और फिर भी यदि वे मिलें तो ईश्वर की कृपा का चिह्न समझना, ऐसा महाप्रभुजी शंकराचार्य कहते है । अब हम प्रथम 'मनुष्यत्व' शब्द लें । 'मनुष्यत्व' यानी हाड, मांस, चमड़ी का बना ढाँचा नहीं, संपूर्ण जीवदशावाला, काम, क्रोध, लोभादि से भरा प्रकृतिवाला शरीर नहीं, पर मनुष्यत्व का लक्षण अर्थात् उत्तम गुण जिसके जीवन में पनपने लगे हों ऐसा *'मनुष्यत्वम्'* इस अर्थ में *'मनुष्यत्वम्'* यानी कि जिसके जीवन में मानवता पनपने लगी है, अनेक उत्तम प्रकार के गुणों से उसका शरीर उमंग में दिखावट से धीरे धीरे चलता है, ऐसे उत्तम गुणोंवाला जीवन 'मनुष्यत्वम्' और वैसे जीवन में ही मुमुक्षुत्व की, मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा, जिज्ञासा, भावना जागती है ।

किसी को अब ऐसा प्रश्न उठे कि, कोई भारी कामी और जीवदशावाला हो, वह भक्त किस तरह हुआ होगा ? बिल्वमंगल का उदाहरण ले । अंधेरी तारोंवाली रात, नदी में भयंकर बाढ़ आयी थी, तब बह बहते हुए मुर्दे को लकड़ी समझकर उसके आधार पर नदी पार करके सामने के किनारे पर पहुँच जाता है । वह उस स्त्री के घर में पिछले दरवाजे से चढ़कर प्रवेश करते

समय उसके हाथ में साप आ जाता है । ऐसा तो वह कामांध था ! उसका एक हेतु उस स्त्री को जाकर मिलना था । उसमें वह इतना लीन था कि वह किसी भय को नहीं पहचानता । ऐसी दशा में वह स्त्री उसे मीठी उलाहना देती है और उसका मुँह ईश्वर की और फिर जाता है ! यह आश्चर्यजनक लगता है न ? नहीं, उसमें भूमिका थी, मानवता थी, गुण विकसित थे, इसलिए एक ही वचन से उसका जीवन पलट गया और महान भक्त बन गये । ऐसे गुणवाले मनुष्य में मुमुक्षुत्व भावना आती है । ऐसी जिज्ञासा जब जिसके जीवन में आती है, तब उसका जीवन बदल जाता है, क्योंकि सच्ची जिज्ञासा गतिशील, क्रियाशील और सर्जनशील होती है । ऐसी जिज्ञासा कभी बिठाकर नहीं रखती ।

जब ज्वालामुखी जैसी प्रचंड जिज्ञासा जागती है, तब उसे फलदायी करने के लिए, उसे विकसित करने के लिए, भगवान की कृपा से उसे कोई न कोई आधार मिल जाता है । इसके लिए उसे खोजने भी नहीं जाना पड़ेगा । ऐसे मनुष्य को महापुरुष का आश्रय मिल जाता है, पर उसका प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक स्वीकार होना, यह जिस तिससे नहीं होता, क्योंकि उन महापुरुष का जीवन और आचरण अपना विशिष्ट होता है और उस विशिष्ट व्यवहार को सहन करना उसकी योग्यतानुसार स्वयं के हेतु को फलित करने की चेतनाशील सभानता के साथ उसका स्वीकार करें । और स्वीकार करना इतना ही नहीं पर अपने आधार में पकड़कर अपने आधार के अलग अलग करणों के ऊर्ध्वगामी रीत से में विकसित करने के लिए आकार देना और उसी अनुसार हमारे

आधार के करणों का जो प्रकृतिधर्म है, उस प्रकृतिधर्म को पलटाना। यह सब कोई एकाद महापुरुष में भावना भक्ति जागे तो उसी अनुसार हम कर सकते हैं, क्योंकि महापुरुष मिलने शायद सरल हो जाए, पर उसे अपने जीवन के आधार में स्वीकार कर अपने आधार को चेतना में प्रगट करने के लिए, चेतना को ग्रहण करने, स्वीकार करने और उस अनुसार फलित होने के लिए उस आधार को योग्य होने देना यह कठिन है । तो इसप्रकार उचित करने के लिए उस महापुरुष का आश्रय है। और उसके प्रति उत्कट में उत्कट गरज और भक्ति जागी है, वैसा जीव ही उस महापुरुष के माने अनुसार स्वयं व्यवहार कर सकेगा ।

इस प्रकार, ये तीनों जिसे प्राप्त हैं, उस पर भगवान का संपूर्ण अनुग्रह है, संपूर्ण कृपा है, ऐसा समझना, क्योंकि वैसा जीव चेतनशील हुए बिना नहीं रह सकता । इसकी खूबी तो देखो – आद्य शंकराचार्य महाप्रभु ने कहा कि ये तीनों मिलने दिर्लभ हैं । इसलिए ही कहा है कि प्रत्येक सामान्य जीव को मनुष्य का देह को मिला ही है, परन्तु प्रत्येक जन में ऐसा सच मनुष्यत्व खिला हुआ नहीं होता । इसलिए उसमें मुमुक्षुत्व तो होगा ही कहाँ से ? और वह होगा ही नहीं तो उसे महापुरुष का आश्रय शायद मिले, कोई काल निमित्त को लेकर मिल जाय, ऐसों के साथ किसी जीवन में हम जुड़े हों, इससे हमें वह मिल जाँय तब भी, हम में कुछ बरकत नहीं आएगी । यानी कि महापुरुष मिलने पर भी उनका हम उचित लाभ नहीं ले पाते । इससे ये तीनों मिलने दुर्लभ है ।

प्रश्न : आप अनेक बार कहते हो कि जीव कोई संतमहात्मा के प्रति राग रखते हो तो वैसे जीव का तुरन्त कल्याणभरा पुनर्जन्म होता है तो वैसा आपका अनुभव हो तो बतलाइए ।

उत्तर : मुझे मेरे गुरुमहाराज ने कहा एक सिद्धांत याद आता है । वह यह कि, किसी जीव को कोई साधुमहात्मा के प्रति राग, मोह, भक्ति किसी भी प्रकार से हो अथवा किसी महात्मा को वैसे जीव के प्रति भाव हो तो वैसे जीव का कल्याणकारी पुनर्जन्म तत्काल हो जाता है । इस बात की परीक्षा मेरे जीवन में ही कर देखने का मेरे मन में विचार आया और मेरा जीवन तो हमेशा प्रयोगशील ही रहा है । प्रयोग करने से जो सिद्ध हो वही सच्चाशास्त्र । केवल पढ़ी या सुनी बातों पर मैं ऐसे ही विश्वास नहीं रख सकता । इसलिए अपने तो गुरुमहाराज की कृपा से 'माँ का जन्म शीघ्र हुआ है क्या?' इसे जाँचने के लिए मैं ध्यान में बैठ गया । जिससे मेरी आध्यात्मिक स्थिति कि भी परीक्षा हो जाय । ध्यान की एक परिस्थिति है, उसमें 'संयम' आता है । योग की भाषा का 'संयम' है । सामान्य रूढ़ अर्थ में संयम शब्द का उपयोग करते हैं वह नहीं । ध्यान में संपूर्णरूप से एकाकार हो जाए और शरीर की सभानता जाने के क्षण में ही यदि कोई संकल्प हम रखें तो वह संकल्प साकार हो जाता है । यह कोई छोटी बात नहीं है । बोलने में सरल लगती है । परन्तु ऐसी उत्कट सभानता जीवंत चेतनाशील रखना यह दुर्घट है । परन्तु गुरुमहाराज की दया से मेरे लिए यह स्थिति सुलभ थी, इतना नम्रतापूर्वक कहूँ तो क्षमा करना ।

इसलिए ध्यान में बैठकर ऐसा संकल्प (माँ के पुनर्जन्म की जानकारी के बारे में) मैंने अपने में धारण किया और ऐसा वह धारण करते ही काशी की गलियाँ, रास्ते, मुहल्ला, मोड़ आदि जो भी है, वह प्रत्यक्ष मेरी दृष्टि में आया । और अंत में एक मोड़वाली गली में आये एक घर में एक बालिका का जन्म हुआ है यह पता लगा । वह बालिका मेरी माँ का स्वरूप है, वह मेरे ध्यान में स्पष्ट आ गया ।

फिर सुबह ध्यान करते हुए जो दिखाई दिया था, उन निशानिओं को देख देखकर उस घर को खोजने लगा । अंत में वह घर मिला । उसके प्रांगण में जाकर बैठा । अंदर तो कैसे जा सकता था ? इसलिए भजन गाने लगा । कुछ देर बाद अंदर से किसी बहन ने आकर मेरे आगमन का प्रयोजन पूछा । मैंने उससे कहा, 'मुझे रात को स्वप्न आया था कि आपके घर बालिका का जन्म हुआ है । वह जीव मेरे जीवन के साथ जुड़ा जीव है । उसके दर्शन करके मैं चला जाऊँगा । भगवान का आदेश है इसलिए आया हूँ ।' ऐसा कहने से वे लोग दया से प्रेरित हो मुझे अपने घर में ले गये और बालिका को लाकर मेरी गोद में रखा । मैं बालिका के पैरों में पड़ा । मुझे प्रतीति हुई कि ध्यान में जिसके दर्शन किये थे, वह यही है ।

मुझे तब ठीक से समझ आ गया कि शरीरधारी चेतननिष्ठ आत्मा के साथ जिसे सचमुच का राग हुआ हो अथवा उस आत्मा को किसी जीव के प्रति प्रेमभाव हो तो वैसा जीव फिर से तुरन्त जन्म पा लेता है । भगवान ने अत्यन्त कृपा करके मुझे

इस प्रयोग का दर्शन करवाया । इससे मेरे जीवन में जो गद्‌गद भाव प्रगट हुआ और इससे भगवान पर कितना न्योछावर हुआ हूँ इसकी तो कल्पना करने से समझ सकते हैं, ऐसा यह सच है ।

प्रश्न : नामस्मरण से रोग मिटते हैं, इसे आप वैज्ञानिक रूप से समझाने की कृपा करेंगे ?

उत्तर : *'गरज बिचारी दीन, तब बुद्धि दिवाला निकाले ।'* मुझे मिरगी का रोग था । उसे मिटाने की बहुत गरज थी, इसलिए बुद्धि ने 'दिवाला' निकाला । और एक साधुमहात्मा की सलाह अनुसार 'हरिः ॐ' का मंत्र रटने लगा और योजनापूर्वक नामस्मरण करते करते चार छः महिने में मेरी मिरगी मिट गयी । यह रोग इस मंत्र के जप से मिटा यह सच है पर किस तरह उसकी असर हुई, यह मैं समझ नहीं सका था । तब के पूज्य विद्यानंदजी महाराज, गोदडिया महाराज, प्रज्ञाचक्षु गंगेश्वरानंदजी और इतर महात्माओं को इसके लिए पूछा, परन्तु उन सभी के एक समान उत्तर थे कि भावना हो उस अनुसार फलित होती है । मुझे इससे संतोष नहीं हुआ था ।

फिर मुझे धीरे धीरे समझ में आने लगा । शब्द का स्फोट होने का केन्द्र है, वहाँ, जहाँ आवाज स्फोट होती है, वहाँ अनेक प्रकार के ज्ञानतंतुओं के केन्द्र है । ज्ञानतंतु अनेक प्रकार के होते है । उनके केन्द्र आगेपीछे रहे होते है । नाम का स्फोट हो, आवाज हो, वे ज्ञानतंतुओं के अनेक केन्द्रों को भी स्पर्श करा करते हैं । इस कारण से अनेक प्रकार की उत्पन्न होती तरंगें केन्द्रों को चारों ओर से सतत स्पर्श करती रहती हैं और उस स्पर्श

से ज्ञानतंतुओं *'टोनअप'* प्राणवान होते है, मजबूत होते है । इसतरह से मुझे सहन करने की शक्ति मिली ।

इससे शब्द है तो खाली शब्द नहीं । हमारी संस्कृति में शब्द को ब्रह्म कहा है । उस ब्रह्म की भावना, उस शब्द के हार्द में ही निहित हुई है । इस संस्कृति को जो जानकार है और स्मरण करता है, उसके हृदय में ऐसी भावना जप के साथ प्रगट हुआ करती है ।

ऐसा करते हुए जब शब्द अखंड होता है, तब वह अखंडाकार शब्द की जो भावना प्रगट होती है, वह भी उसके साथ होती है ।

मूल बात में जाँए तो हम में पाँच तत्त्व है – आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी । इस तरह तीन गुण – सत्त्व, रजस और् तमस । आकाश का संबंध सत्त्वगुण के साथ है । तेज और वायु में अतिशय गति होती है, इसलिए उनका संबंध रजस के साथ होता है । रजस में अत्यन्त गति होती है । हवा से भी अधिक और अंतिम जल और पृथ्वी – उसमें *Inertia 'इनर्शिया'* अर्थात् जड़ता होती है । इसलिए इन दोनों का संबंध तमस के साथ है । तमस यानी जड़ता, मंदता । इसप्रकार ये तीन गुण उन पाँच तत्त्वों के साथ किस तरह जुड़े है यह देखा ।

अब शब्द जब अखंड होता है, तब हमारी भूमिका में आकाशतत्त्व *'प्रिडोमिनन्ट'* अग्र रहता है, क्योंकि शब्द का संबंध आकाशतत्त्व के साथ है, जब हमारे समग्र आधार में सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा हो, तब शब्द–गुण अधिकतर महत्त्वपूर्ण भूमिका का

काम करता है, तब तमस और रजस गौण हो जाते है । कामक्रोधादि विषय यह रजस और तमस गुण के हैं; सत्त्व में वे नहीं होते । सत्त्वगुण अगुआ प्रगट होने से हम में कामक्रोधादि की असर नहीं होगी, यह मेरी समझ में आया । इसप्रकार 'शब्द' अखंड हो, तब सत्त्वगुण आगे रहता है और यों उसका अखंड होना यह सरल बात नहीं है ।

इसतरह शब्द का कितना अधिक महत्त्व है, यह तुम समझ गये होगे । संसार में गाली की असर, प्यार की असर कैसी होती है इसका सभी को अनुभव है । राजनीतिज्ञों की भाषा का जादू देखो । वे लोग इतने सहृदयी और प्रामाणिक होते हैं ? तब भी उनकी भाषा का जादू होता है तो भगवान के भाव में रंगे हुए मनुष्य की वाणी तो और ही होगी । इससे नामस्मरण के जादू से कामक्रोधादि किस तरह कम हो जाते हैं और रोग भी, यह तुम्हें समझाया ।

प्रश्न : आपने प्राणायाम और कुंडलिनी के विषय में कोई विशेष कहा या लिखा नहीं है, जब कि अनेक महात्मा उस पर खूब भार डालते हैं और उसके विषय में अनेक चर्चाएँ होती हैं । तो इसके विषय में आप कुछ कहोंगे ?

उत्तर : प्राणायाम योग की उत्तम क्रिया है । प्राण की क्रिया से प्रकृति को वश में कर सकते है । द्वन्द्व और गुण पर रची प्रकृति के ऊर्ध्वगमन के लिए प्राणायाम यह संक्षिप्त मार्ग है । यह सरल से सरल है और कठिन से कठिन भी ।

प्राणायाम कौन कर सकता है ? मेरी समझ अनुसार कोई

भी संसारी सुख भोगनेवाला स्त्री-पुरुष प्राणायाम नहीं कर सकता । हाँ, सामान्य, साधारण प्राणायाम कर सकते हैं । पर जिसे प्रकृति का रूपांतर करना है, उसके लिए कठिन प्राणायाम की जरूरत है । नैष्ठिक ब्रह्मचर्य जिसके जीवन में लगातार, चेतनाशील प्रगट हुआ हो, वैसा ही मनुष्य इसतरह के कठिन प्राणायाम कर सकता है, क्योंकि प्राणायाम में मुख्य आधार है श्वास । इसके लिए फेकड़े ऐसे मजबूत होने चाहिए कि श्वास की एक समान की गति में जरा भी फरक ना पड़े । उसे लेने और छोड़ने में, इतना ही नहीं पर वहाँ फेफड़ो के अंदर भी एकसमान टिकने में, इतना ही नहीं पर फेफड़ो में *'वेक्युम'* (रिक्त स्थान) हो, तब अमुक प्रकार की एकसमान समतोलन प्रगट करने की शक्ति मात्र ब्रह्मचर्य में ही रहती है, दूसरी किसी स्थिति में ऐसी संभावना नहीं है ।

हमारे फेफड़ों की गति पर ही मनुष्य के जीवन का आधार है और इस श्वास की गति पर ही कामक्रोधादि है । यह किसी को समझ में नहीं आएगा । यदि अत्यन्त कामातुर कोई हो तो उसके फेफड़ों की गति समझ लो, जाँच करवा लो ; नाड़ी से भी समझ सकते हैं । मोह की अत्यन्त तीव्रता में, इसी तरह अत्यन्त लोभ में और गुस्से में हो तो रक्तसंचार नाड़ी से, श्वास से समझ आ जाता है । ऐसे मनुष्य आज भी हमारे देश में हैं कि जो हमारे श्वास पर से हमारी मानसिक स्थिति का पता लगा सकते हैं, पर वे ऐसा बतलाते नहीं हैं । तब मनुष्य के जीवन का प्रत्यक्ष प्रमाण तो श्वास है । उस श्वास को अमुक प्रकार की

नियमितता में लाने के लिए प्राणायाम बहुत बड़ा भाग निभाता है, पर वह प्राणायाम किसी ऐसे वैसे के पास सीखने बैठेंगे तो लाभ के बदले गैरलाभ ही होगा, क्योंकि श्वास की नियमितता वे नहीं प्रगट कर पाएँगे । इसलिए मेरे पास कोई प्राणायाम सीखने आता है तो मैं मना कर देता हूँ कि मुझे नहीं आता ।

अब कुंडलिनी के विषय में – **कुंडलिनी अपनेआप जागे वह सर्वश्रेष्ठ ।** किसी भी चेतना मे प्रगट हुई आत्मा कोई भी श्रेयार्थी की भूमिका परिपक्व न हुई हो, उसकी कुंडलिनी वह जागृत न कराये । कुंडलिनी स्वयं जागृत होती हो तो वह उत्तम । जहाँ तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदि कम न हुए हों, वहाँ तक कुंडलिनी स्वयं उठाने का यत्न करो तो अधःपतन को निमंत्रण देने जैसा है । भगवान की भक्ति में जब हमें रस लगता है, तब कुंडलिनी स्वयं जगती है ।

यह कुंडलिनी जागृत हो इसप्रकार की साधना और विधि–प्रक्रिया है, यह बात सत्य है । और ऐसी शक्ति प्राप्त करके ऐसी प्रचंड शक्ति से जीवदशा में से चेतन अवस्था में होने के लिए ही एकमात्र उसका उपयोग होना चाहिए ।

कुंडलिनी शक्ति यह भगवतशक्ति है और उसका भगवान के सिवाय दूसरे किसी में उपयोग हो ही नहीं सकता । भगवान की स्थिति में जीवंत चेतनात्मकपना प्रगटाने के लिए ही उसका उपयोग हो, ऐसी ज्ञानपूर्वक की, भक्तिपूर्वक की सभानता उसके उपयोग के लिए और हेतु के लिए हमारे दिल में जागी होनी चाहिए । और ऐसा हो तो ही उसका उपयोग हो सके । इसप्रकार

की जिस श्रेयार्थी की भूमिका परिपक्व न हो, उसमें कोई भी सद्गुरु कुंडलिनी जागृत नहीं करेगा, क्योंकि चेतना में प्रगट हुआ कोई भी गुरु कुंडलिनी शक्ति का महत्त्व समझता होता है । कोई भी सद्गुरु अनुभवहीन को यह नहीं कर सकता, करे तो वह सद्गुरु नहीं । बाकी, आजकल तो अखा भगत ने कहा है कि यह सब 'अंधा कुँआ' जैसा है ।

भगवान की भक्ति के लिए जिसकी आँख थोड़ी भी खुली है, उनके लिए मेरी प्रार्थना है कि भगवान के मार्ग में *'शोर्टकट'* संक्षिप्त रास्ता नहीं और यह मार्ग तो तप, त्याग और परमार्थ माँग लेता है । इसके लिए तुम में कितनी भावना है, वह गहरे पैठकर जाँच लें, जो कोई श्रेयार्थी या वैसे प्रत्येक श्रेयार्थी के जीवन में जब यह तप, त्याग और परमार्थ लगातार व्याप्त हो तो उसे प्रभुकृपा से समझ लेना कि हम इस श्रेय के मार्ग के यात्री है । इसलिए जिसे दिल की थोड़ी बहुत अभिरुचि प्रकटी है, उन्हें तो मेरी प्रार्थना है कि भाईओं, यह त्याग, तप और पुरुषार्थ का मार्ग पकड़े और भगवान के लिए आग जले वैसी तीव्र में तीव्र झंखना जागने दें और इस कुंडलिनी शक्ति को जगाने या उसके पीछे उत्साह न रखें । भगवान के लिए भावना हमारे जीवन में अखंडाकार होते ही वह स्वयं प्रगट होगी । यह कुंडलिनी भवानी माता की प्रसन्नता के बिना यह साधना के उच्चतम क्षेत्रों में संग्राम नहीं खेल सकते । माता की संपूर्ण प्रसन्नता पाकर ही भगवान के द्वार खोल सकते हैं, यह बात भी उतनी ही सच है । परन्तु इस काल में जो और वो सभी यह

कुंडलिनी की बात लेकर बैठे हैं और अखबारों में या मासिकों में सभी बात लिखी होती है, वह मुझे तो बिलकुल ठीक नहीं लगती और यह एक प्रकार की कोरी अंधाधुंधी जैसी लगती है ।

कोई अचानक बी.ए. नहीं हो सकता । उसे पहले कितने सारे वर्ष पढ़ाई करनी पड़ती है, तब बी.ए. हो पाता है । यह एक स्थूल अभ्यास की बात है, तो वह एक सूक्ष्मतम दिव्य भूमिका का यथार्थ है और वह भी साधना करते करते कोई साधना की उच्चतम भूमिका में प्रवेश पाये, तब जो शक्ति की मदद बिना श्रेयार्थी को बिलकुल नहीं चल सकेगा, वह आ मिलता है । उस समय वह सूक्ष्मतम भूमिकाओं में जो देवासुर संग्राम होता है, उसका सामना करने यह एक ही भगवती माँ की शक्ति काम में लगती है । जैसे देवासुर संग्राम में देव हारकर विष्णु भगवान के पास दौड़कर जाते हैं और शक्तिमान होकर लौटते और असुरों के साथ लड़कर उन्हें हराते हैं । वैसे इस क्षेत्र में भी कुंडलिनी शक्ति की मदद से असुरों को हराकर अध्यात्म के शिखर विजित कर सकते हैं । वे भगवती माँ तब हमारे साथ में हो, तभी हम वहाँ टिक सकते हैं । और हारते हारते भी वे भगवती माँ ही हमें तब लड़ने की जो शक्ति देती है, यह तो वे युद्ध के पक्के खिलाड़ी ही समझ सकते है । परन्तु **आजकल तो जैसे तैसे कुंडलिनी शक्ति जगाने की बात चलती है, वह कोरी मूर्खता लगती है । इसतरह कहने के लिए मुझे माफ करना ।**

जैसे कोई शराबी, लफंगा, लुच्चा, प्रपंची हो उसे किसी भाग्य संयोग से ढेर सारी लक्ष्मी मिल जाय तो, विचार कर देखो,

उसका कैसे उपयोग हो ? उसीतरह यदि कोई श्रेयार्थी या जीवनविकास मार्ग के साधक के आधार में कुंडलिनी शक्ति का उपयोग करने की कला, कला की योग्य भूमिका प्रगट नहीं हुई है, ऐसे जीव को कोई भी सद्गुरु कुंडलिनी जागृत नहीं करवाएगा । यह मेरी अनुभव की समझ है ।

प्रश्न : पुण्य से पाप ठेले जा सकते है, ऐसी एक उक्ति है, उसमें तथ्य है ?

उत्तर : नहीं, क्योंकि पुण्यकर्म करते करते भी जाने अनजाने पापकर्म भी होते जाते हैं । इसलिए नये कर्म के बंधन में बंधते जाते हैं । कभी पापकर्म करते पुण्यकर्म हो जाये, तो वे अपवाद रूप हैं - बाकी, पुण्यकर्म से पाप ठेले जाते है, ऐसा कहना सौ प्रतिशत सच नहीं । यदि चेतनता, हेतु के ज्ञानभान के साथ, श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ सत्कर्म करे तो इतना लाभ हो । तदुपरांत, सत्कर्म और पापकर्म दोनों का बदला - फल भुगतना पड़ता है ।

प्रश्न : किसी निराशा अथवा आघात मिलने पर जीव भक्ति मार्ग की ओर जाता है, यह सच है ? और इसतरह जाता हुआ जीव कितना आगे बढ़ सकता है ?

उत्तर : दुःख पड़ने पर ईश्वर याद आते हैं, ऐसा गिना जाता है । यह होगा, पर इसतरह निराशा या आघात से भक्ति करनेवाला जीव बहुत आगे बढ़ सके ऐसा मैं नहीं मानता । जो जीवन के आंधीतूफान से घबराकर भाग जाता हो, वैसा नामर्द जीव भक्ति क्या कर सकेगा ? वैसा जीव हरगिज नहीं कर

पाएगा, क्योंकि भक्तिपथ में अनेक अवरोध, भयानक मुठ्भेड़, संघर्ष, निराशाएँ, हताशाएँ मिलेगी । इसके लिए मनुष्य बहुत जोशवाला, हिंमतवाला और खुमारीवाला होना चाहिए । कम बोलनेवाला, ईश्वर व गुरु के लिए न्योछावर हो जानेवाला होगा, कदम कदम में आते कंटकों और कंकड़ो से हारकर थकनेवाला नहीं होगा । जो जीव सर्व तरह से सर्व भाव से समर्पण करनेवाला होगा, वही इस मार्ग में आगे बढ़ सकता है, दूसरा नहीं । जिस जीव में गुण और भावना उभरती होगी, वैसा ही जीव साधनाक्षेत्र में आगे बढ़ सकेगा, दूसरा नहीं ।

प्रश्न : आप गुणभावना के विकास पर इतना सारा भार देते हैं, ऐसा क्यों ? आप समझाएँगे ? और भाव किस तरह प्रकट हो सके ?

उत्तर : मनुष्य जब प्रवृत्ति में रत हुआ हो, तब वह अपने बारे में, स्वविकास संबंधी सोच नहीं सकता, इतना सारा वह बहिर्मुख होता है । यदि वह अंतर्मुख हो, तभी अपने बारे में सोच पाएगा । इस उद्देश्य से मैंने इस मौनमंदिर की स्थापना की, क्योंकि मैंने ऐसा अनुभव किया है । मैं एकांतवास हर वर्ष एक महीने तक करता । उसका लाभ मैंने अनुभव किया । इसलिए वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य को संसार में रहकर अंतर्मुखता लाने का साधन – संयोग प्राप्त हो, उसके लिए यह मौनएकांत मंदिर बनाये । आत्मविकास के लिए अभय, नम्रता, मौन और एकांत इतना अनवार्य है । **मौन, एकांत, अभय और नम्रता से भगवान के प्रति अभिमुखता प्रगट होती है । अंतर्मुखता**

प्रगट होती है । खूब खूब नम्रता के कारण हम में शून्यता प्रगट होने की संभावना रहती है । शून्यता में पहुँचने पर ज्ञान प्रगट होता है । अनुभव का यह यथार्थ है ।

उपरोक्त साधन से साधक में गुणभावना प्रकट होती है । वैसी गुणभावना समाज में व्याप्त हो, उस हेतु से मैंने विविध योजनाएँ प्रभुकृपा से जो सूझीं प्रस्तुत की है । क्योंकि गुणभावना प्रगट होगी तो उस मनुष्य के साथ उसकी मृत्यु पश्चात् साथ ही साथ जाएँगी । तेरने आदि की स्पर्धाओं से एक शक्ति पैदा होती है, पर यदि उसके साथ भाव प्रगट न हुआ हो तो वैसी शक्ति निम्नपथगामी हो जाएगी । भाव के कारण शक्ति ऊर्ध्वगामी बनी रहती है । यह भाव गुण को दिव्यतम क्षेत्रों में चीपकाए रखता है । यह भाव *'एब्स्ट्रेक्ट'* अव्यक्त है, इसलिए समझने में कठिनाई हो । गुण के विषय में सरलता से समझ आएगी । इसलिए भाव प्रगट करने हेतु मैंने भक्तिपोषक साहित्य का निर्माण हो, उसके लिए अलग अलग योजनाएँ प्रस्तुत की है । गुणभावना प्रगट हो ऐसी कहानियाँ लिखीं जाँय, महापुरुषों के जीवनचरित्र लिखे जाँय, ऐसे व्याख्यान हों, बहनों में ऐसे भाव और गुण प्रगट हो, उसके लिए भी 'महाजन शक्तिदल' नाम का ट्रस्ट किया है । साहित्य में नीलकंठ बालोपयोगी साहित्य प्रगट हो इसके लिए भगिनी निवेदिता पारितोषिक, पुराणी पारितोषिक आदि दिये जाते हैं ।

ऐसी योजनाओं के लिए फंड इकठ्ठा करना पड़ता है पर उसके लिए एक दो से अधिक व्यक्ति साथ नहीं रहते । इसलिए

मेरी ऐसी प्रवृत्ति में रागद्वेष का स्थान नहीं रहता, यह इसकी विशेषता है । जब हम ऐसी या दूसरी प्रवृत्तियाँ चलाते दूसरी संस्थाओं को देखते है, तब उसमें रागद्वेष के दर्शन होते देखते हैं । जहाँ सत्कर्म की प्रवृत्तियाँ चलती होती है, फिर भी उनके कार्यकर्ताओं में रागद्वेष व्याप्त हो तो वह अच्छा नहीं है । इसका फल अच्छा नहीं होता ।

अब इसके साथ जुड़ा भाव है, वह किस तरह प्रगट होता ऐसा पूछा जाता है, क्योंकि वह बहुत अव्यक्त है । मैंने स्वयं अपने साधनाकाल के दौरान भजन गाकर, लिखकर, आत्मनिवेदन का सहारा लेकर, प्रार्थनाएँ करके, सत्संग द्वारा, भगवान के लिए मेरे हृदय में भाव प्रगट करने का प्रयास किया था । यह भाव कोई दूसरे की मदद से प्रगट नहीं हो सकता है । इसके लिए हमें स्वयं यत्न करना चाहिए । जब मैं नडियाद रहता था और खुले रास्ते भजन गाता गाता जाता, तब लोग मुझे पत्थर मारते, परन्तु मैंने परवाह नहीं की थी । इसप्रकार, अंतर्मुख हो तो हम में भाव प्रकट होता है । इस तरह भाव प्रगट हो तो गुण को जीवनविकास के ऊँचे शिखर प्राप्त करने में बहुत सहायक होता है । तदुपरांत धन का संग्रह ऐसे गुणभाव बिना का होगा तो वह हमारे लिए मृत्युघंट बजाएगा, ध्यान रखें ।

प्रश्न : कितने ही योग जाननेवाले लम्बे समय तक भूमि में गढ़कर रहते हैं या सीलबंध एक भी छिद्र बिना की पेटी में बंद रहते हैं । इस विषय में कुछ कहोंगे ?

उत्तर : यह हठयोगिओं का मार्ग है । इसमें ऊँचे प्रकार

के प्राणायाम की आवश्यकता है । भगवान प्राप्ति के मार्ग में हठयोग भी एक मार्ग है । परन्तु इस मार्ग में जानेवाले बहुत बार जन्मों के जन्म तक इसमें अटके रहते है । ज्ञानमार्ग भी हमारे लिए कठिन है । इसलिए सरल मार्ग तो भक्तिमार्ग है । सच्ची भक्ति प्रगट हो तो ज्ञान उसमें से अपने आप आता जाता है । इसलिए भक्ति और ज्ञान एकदूसरे से अलग नहीं है ।

प्रश्न : शक्तिपात से उत्तम प्रकार का ध्यान होता है, यह बात सच है ?

उत्तर : हाँ, शक्तिपात से बहुत – सा हो सकता है, ध्यान हो सकता है और जीवन की उच्च प्रकार की गति भी प्रगट हो सकती है, पर आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिए ज्वालामुखी के जैसी धधकती तमन्ना यदि प्रगट न हुई हो तो ऐसे शक्तिपात से हुआ कोई भी परिणाम हमारे जीवन में नहीं टिकेगा । जैसे शराब पीए और नशा उतरने के बाद हमारी हालत कैसी होती है, यह जरा सोच के देखो । शक्तिपात की वास्तविकता है, यह मैं स्वयं कबूल करता हूँ, परन्तु यदि ऐसे शक्तिपान से हमारी पात्रता न हो, योग्यता प्रगट न हुई हो, हमारी उत्तम प्रकार की भूमिका परिपक्व न हुई हो तो ऐसे शक्तिपात से हम आगे नहीं जा पाएँगे, ऐसी मेरी पक्की समझ है ।

उत्तम प्रकार का ध्यान हम में सहजता से हो, इसके लिए तो हमारे रागमोहादि विकार निर्मूल होने चाहिए, सहज ध्यान तो तभी होगा । देखो – कबीरदासजी का भजन *'साधो ! सहज समाधि भली ।'* यह पढ़ोगे तो पता चलेगा ।

इसलिए ध्यान की उत्तमता हमारे जीवन में प्रगट हो, इसके लिए हमें मेहनत करनी हो तो रागद्वेषादि, कामक्रोधादि हमारे में किसतरह कम हों, इसके लिए जीवंत प्रयत्न किया करें तो सही समझ आएगी । इसके अलावा विकारों को कम करने प्रचंड पुरुषार्थ की जरूरत है । इससे तो मुक्तात्मा के साथ भक्तिभाव रखो तो इसका लाभ मिलेगा । आज शक्तिपात आदि के जो प्रयत्न होते हैं, वे ठीक नहीं । मिथ्या प्रयास है । यदि जीवन का आदर्श साकार करना होगा तो सर्वभाव से, सर्वतरह से उसे समर्पण करना पड़ेगा ।

प्रश्न : अभी कितनी ही जगह सामूहिक ध्यान करते दीखते हैं, यह अच्छा प्रकार है ?

उत्तर : समूह ध्यान के समय उसका निर्माता कौन है, इसकी भूमिका कैसी है । यह सब सोचने जैसा है । महात्मा गांधीजी समूहप्रार्थना करवाते, तब कैसी शांति का अनुभव होता था । महात्माजी की चेतना में उस समय एकाग्र होने की जिसमें अभिमुखता हो, उसे वह वातावरण स्पर्श होता है और शांति, ध्यान का अनुभव होता है ।

प्रश्न : पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों सच्चे होते है, ऐसा आपको नहीं लगता ?

उत्तर : सारी पृथ्वी की रचना द्वन्द्व की है । सत-असत, पाप-पुण्य, तेज-अंधकार, सुख-दुःख - ऐसे दो विरोधात्मक जोड़े वैसे ही प्रारब्ध और पुरुषार्थ भी एक प्रकार का जोड़ा है । पुरुषार्थ प्रारब्ध पर आधार नहीं रखता । पुरुषार्थ में सर्जन करने की शक्ति है, प्रारब्ध में यह नहीं है । प्रारब्ध केवल हमारा

अभिगम बतलाता है । प्रारब्ध *'प्लाएबल'* है, *(बोएँगे वैसा काटेंगे)* । यह सौ प्रतिशत सच है, ऐसा भी नहीं । और उसकी गति को हम पुरुषार्थ से बदल सकते हैं । यदि बदल सकने की संभावना ही न हो और प्रारब्ध यही सच होता तो कोई जीव शिव हो ही न सके, नवसर्जन हो ही न सके, इससे पुरुषार्थ प्रारब्ध का गुलाम हो जाएगा । पर नहीं, ऐसा कुछ नहीं है ।

प्रश्न : साधना की परिपूर्णता एक ही जन्म में हो सही ?

उत्तर : नहीं, साधना की परम्परा होती है । भूतकाल और भविष्यकाल में उसकी परम्परा होती है । वृक्ष का उदाहरण लो । बीज में से विशाल वृक्ष होते कितना सारा समय लगा होगा ? उसके रूप, वेश और रंग बदलते रहते हैं । किसी भी कर्म की संपूर्णता एक ही समय में नहीं होती । आगे और पीछे उसकी परम्परा होती है । ज्ञान यह अनंत का मार्ग है, सहज का मार्ग है । चेतना के अनेक पहलू होते है, इसका अंत नहीं है । 'बस इतना ही है इससे अधिक नहीं', *(Thus far and no further)* ऐसा इस क्षेत्र में नहीं है ।

साधना सभी समय सीधी, एकसमान नहीं होती । ध्येय के हेतु की सभानता में जब वेग कम होता है, तब साधक रूक जाता है या नीचे भी पड़ता है । वह संसार के रस में डूबे भी सही । किसी जन्म के मेरे गुरु इस जन्म में अवतरित हुए है । इसकी भावना थोड़ी कुछ सही । पर, उसे अभी इस मार्ग की तरफ कोई छटपटाहट नहीं । पर सामान्य मनुष्य से उसकी भावना और विचार जरा ऊँचे हैं । ऐसे, भगवान का मार्ग चढ़-उतर का है ।

साधक की ग्यारहवीं या बारहवीं भूमिका के अधबीच भी पतन हो यह संभव है । और पतन होते ही पहली भूमिका में आ पड़ता है । पर दुबारा जागृत होने में देर नहीं लगती है । जागृत होने में ग्यारहवीं या बारहवीं भूमिका में जलदी पहुँच जाता है ।

प्रश्न : मृत्यु के समय भगवान का नामस्मरण हो तो इससे मोक्ष मिले यह सच है ?

उत्तर : मोक्ष मिलना इतना सरल नहीं है । यदि मृत्यु की बेला में भगवान का नाम ले तो अच्छी गति हो, यह सत्य मानने जैसा है । जब शरीर के रोमरोम में से चेतनाशक्ति, प्राणशक्ति निकलकर शरीर के अमुक आधार में केन्द्रित होती है और यह एक क्षण से भी कम समय में हो जाता है, वैसे समय में यह शरीर की प्रकृति है कि जो द्वन्द्व और गुण से बनी है, वह महत्त्वपूर्ण भाग नहीं निभाती, तब उसका स्थूल शरीर भी भाग नहीं निभाता पर जब उस चेतन की प्राणशक्ति शरीर में से उस पल निकलकर कोई स्थान पर केन्द्रित होती है, तब उस पल सूक्ष्म शरीर बाहर निकलने की प्रक्रिया में होता है और (एक पल के लिए) आगे होता है – *प्रिडोमिनन्ट* होता है, स्थूल शरीर आगे नहीं होता । उस समय यदि भगवान का नाम ले तो सूक्ष्म शरीर के मन, बुद्धि, चित्त, प्राण आदि का प्रकार कोई अलग होता है । यदि सूक्ष्म शरीर से भगवान का नाम लिया जाय तो उसका परिणाम अच्छी गति में आता है ।

इसलिए मृत्यु समय में प्रत्येक मनुष्य से भगवान का नाम लिया नहीं जाता । दीर्घकाल का जिसे अभ्यास हो उसे भी उस

घड़ी भगवान का नाम याद रहेगा, ऐसा नियम नहीं होता । परन्तु अपनेआप किसी को याद रहे सही । यदि वह मनुष्य किसी चेतना में निष्ठा वाले आत्मा की दीर्धकाल पर्यंत चेतनात्मक रूप से सेवा की होगी तो और चेतननिष्ठ को उस जीव के लिए प्रेम होगा तो । इसलिए सूक्ष्म शरीर देह की अंतिम घड़ी में आगे होकर बाहर निकल जाने की तैयारी हो, तब उस सूक्ष्म शरीर द्वारा यदि भगवान का नाम लिया जाय तो उस जीव की अच्छी, भावनावाली गति में जन्म होता है । उसके लिए गुण और भावना का जीवन में विकास होना आवश्यक है । मोक्ष की बात बहुत ऊँची है । **मोक्ष यानी प्रकृति - परा और अपरा - में से मुक्ति ।**

प्रश्न : श्री नंदुभाई को अनुष्ठान के बाद लगभग छत्तीस घण्टे की *'ट्रान्स'* आ गयी थी वह क्या है ?

उत्तर : एक प्रकार का शक्तिपात । उसे लेकर वे इतना अधिक समय तक सतत बोलते रहे और सात्त्विक गुण प्रगट हो गया । पर वह हमेशा नहीं रहता । (इस 'ट्रान्स' के दौरान उन्होंने अपनी सारी संपत्ति श्रीमोटा को लिखित अर्पण कर देने की हठ पकड़ी थी, पर श्रीमोटा ने युक्ति से उस घड़ी का निवारण कर दिया !)

प्रश्न : महात्मा गाँधीजी आपको पहचानते है कि नहीं ?

उत्तर : नहीं, साधनाकाल के दौरान मुझे एक ही बार उनके प्रसंग में आने का अवसर मिला था । हरिजन औफिस और हरिजनशाला के दो काम करने के लिए मुझे नब्बे रुपए मिलते थे । उनके सामने इसकी शिकायत पहुँची । मुझे बुलाया

गया । उनके पैरों में पड़कर मैं बैठा । 'दस मिनिट मैं आराम कर लूँ ।' ऐसा कहकर गाँधीजी सो गये । मैं उन्हें पंखा करने लगा । ठीक दस मिनिट में वे सोकर जाग गये । फिर बात हुई । मैंने अपनी बात कही, घर की गरीबी की, दो जगह नौकरी करने की बात और नब्बे रूपए की रकम मिलना वह बहुत बड़ी रकम नहीं कहलाएगी, आदि कहा । तब वे कहने लगे 'देशसेवा करने बैठे हो, तब कमाने की वृत्ति कैसे रख सकते है ? और सेवकों को इतना वेतन हो सकता है ? फिर, छोटी उम्र में तुम दोनों जगहों का काम कैसे कर सकोगे ?' तब मैंने उत्तर दिया कि, 'Pitt the younger was Prime - Minister of England at the age of twenty four' (छोटा पिट उसकी चौबीस की उम्र में इंग्लैन्ड का प्रधानमंत्री था ।) यह सुनकर वे हँस पड़े । बस, फिर मुझे छुट्टी दी ।

प्रश्न : आपकी मातुश्री (सूरजबा) आपको 'पहचान' सकी थी ?

उत्तर : नहीं, एक बार मेरे गुरुमहाराज के पास मेरी माँ को लेकर मैं सांईखेड़ा गया था, दर्शन करवाने । वहाँ जाने के बाद मैंने माँ से कहा कि 'गुरुमहाराज को पाँच रूपए दो', पर माँ ने कहा 'ऐसे देने के लिए मेरे पास रूपए नहीं हैं,' परन्तु एक बार उसने कहा, 'पकौड़े बनाकर तुम्हारे गुरुमहाराज को खिलाएँ ।' मैंने आवश्यक सामग्री ला दी और पकौड़े बनाकर गुरुमहाराज को खिलाये । बचे हुओं को प्रसाद रूप में उन्होंने बाँटने दे दिये ।

प्रश्न : राष्ट्र और समाज के उत्कर्ष में धर्म या आध्यात्मिक विज्ञान क्या भाग निभा सकता है ?

उत्तर : पहले विचार करें कि धर्म अर्थात् क्या ? **धर्म अर्थात् जीवन में गुण और भाव लाये वह ।** धर्मपालन होते ही लक्षण आने चाहिए । जैसे कि त्याग और परमार्थ । **संसार में रहने पर भी जीवदशा का भाव, कामक्रोधादि कम हो जाँय तो समझना कि वह सच्चा धर्म पालता है ।**

आध्यात्मिक ज्ञान के मूल में धर्म निहित है । यह सब समाज के साथ जुड़ा है । प्रत्येक को पितृऋण, देवऋण, भूमिऋण, समाजऋण आदि प्रकार का ऋण अदा करना होता है । तभी सचमुच आध्यात्मवादी या धर्मनिष्ठ हो वह भी ऐसे ऋण अदा करता रहता है । ऐसे अनुभवी समाज का उत्थान हो इसतरह समाज के कार्यों में भाग लेता है । धर्मपालन करनेवाला कभी अकेला खाता नहीं । सभी को वह वह बाँट बाँटकर खाता है । ऐसा मनुष्य किसी को छलता नहीं । स्वयं शायद दूसरों से ठगा जाय पर अन्याय सहन नहीं करेगा ।

तदुपरांत, जो धर्म का पालन करता है, उस हेतु की सभानता चौबीस घण्टे रहती है और वह सक्रिय बनता होता है । जैसी वृत्ति साकार होती है, वैसे अगर धर्म की भावना जागे तो उस विषय में वह सक्रिय होता है ।

चेतननिष्ठ समाज की सेवा किए बिना नहीं रहेगा, क्योंकि समाज भी भगवान का एक रूप है । इसतरह समाज के उत्कर्ष में आध्यात्मिक विज्ञान भाग निभाता है ।

प्रश्न : नरसिंह मेहता ने गाया है कि जिस कुटुंब में भक्त हो गया हो, उसे लेकर उसके 'इकहत्तर कुल' तर जाते है । यह ठीक है ?

उत्तर : जिस कुटुंब में कोई जीव महान हो गया हो तो उसके कारण ही 'इकहत्तर कुल' तर जाते हैं, इसप्रकार नरसिंह मेहता ने गायी पंक्ति का अर्थ होता तो इसके साथ मैं संमत नहीं होता । एक पंक्ति के रूप में इसका अर्थ कर सकते है । यानी कि इकहत्तर जितने जो जो जीव नरसिंह मेहता जैसे महान भक्त और ज्ञानी के संपर्क में आये होंगे और उन्हें नरसिंह मेहता जैसे मुक्तात्मा का पारसमणि जैसा स्पर्श हुआ होगा, उनके जीवन को ऊपर ले जाने को मददरूप होगा । बाकी, हमने अनेक ऐसे भक्तों के कुटुंब देखे हैं कि ऐसे महान आत्मा के कुटुंब में उनके स्वजनों में से भाग्य से ही किसी के जीवन का आध्यात्मिक विकास हुआ हो, तो फिर तर जाने की बात ही कहाँ रही ? मोक्ष तो स्वयं ही अपने प्रयत्न से ही पा सकेंगे । ऐसे चेतननिष्ठ अनेक को स्पर्श करते है । यह सत्य है और अपनी भावना का बीज दूसरों में बोते है । कितने उनके पास आये न हों तो भी उनकी मुक्तात्मा स्पर्श करती है, पर वह कब फलेगा यह नहीं कह सकते । पर जिसे यह जीवन में ही अनुभव करना है, वे मुक्त को प्रेमभक्ति से चिपक के देखे । उसे समझने की कोशिश न करें । उसके साथ मात्र प्रेम करें, फिर देखें उसका परिणाम ।

प्रश्न : आज सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त है, उसका उपाय क्या ?

उत्तर : हमें अपनी रीत से व्यक्तिगत सुधरना है । दूसरों

को सुधारने की बात छोड़ो । अंतर्मुख न बनें, वहाँ तक कुछ नहीं होगा । कितने सारे भाषण करते हैं और सुधारने प्रयत्न करते है, पर क्या परिणाम मिला ? महात्मा गाँधीजी कितना करके गये ? स्वराज्य आया पर उथलपुथल नहीं हुई । इसका यह परिणाम है । लोगों में सच्चा धर्म जगेगा, तब भ्रष्टाचार जाएगा ।

प्रश्न : मन की शांति के लिए ध्यान किस तरह करें ?

उत्तर : सबसे पहले तो अशांत होने का मूल कारण हमें खोजना चाहिए । **अधिकतर दूसरों के प्रति पसंद नापसंद को लेकर हमें अशांति होती है । प्राप्त काम प्रभुप्रीत्यर्थ करें तो अशांति नहीं होगी ।** फिर भी अशांति हो तो प्रार्थना करें, सत्संग करें, प्रभु को निवेदन करें, भजन भाव के साथ गायें, नामस्मरण किया करें । ध्यान करने के लिए पूँजी चाहिए, जैसे व्यापार करने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है वैसे । सबसे पहले मन की एकाग्रता के लिए प्रयास कर, जप करने की आदत डालें । जप एक ही स्थान, एक ही समय, नियत समय तक, नियमित एक आसन पर बैठकर करें । इससे एकाग्रता आएगी, फिर ध्यान के प्रारंभ में एक ही विचार, मूर्ति या स्वयं के इष्टगुरु पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए । इससे आगे बढ़ने पर शांति मिलेगी ।

प्रश्न : एक ही मातापिता की संतान होने पर भी कोई दुःखी या कोई सुखी हो, उसमें क्या कर्म का फल रहा होगा ?

उत्तर : पति-पत्नी के गर्भाधान पहले के और तद्पश्चात् तथा बालक के पालन-पोषण के दौरान होते व्यवहार, उनकी समझ, संस्कार, आदत आदि बालक में आती है । पालन-पोषण

करने का तरीका भी महत्त्वपूर्ण होता है । सब कुछ प्रारब्ध पर छोड़ देना ठीक नहीं । यदि ऐसा होता तो कोई जीव शिव नहीं हो सकता था । इसलिए पुरुषार्थ और प्रभुकृपा से सब अच्छा होता है ।

प्रश्न : किसी स्त्री को उसका पति चाहता न हो और दूसरी स्त्री को प्रेम करता हो तो वैसे पुरुष की पत्नी को क्या करना चाहिए ? विवाह-विच्छेद ले या गूंगे रहकर सब कुछ सहन करे ?

उत्तर : हमारा पति हमें न चाहता हो, तब भी उसे चाहकर उसके सुख के लिए मिट जाँय । एक दिन उसमें परिवर्तन आएगा । ऐसे प्रसंग में एकपक्षी प्रेम कोई भी अपेक्षा रखे बिना करे । पालन करे उसका धर्म । हमें अपना धर्मपालन करना चाहिए । विवाह-विच्छेद की बात यह जीवन नहीं कहलाएगा । **जो त्याग कर सकता है, वह जीना जानता है, वही सच्चा सुख पा सकता है ।** जो प्रेम से सहन करता है, वह एक प्रकार का यज्ञ करता है । यह बात स्त्री और पुरुष दोनों को लागू होती है । ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिसमें पति को छोड़कर पत्नी दूसरी जगह चली जाती है, तद्पश्चात् पति के पास आती है और पति उसका सप्रेम स्वीकार करता है । यह एक जीवनविकास की कला है, साधना है ।

प्रश्न : बड़ी उम्र के संतानों का अपनी माँ के साथ झगड़ा हो, तब पिता को क्या करना चाहिए ?

उत्तर : पिता को उस जगह से चले जाना चाहिए ।

प्रश्न : स्वजन हमारे साथ झगड़ा करे या कलह करे तो हमें क्या करना है ?

उत्तर : इससे हम लज्जित न हो या व्याप्त न हो । ऐसा करेंगे तो स्वजन शर्मिंदा होंगे, परन्तु यदि हम गुस्सा होकर चिढ़ेगे या क्रोधित हो तो उन जीव के वे हथियार अधिक तेज होंगे । इसलिए उस स्थिति में हमें अधिक सरल, शांत और प्रेमभावी रहकर अधिक सहनशीलता बनाया करनी है । ऐसे समय में हमें ऐसी जागृति बनाई होनी चाहिए ।

प्रश्न : आजकल कोटिचंडी यज्ञ करने की बात होती है; इस विषय में आपका क्या अभिप्राय है ? ऐसे यज्ञ से अकाल न होगा, यह सच है ?

उत्तर : पहले के समय में यज्ञ होते थे । वे यज्ञ सफल हुए थे, क्योंकि वे निष्काम भाव से होते थे । तदुपरांत, यज्ञ करनेवाले मंत्रद्रष्टा थे । आज ऐसे मंत्रद्रष्टा नहीं है । तदुपरांत, यज्ञ का अर्थ समयानुसार बदलता रहता है । आज समय बदल गया है । **यज्ञ अर्थात् एकदूसरे के लिए प्रेम से खुलकर हो सके वह । श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ करे वह यज्ञ ।** यज्ञ करने से अकाल नहीं पड़ेगा, ऐसा कहना वह सच नहीं है । पर संस्कार ऐसे पड़े हैं कि हम ऐसे यज्ञों के पीछे दौड़ते हैं, जिसमें लाखों रूपए बरबाद होते हैं । वर्षा न होने के अनेक कारण है – जंगल कम हो गये हैं । समाज स्थूलरूप से बिगड़ गया है । सच्चे धर्म की भावना नहीं रही है । आज धर्म के नाम पर आडम्बर चलता है ।

प्रश्न : मौन पालन अर्थात क्या ?

उत्तर : मन, प्राण आदि करणों में अनेक प्रकार की खुजली आती होती है, उसमें से मुक्त होना यह सच्चा मौन है । ऐसा मौन अचानक नहीं प्रकटता । मौन का अंतिम हेतु तो सभी करणों में संपूर्ण नीरवता हो वह है । **इस जीव** ने (स्वयं को, मोटा को बतलाकर) प्रभुकृपा से कितने सारे और कितने प्रकार के मौन रखे हैं और निर्माण किया है, उसका किस किस से कथन करूँ ।

प्रश्न : मोटा, भगवान के मार्ग पर जाने के लिए संसार अवरोध रूप नहीं है ?

उत्तर : नहीं, 'मन हो तो मारवाड़ जा सके ।' वैसे भगवान का होने के लिए वैसा मन चाहिए और न हो तो वैसा होने के लिए दिल का आकर्षण प्रकटाना चाहिए । संसार का मुहावरा अनादिकाल से 'जीव' को पड़ा है । यद्यपि संसार ने किसी को रोका नहीं है । जो कोई संसार का नाम लेता है, वह योग्य नहीं है । जिसे जाना ही है, वह तो जाएगा ही । जिसे जाना नहीं है, उसे कुछ न कुछ बहाना तो खोजना ही पड़ेगा । कोई किसी को अवरोध रूप नहीं है । यदि हो तो स्वयं अपने को अवरोध रूप हैं ।

प्रश्न : भक्ति का आधार बुद्धि पर है या भाव पर या शक्ति पर ?

उत्तर : बुद्धि नहीं, भाव पर । जहाँ भाव है, वहाँ किसी के बस की बात नहीं और जहाँ सामर्थ्य की बात करते हैं वहाँ भाव नहीं होता । जब भाव जागता है, तब सच्ची भक्ति होती

है और जब सचमुच भाव से होती है, तब उसका बदला किसी न किसी ढंग से मिल जाता है । **भक्ति यह हृदय का कार्यक्षेत्र है, बुद्धि का नहीं ।**

प्रश्न : संतमहात्माओं को किस लिए रोग होते होंगे ?

उत्तर : जब कोई मनुष्य साधनावस्था में होता है, तब वह सामान्य रूप से नीरोगी होता है और तब वह भगवान विषयक मस्ती में ऐसा डूब गया होता है कि उसे सुखदुःख का भान नहीं रहता । जब वह चेतना का अनुभव करता है, तब उसका प्रेम सारे मानवसमाज के लिए समुद्र की तरह हिल उठता है और उनका कल्याण करने के लिए तैयार हुआ होता है । दूसरे अर्थ में जो जो लोग उसके समागम में आते होते है, उनके दुःख में कुदरती रूप से हिस्सा लेता है । इसप्रकार, **निमित्त के कारण उस महात्मा को दूसरों के दुःख लग जाते है । वह दूसरों के दुःख ले लेते है, ऐसा कहना यथार्थ नहीं है ।** जिस तिस के साथ के तादात्म्यभाव के कारण सामनेवाले के रोग की असर उस महात्मा के शरीर पर दिखती है । बाकी, विचार करेंगे तो समझ में आएगा कि चेतन का अनुभव होते ही उसके सारे कर्म, प्रारब्ध का अंत आ जाता है, उसके बाद उसे रोग क्यों होते होंगे !

प्रश्न : महात्मा को पहचानना कठिन होता है, उन्हें कैसे पहचान सकते हैं ?

उत्तर : ऐसे महात्मा के साथ जिसने दीर्घकाल पर्यंत प्रेमभक्तिपूर्वक सद्भाव से परिचय रखा हो, वह उसे समझ सकता है । ऐसा महात्मा निमित्त मिले तो जड़ को भी चला

सकता है । ज्ञानेश्वर महाराज ने चबूतरे को चलाया था, यह पढ़कर अहोभाव हो जाता है । पर मोटा के मौनमंदिर का चबूतरा हिला था, यह अनेक लोगोंने देखा था, तब भी उसके पीछे काम कर रही शक्ति को भूल जाते हैं । इतना ही नहीं, मोटा के स्थूल शरीर के दर्शन भी मौनमंदिर में कितनों ने ही किये है, उसकी उपस्थिति का अनुभव वहाँ किया है, तब भी शंका होती है, यह बात जाने दो । ऐसे अनुभवी आत्मा के दूसरे लक्षण यह हैं कि सत और असत दोनों उनमें होते हैं । उन्हें स्थानकाल की मर्यादा नहीं होती है । दिलीप को मेरे दो शरीर दिखे थे । ऐसे महात्मा अनेक शरीर धारण कर सकते हैं । मेरे भाई, उन्हें पहचानने की बात जाने दो । उनके साथ प्रेम संबंध बांधो, उनके दिशा निर्देश पर काम करो, तब भी बस है । ऐसे संबंध से तुम में भगवान विषयक भाव जागे तो बस । मेरा यही उद्देश्य है ।

प्रश्न : मुक्तात्मा अपना स्थूल देह छोड़े, तब अपनी चेतनशक्ति वह जिसे देना चाहे उसे दे सकता है सही ?

उत्तर : भूमिका तैयार हुए बिना कैसा भी समर्थ मुक्तात्मा दूसरों को ऐसा प्रदान नहीं कर सकता है, पर मुक्त का स्थूल देह न हो, तब उसकी सूक्ष्म असर साधक को, भक्त को स्पर्श कर सकती है, यदि भक्त का आकर्षण प्रबल रूप से गुरु के सूक्ष्म तत्त्व के साथ लगा होगा तो । फिर, स्थूल स्थिर शरीर की स्थूल मर्यादा दूर होते, सूक्ष्म तत्त्व से अधिक सबल और तथ्यपूर्ण सहायता कर सकता है और करे भी सही ।

प्रश्न : समाज महात्मा की कृपा से निहाल हो जाता है ?

उत्तर : हो, पर ऐसे के ऐसे यह कोई नहीं दे देता । जो परदे डालकर बैठते हों, उन्हें इसका लाभ कहाँ से मिलेगा ? आजकल सब कुछ बिना मेहनत के अथवा पैसे देकर महात्मा की कृपाशक्ति से खरीदने की वृत्ति समाज की हो गई है । ऐसी वृत्ति को जानेअनजाने आधार भी ऐसे संन्यासिओं की ओर से मिल जाता है । *'जा बच्चा तेरा कल्याण हो जाएगा'* ऐसा कहनेवाले अमुक मिल जाते है । इसलिए प्रमाद छोड़कर सच्ची सेवा, सत्कर्म करें, जिससे कृपा अपनेआप ही होगी ।

प्रश्न : आप जानते हैं हमारी प्रकृति – *पल में तोला, पल में मासा,* जीवदशा में से किसी भी तरह छुटकारा नहीं होता । पूरीतरह आपका बनकर कब रहा जाएगा ?

उत्तर : कोई बात नहीं । प्रभुकृपा से जाग जाय वैसे, उस समय सीधे ड़टकर खड़े रहे और गुरु को पुकारा करे । नीचे उतरना, गिरना और फिर ऊपर चढ़ना यह तो क्रम है । इतना याद रखें कि भटकते भिड़ते, समझकर या बहुत मुश्केली से जो जो जीव **इस जीव** को (श्रीमोटा को) चिपका है या अभी भी चिपगेका, **इस जीव** के साथ, उनकी कैसी भी प्रकृति होगी, प्रवृत्ति होगी, तब भी वह जीव श्रीभगवान के पथ में आये बिना नहीं रह सकेगा, यह निश्चित जानें ।

प्रश्न : समाज का संतुलन को संभालने के लिए आप अनेक बार भार रखते हैं तो उस बारे में समझाएँगे ?

उत्तर : समाज के संतुलन की रचना संभालने के लिए प्रभु ने द्वन्द्व की रचना की है । स्वार्थ और परमार्थ, तिमिर और

तेज, राग और द्वेष, सुख और दुःख, प्रेम और धिक्कार, त्याग और लोभ – इन द्वन्द्वों के जोड़े की जब समतुला न रहे तब उथलपुथल होती है । आज यह समतुला समान नहीं रही है । केवल स्वार्थ, राग और द्वेष जहाँ तहाँ दीख रहे हैं । इससे समाज पर भय तुल रहा है, तो इससे बचने के लिए **परमार्थ में पैसे लगाने चाहिए, जीवनविकास के लिए आवश्यक ऐसे शाश्वत संस्कारों का सिंचन हो, इसतरह धन का उपयोग करना चाहिए ।**

प्रश्न : समाज में इतने सारे देवमंदिर हैं, इतनी कथाएँ चलती हैं, इतने गीता और वेदांत पर व्याख्यान होते हैं, तब भी अनैतिक वातावरण क्यों है ?

उत्तर : क्योंकि सच्चा धर्म प्रगट नहीं हुआ है । सभी गतानुगतिक चला करता है । **सच्चा धर्म व्याप्त हो तो लोगो में गुण और भाव प्रगट हुए दिखाई देंगे । केवल गुणों की आवश्यकता नहीं है । उसके साथ भाव भी चाहिए । भाव मनुष्य को सन्मार्ग पर ले जाता है । परमार्थ ऐसा करे कि उसे संस्कार कायमी हो, जो मृत्यु पश्चात् उसके साथ ही साथ आयें । जिससे उस जीव की गति भी ऊँची हो । इसलिए दाता और दान लेनेवाले दोनों का कल्याण हो, इसप्रकार का दान होना चाहिए ।**

प्रश्न : मोटा, मानवदेह को दुष्कर क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : क्योंकि मानवयोनि द्वारा ही चेतन का अनुभव होना संभव है, उसके बिना नहीं ।

प्रश्न : जीवदशा में भटकता मनुष्य संत समागम करे तो उसे लाभ होग सही ?

उत्तर : अवश्य होगा । ऐसा **जीव** प्रत्यक्ष रूप से पुरानी परम्परा में भले चला करता हो तो भी सत्संग के कारण, पुराने संस्कार क्रियाशील रहते हैं, उसके साथ ही नये संस्कार भी क्रियाशील होंगे । यदि संत का संपर्क गाढ़ होता गया तो विशेष और विशेष ये नये जोरदार संस्कार पड़ते जाएँगे और वे जीवन में व्यक्त हुए बिना नहीं रहेगें ।

प्रश्न : गुरुपूर्णिमा कैसे मनानी चाहिए ?

उत्तर : गुरुपूर्णिमा का दिन सतत भावनापूर्वक स्मरण में बीते ऐसे मनाएँ । उसमें मूर्तिपूजा का स्थान नहीं है, भावना का स्थान है । जैसा भाव वैसी वृत्ति व्याप्त होगी ।

प्रश्न : अनेक लोगों को आपके सद्गुरु कौन, उसकी समझ नहीं पड़ती है, क्योंकि आपने अनेक महात्माओं से प्रसादी प्राप्त की है, तो आप सद्गुरु के विषय में कुछ नहीं कहोगे ?

उत्तर : हाँ, मेरे गुरुमहाराज को मैं तीनेक बार ही मिला हूँ । सचमुच के सद्गुरु तो केशवानंदजी, 'धूणीवाले दादा' (सांईखेड़ा, खंडवा म.प्र.) के रूप में प्रसिद्ध । उन्होंने अपने शिष्य श्रीबालयोगी महाराज के द्वारा मुझे दीक्षा दी थी । ये धूणीवाले दादा आक के फूल के हार की बड़ी गठरी गले और कमर में लटकाये रखते । आक के फूल की गरमी अधिक रहती है । फिर, सांईबाबा के जैसे उनके सामने लकड़ी की धूनी अखंड रहती । उनका शरीर खूब पतला लकड़ी जैसा और हाथ पैर ठीक

ठीक लंबे । कोई नवीन वेश धरकर आया हो तो उसके कपड़े उतारकर वे पहन लेते । बालक की तरह नंगधडग खड़े रहकर, ऐसे फोटो भी खिंचवाते । भाषा बिलकुल बीभत्स । अनजानों को तो वे यद्वातद्वा ही लगें । कितनी ही बार पास बैठे हुए को मारें भी । मुझे एक बार सिर पर नारियल मारा था - सूजन आ गयी थी । उन्होंने मुझे हरिजनसेवा में जारी रहकर साधना करने का फरमान किया था । प्रभुकृपा से ऐसे समर्थ सद्गुरु मिले की जिनकी सहाय, आसरा, भाव कैसा हो सकता है वह तुम लोगों की बुद्धि में आना संभव नहीं लगता । क्योंकि सद्गुरु के प्रति ऐसी प्रेमभक्ति उसके संपूर्ण उच्चतम निर्माण न हो, वहाँ तक यह सब प्रत्यक्ष हुआ होने पर भी वह सिर के ऊपर से चला जाता है । ऐसे वे सद्गुरु चेतन के अंश हैं और ऐसे श्री सद्गुरु को हरि के स्वरूप में प्रारंभ में मैंने साकार स्वरूप में भक्तिपूर्वक भजे थे ।

प्रश्न : धूणीवाले दादा ने आपको चार महात्माओं के दर्शन करवाये थे और सभी के पास से आपको प्रसादी मिली थी ऐसा आप कहते हैं । इस संबंध में आपश्री ने उपासनी महाराज और श्री सांईबाबा के विषय में विवरण के साथ पूरा लिखा है । परन्तु श्री तेजुद्दीनबाबा और श्री अक्कलकोट के स्वामी के विषय में कुछ बतलाया नहीं है । ऐसा क्यों ?

उत्तर : जिस जिस के साक्षी थे, उनके विषय में लिखा है । जिसका साक्षी नहीं था, उनके विषय में कहने का कोई अर्थ नहीं । खुद श्री नंदुभाई को भी उन दो (तेजुद्दीनबाबा और

अक्कलकोट के स्वामी) के बारे में नहीं कहा है । जानकर भी क्या करोगे ? जाने दो यार !

प्रश्न : श्रीसंतमहात्मा की चरणरज सिर पर चढ़ाने से लाभ होगा सही ?

उत्तर : उच्चात्मा की चरणरज सिर पर चढ़ाने से मनुष्य पावन हो जाता है । ऐसी मान्यता समाज में प्रचलित है, पर इसतरह केवल करने से **जीव** को कुछ न मिलेगा । नमन करना यह अपने जीवनविकास के लिए है । स्थूल नमन करने से कोई लाभ नहीं, बल्कि दंभ बढ़ने की पूरी संभावना रहती है । जिस कार्य के पीछे हृदय की जीवंत चेतना नहीं है, वह कार्य मानवजीवन को कभी भी ऊर्ध्व-जीवन में नहीं ले जा सकेगा ।

प्रश्न : मुक्तात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता, तब भी आपने कहा है कि आप फिर से जन्म लेनेवाले हो - स्त्री शरीर में । तो वह आप तुरन्त लोगे ? कब ?

उत्तर : मुक्तात्मा जन्म ले भी सही और न भी ले, क्योंकि उसके संकल्प तो होते नहीं है । फिर भी संयोग पर आधारित है । उनके भक्त उन पर हृदय का भाव उत्कटता से रखते है और ऐसे कोई गूढ़ खास निमत्त के कारण वे जन्म ले भी सही । मैं फिर से जन्म लूँगा यह सच है और वह भी स्त्रीशरीर में, क्योंकि मुझे स्त्रीओं की सेवा करनी है । परन्तु कब यह जन्म लूँगा यह कह नहीं सकता, क्योंकि उसके साथ ऐसे व्यक्ति चिपके होते है, उन सभी को नजर में रखना होता है । यह मुक्तात्मा ऐसे तो चेतन का अंश है । इसलिए यह देह छोड़ने के पश्चात् चेतना में *कोन्श्यशनेस* में हिलमिल, पिघल जाता है,

फिर भी जैसे ईश्वर 'भक्तों हेतु और दुष्टों का संहार करने के लिए' अवतार धारण करते हैं, वैसे ही यह मुक्तात्मा फिर से जन्म ले भी सही और जन्म लिये बिना भी भक्त की पुकार का प्रत्युत्तर दे भी सही ।

प्रश्न : रामनाम से रोग मिट जाते हैं तो आपके रोग राम नाम से क्यों नहीं मिट सकते ?

उत्तर : श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविंद, श्रीरमण महर्षि आदि के जीवन की जाँच करो । उन सभी को पीछे से प्राणघातक रोग हुए थे । ऐसे चेतनानिष्ठ आत्माओं को क्यों ऐसे रोग हुए होंगे, उसका तुमने कभी विचार किया है ? आत्मा के गुण देखें तो मालूम पड़ेगा कि साक्षीभाव, तादात्म्यभाव और करुणा (दया नहीं) यह उसके मुख्य गुण है । जब कोई महात्मा आत्मा के गुण में व्याप्त होता है, तब निमित्त मिलते, जिस जिसके साथ वह जुड़ा होता है, उस उस व्यक्ति के दुःख उन्हें असर कर जाते हैं । यह स्वाभाविक होता है । कितने रोग उनके शरीर में से गुजर जाते हैं, कितने चिपके रहते हैं । जहाँ तक उस व्यक्ति को अच्छा न हो वहाँ तक ।

प्रश्न : अमुक योगी अपनी पद्धति से कम समय में *ट्रान्सिडेन्टल मेडिटेशन* करवाकर शांति देते हैं, तो वह अपनाना योग्य नहीं है ?

उत्तर : अपनाओ, मुझे क्या आपत्ति है ! परन्तु ऐसी समाधि, ध्यान या शांति जो भावातीत, गुणातीत हो, वह कम समय में प्राप्त हो जाय, यह मैं नहीं मानता । अपनी मेहनत के

बिना कुछ नहीं टिकेगा । उनकी शक्ति से शायद कामचलाऊ ऐसा भाव आ जाय पर वह टिकेगा नहीं, सिर के ऊपर से चला जाएगा । उसे टिकाने के लिए हमारा आधार★ तैयार हुआ होना चाहिए । **कामक्रोधादि जहाँ तक कम न होंगे, वहाँ तक ऐसी कोई भावातीत समाधि या शांति नहीं मिलेगी ।**

प्रश्न : पुनर्जन्म शीघ्र कब होता होगा ?

उत्तर : जो **जीव** संतमहात्माओं को अंतिम घड़ी में प्रेमभक्ति से, एकाग्रभाव से हृदय में हृदय से याद करता है, उसका पुनर्जन्म तुरन्त ही होता है । मनुष्य जितना वासनाबद्ध और कामी होगा, उतना वह देर से जन्मेगा । यदि कोई मनुष्य केवल ज्ञानविज्ञान के आविष्कार के पीछे रचापचा रहता हो तो वैसा मनुष्य भी शीघ्र जन्म लेगा ।

प्रश्न : भक्ति या ज्ञान दोनों में से क्या करें, ऐसा अनेक बार हो जाता है, तो क्या करें ?

उत्तर : मार्ग तो दोनों ठीक है । पर वेदांत के धुरंधर श्रीशंकराचार्य ने भी भक्ति और प्रार्थना के स्तोत्र लिखे हैं । पर ऐसा कब हो ? जब मन प्रभुमय हो जाय तब । **मूल बात जैसे की काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार, मत्सर आदि में से हटना किसी को सूझता नहीं है और वेदांत की बड़ी बड़ी बातें करे, वह तो दंभ है ।** तुम पड़े हो भ्रम में और बात करते हो ब्रह्म की ! मृत्यु का ड़र छोड़कर कूदो । जहाँ हो वहाँ से हटो, एक कदम भी आगे बढ़ो ।

★ अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार

प्रश्न : सात्त्विक अहम् (आध्यात्मिक) विकास को मदद नहीं करेगा ?

उत्तर : सात्त्विक गुण के भी आगे जाना है । मेरा एक अनुभव है । करांची में मैंने एक बार रोजे रखे । चालीस दिन के उपवास का संकल्प । अड़तीस दिन हुए, तब गोदड़िया महाराज मिले । उन्होंने मुझसे कहा कि 'किसलिए इतने सारे उपवास ? बस करो ! खा लो ।' प्रथम तो मैंने 'अच्छा' कहा । फिर घर जाने के बाद हुआ, 'दो ही दिन के लिए क्यों रोजे तोड़ूँ ? इतने दिन गये तो दो दिन अधिक ।' और मैंने सूक्ष्म अहम् के जोर पर महाराज की आज्ञा का पालन नहीं किया । उसी समय मैं मेरे यजमान-बुजुर्ग के साथ कार में बैठकर कहीं जा रहा था । उसी दौरान रास्ते पर एक चबूतरे पर बैठे एक मैले पागल ओलिया जैसे दीखते मनुष्य ने मुझे हाथ के संकेत से बुलाया । मैं कार रुकवाकर मेरे यजमान के विरोध करने पर भी गया । ओलिया ने कहा, ' अभी तुम्हारा अहम् नहीं गया ? ले यह मिठाई खा ले और रोजा पूरा कर !' मुझे इस समय समझ आ गई कि मेरा सूक्ष्म अहंकार (सात्त्विक होने पर भी) तोड़ने के लिए भगवान ने यह सब योजना की है , इसलिए मैंने वह मिठाई खा जाने की तैयारी बतलायी । मेरे यजमान ने कहा, 'अरे, इतने दिन उपवास के बाद यह मिठाई नहीं खानी चाहिए, बीमार पड़ोगे ।' पर मैंने तो ओलिया के फरमान को सिर पर चढ़ाकर उसने दी मिठाई वहीं पर खा ली और रोजे पूरा किये, उपवास तोड़े या पूरे किये । तो शुभ संकल्प का अभिमान भी

होता है, उसे भी तोड़ना है । ईश्वर कृपा करके वह हमसे तुड़वाता है । (पूज्य श्रीमोटा इस उपवास के दौरान मात्र दो बार चाय पीते । दूसरा कुछ भी नहीं ।)

प्रश्न : पानी पर चलने का कितने लोग दावा करते हैं, वह क्या संभव है ?

उत्तर : हाँ, संभव है । यद्यपि मुझे ऐसा सब नहीं आता । हमारे शरीर के प्रत्येक छिद्र में वायु रहा हुआ है । उस वायु को कुंभक की क्रिया से निकाल दिया जाये तो शरीर हलका फूल जैसा हो जाएगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । (हठयोग की यह विद्या है ।) हठयोग भी ईश्वरप्राप्ति के लिए एक मार्ग है, पर योगशक्ति का ऐसा प्रदर्शन अच्छा नहीं, चेतन सभी जगह व्याप्त है । शरीरधारी होने से मनुष्य में चेतन मर्यादित होता है, फिर भी निमित्त होते ही उस चेतन की उपस्थिति का सबूत, उसकी अमर्यादितता बता देती है, यह भी सच बात है ।

प्रश्न : साक्षात्कार यह आपका लक्ष्य था तो देशसेवा (हरिजनसेवा) किसलिए करते थे ?

उत्तर : साधना करने का उद्देश्य, जेल जाने का उद्देश्य, लाठियाँ खाने का उद्देश्य, अमुक अमुक गुण विकसित करने का, वह कितने विकसित हुए हैं, उसे जाँचना था । भय में अभय, अशांति में शांति, हिंसक वातावरण में अहिंसक रहना, अनासक्त रहना, निर्विकारी रहना – ये सारे गुण कितने और कैसे विकसे हैं, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करने का मेरा उद्देश्य था । हरिजनसेवा भी मेरे लिए एक साधन था । जेल में इतना सारा पीसने के

लिए देते; खड़े खड़े पीसने का कि हाथ में छाले पड़ जाते और चक्की की दंडी पकड़ी नहीं जाती ऐसी स्थिति हो जाय । अमुक घण्टे में अमुक वजन जितना अनाज पिसना चाहिए । समय कम होता और पीसने का अधिक होता, तब मैं गुरुमहाराज से प्रार्थना करना, 'शक्ति दो कि जिससे काम पूरा हो जाय । काम से नहीं थकता ।' और होता भी वैसा ही । देखते देखते सारा पीसने का काम पूरा हो जाता ! तब मुझे भरोसा हो जाता कि मेरे गुरुमहाराज मेरे सामने ही बैठे है और मेरा ध्यान रखते है । इसप्रकार, मैं प्रत्यक्ष देखने की दृष्टि रखता ।

प्रश्न : मुक्तात्मा भगवान कहलाएँगे ?

उत्तर : ऐसा मनुष्य व्यक्ति होने पर भी व्यक्ति नहीं है, परन्तु जो विरोधाभासी गुणों का वर्णन हम प्रभु के बारे में करते है, उस परमतत्त्व का शरीरधारी आविर्भाव है, फिर भी सागर की तरंग कहलाएगी । तरंग को सागर नहीं कहलाएगा । पर साधक के लिए उसका गुरु भगवान तुल्य है ।

प्रश्न : मुक्तात्मा पर कानून लागू होगा ?

उत्तर : मुक्तात्मा पर कानून सारा अंतर का होता है । उसे नियम हो भी और न भी हो । इसलिए वहाँ मानव का अज्ञान जैसा स्वच्छंद व्याप्त है, ऐसा नहीं मानना है । उसे सब कुछ स्पष्ट दीखता है । प्रत्येक के उदय, स्थिति और लय की भावना की भी सहजरूप से - निमित्त होने पर प्रगट हुआ करती है, जैसे आइने के सामने कुछ आएगा तो दीखेगा वैसे । मुक्त को कुछ भी विधि-निषेध नहीं है । वह जो भी करे, वह हमारी समझ

में न भी आए, क्योंकि उनकी समझ और हमारी समझ में अंतर होता है ।

प्रश्न : जगत में अच्छा बुरा होता है, वह क्यों होता होगा ?

उत्तर : कौन करता है ? भगवान करता है ? भगवान तो सदा कल्याणकारी ही है । भयंकर भूकंप, अकस्मात आदि तो *'एक्शन'* का *'रीएक्शन'* है । कर्म का बदला है । भगवान तो कभी अच्छा बुरा नहीं करते ।

प्रश्न : गरीब गरीब ही रहे ऐसी पुरानी व्यवस्था है । आपने कहा है कि गरीब जागेंगे (जाग रहे है) तो बड़े पूंजीपति चेते तो अच्छा । गरीब किस तरह से जागेंगे ?

उत्तर : मैं खूब गरीबी में जन्मा और बड़ा हुआ । मैं यदि आध्यात्मिक मार्ग की और न गया होता तो मैं कट्टर साम्यवादी बना होता । गरीब जागेगा, तब हिसाब लेगा, यह सच है, परन्तु हमारे देश की संस्कृति अलग प्रकार की है, वह मरी नहीं है । ऐसी दशा में भी महान संत हुए हैं, क्योंकि यह भूमि बहुरत्ना वसुंधरा है । उसके भीतर में रत्न पड़े हैं । परन्तु धर्मपालन यह अलग बात है । सच्चा धर्म पालें तो हमारा वैरभाव घटना चाहिए । न्यायप्रिय हों, *'एक्शन'* का *'रीएक्शन'* होता है । समाज के ऊपरी स्तर के मनुष्य नीचे स्तर के मनुष्य पर सक्रिय सहानुभूति नहीं रखते । उनका हृदय अभी पिघला नहीं है । गरीब किस तरह जागेंगे, यह मैं नहीं जानता, पर समय धीरे-धीरे खराब होता जा रहा है । अनेक विपत्तियाँ पड़ने पर गरीब जागेगा ।

प्रश्न : चेतननिष्ठ कर्म क्यों करते होगे ? संसार में भी क्यों आते होंगे ?

उत्तर : चेतननिष्ठ निमित्त प्रगट हो तो और तब संबंधी को सावधान करे ओर कुछ करता है । बाकी, जैसा होता हो वैसे होने देता है, क्योंकि वे निरिच्छ होते हैं । सब जान सकने पर भी वे जानते नहीं, जानने की दरकार नहीं करते । वसिष्ठ ऋषि और ऐसे दूसरे गृहस्थाश्रम पालते, प्रजोत्पत्ति करते, क्योंकि उन्होंने जगत का स्वीकार किया था । पर उनकी संसार के प्रति भावना जीवदशा में स्वेपचे होने की भावना से हजार गुना उच्चकोटि की थी । उनके लिए विवाह वह यज्ञ था ।

प्रश्न : (एक मिल मालिक का) मोटा, आप कालाबाजार के पैसों का स्वीकार करते हो, यह ठीक है ?

उत्तर : लक्ष्मी को छूत नहीं लगता और वह कहाँ मेरी जेब में जाती है ? थोड़ा बहुत लाभ देनेवालों को है ।

प्रश्न : चेतननिष्ठ क्रोधित क्यों होते है ?

उत्तर : महात्माओं में चेतना का तेज होता है । इससे उनमें एक प्रकार की खुमारी आती है । तुम्हारे जैसी उनकी भी प्रकृति होती है और उस प्रकृति में रहकर, व्यवहार होता है, फिर भी जीवदशावाले उनकी प्रकृति के गुलाम होते है, तब चेतननिष्ठ उनके स्वामी होते है । इसलिए उनका क्रोध हवा की तरह सिर पर से बह जाता है । इसप्रकार उनके क्रोध में और हमारे क्रोध में बहुत अंतर होता है । जीवदशा में रचनेवाले चेतन में बिराजे लोग को किस तरह से समझ सकेंगे ? लो सुनो –

(अनुष्टुप)

क्रोध सद्गुरु का, जैसा चिह्न पानी पर है,
होने पर क्या अस्तित्व, उसे अस्तित्व कुछ न है ।
ऐसी ही अन्य उस की दिखती वृत्तिओं के बारे में,
सब होने पर भी, फिर न कोई अस्तित्व अंतिम ।

प्रश्न : मोटा, आपका शरीर अब कैसा है ?

उत्तर : अब शरीर टूट गया है । छोटी उम्र में (११ वर्षकी) कड़ी मजदूरी की है । रोज के दो आने और खाने को मिलता । अब तो रात को नींद भी नहीं आती है । साधनाकाल में खूब *'इन्टेन्सिटी'* के कारण मलमूत्र पर काबू आ गया था । उसके प्रत्याघात रूप अभी ऐसा होता है । डॉक्टर ने एक गोली दी है । इससे दिन में अधिक पेशाब होगा और रात को नहीं होगा तथा नींद आएगी ऐसा वे कहते हैं । पर उससे उल्टा होता है । रात को पेशाब करने के लिए बारबार उठना पड़ता है, इससे नींद उड़ जाती है ।

प्रश्न : पहले की साधना के प्रत्याघात - *रीएक्शन* - आपको किस तरह होते हैं ? संतों का साधना पश्चात् जीवन परार्थ होता है, इसलिए जो कुछ होता है, वह सब किसी न किसी के लिए होता ही रहता है, सही न ?

उत्तर : पर ऐसे कुछ सब को कह सकते है ? यह समझने के लिए ठीक है ।

प्रश्न : मोटा, साधक के कौन-से लक्षण हो सकते है ?

उत्तर : जिज्ञासा उसमें उत्कट से उत्कट हो । शांति और प्रसन्नता यह उसके सच्चे लक्षण है ।

प्रश्न : मोटा, कुछ कहो प्रभु !

उत्तर : तुम्हें क्या चाहिए ? ज्ञान चाहिए ?

प्रश्न : हाँ, मोटा ।

उत्तर : तो (भक्त की पत्नी की ओर उंगली दिखाकर) इसकी शरणागति स्वीकार कर लें । वह कहे वैसा करना ।

प्रश्न : मैं प्रयास करूँगा ।

उत्तर : सब कुछ छोड़ने लगो । ऐसे भी मरेंगे तो छोड़ना ही पड़ेगा न ? तो अभी से राग, द्वेष, मोह, माया, गुस्सा क्यों नहीं छोड़ना ?

प्रश्न : हाँ जी, ठीक है ।

उत्तर : तुम्हें गरम नहीं होना है, वह (पत्नी) भले ही हो ।

प्रश्न : माँ-बेटा झगड़ा करते हों, तब मुझे क्या करना है ?

उत्तर : हँस कर, वहाँ से चले जाँय ।

श्रीमोटा : (एक व्यक्ति के हाथ में 'विवेकचूड़ामणि' देखकर) इसमें क्या आता है ?

उत्तर : आत्मा और अनात्मा के विषय में विवेकविचार और ऐसा सब ।

श्रीमोटा : वह विवेकविचार कब आएगा ?

उत्तर : प्रभुकृपा हो तब ।

श्रीमोटा : जब धधकती जीवंत, चेतनात्मक, उत्कट जिज्ञासा ईश्वर के लिए जागे तब आएगी । ऐसा इसमें आता है ?

उत्तर : नहीं जी ।

श्रीमोटा : केवल पढ़ने से कुछ नहीं मिलता । यह अनुभव करना चाहिए । 'शिवोडहं' 'शिवोडहं' किया ही करें, फिर भी हम जीवदशा में ही रचा करते है । वह किस काम का ?

उत्तर : इतने से संस्कार तो पड़ते ही है न ?

श्रीमोटा : किसके ? मानसिक संस्कार, हृदय के नहीं ।

प्रश्न : तो उपाय क्या?

श्रीमोटा : प्रभु के लिए धधकती प्रबल भावना, उसे पाने की उत्कट तमन्ना, लगन । जहाँ तक हमारे आचरण सुधरे नहीं, विकार कम न हों तब तक समझें कि हम आगे नहीं बढ़े हैं । मात्र कोरा ज्ञान कोई काम का नहीं । समझे भाई ? यह तो समझने के लिए कहा है । नीचे उतारने के लिए नहीं । घण्टे में जाना है न ?

प्रश्न : मोटा, 'तुज चरणे' हिमालय की यात्रा करने से पहले लिखा था ?

उत्तर : हाँ, किन्तु उसके पीछे एक बात है ।

प्रश्न : जरूर कहो प्रभु !

उत्तर : जब मेरी उम्र चौबीस-पच्चीस वर्ष की होगी तब नडियाद में मेथोडिस्ट चर्च के एक पादरी - अमेरिकन वहाँ थे । उन्होंने हमारे धर्म और देवी-देवताओं के संबंध में बात करते हुए कहा 'तुम लोगों में बहुत सारे शास्त्र, देवी-देवताएँ और उलजन पैदा हो ऐसे शास्त्र-पुराण आदि हैं । जब कि हमारे यहाँ एक ही धर्म और एक ही ईश्वर है !' तब मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा

नहीं है । अलग अलग रुचि के अलग अलग मनुष्यों को माफक आ जाय उस तरह धर्म की बातें और आचार निश्चित किये गये है । हम भी एक ही ईश्वर में और एक ही परमतत्त्व में मानते हैं ।' तब वे पादरीभाई ने कहा, 'मेरे देखने में ऐसा कोई आया नहीं है ।' इसलिए उसी दिन रात को बैठकर मैंने 'तुज-चरणे' लिख डाला और दूसरे दिन पादरीभाई को वह काव्य दिखलाया । उसके लेखक कौन है, वह बताया नहीं । वे गुजराती जानते थे, इसलिए उनके कहने से मैंने पूरा काव्य पढ़कर सुनाया । वे सुनकर खुश हुए । इसप्रकार, इसमें साकार और निराकार, दोनों तरह के प्रभु को, उनकी भक्ति का उल्लेख है । और विशेष में इस काव्य की बिक्री से जो पैसे मिले, उसमें से हिमालय का पहला प्रवास किया, पर प्रवास जाने के पहले दिन हिसाब के पैसे श्री परीक्षितलाल को सौंपते हुए पैसे कम पड़ गये । वे सभी बोले 'आप के द्वारा कुछ कम होता नहीं, तब भी जाँच तो करनी चाहिए?' मैंने कहा 'तुम्हें जो करना हो, वह करो, कम होती रकम मेरे खाते में उधार कर डालो, मैं तो कल हिमालय के प्रवास पर जाऊँगा ।' तब वे बोले 'ऐसे कोई आप से जाया जाएगा ? ऐसे आपके खाते में उधार करने से कोई समाप्त नहीं हो जाता' पर मैंने तो अपने जाने का अडिग निश्चय बतलाया और मैं तो निकल पड़ा । फिर बाद में पता चला कि कम रकम जितनी नोटें टेबल के खाने में पीछे के भाग में फंस गई थी, वे मिल गयीं !

प्रश्न : (माताजी के भक्त का) शांति के लिए क्या करें ?

उत्तर : तुमने माँ की शरणागति ली है, वही किया करें । दूसरा क्या करना है !

प्रश्न : (बहन का) हम से सारे समय जप किस तरह से हो सकेगा ?

उत्तर : मुहावरे से ।

प्रश्न : घर में हमें कितना सारा काम होता है ! तो कैसे हो ?

उत्तर : लगनी लगानी चाहिए । लगनी लगी हो तो सब कुछ होगा ।

प्रश्न : सुख में हो सके, खाली समय में हो सके, पर चिंतातुर हो, खूब उलझन हो तब कैसे हो ? बहनों की स्थिति तो आप जानते हो ।

उत्तर : जब विपरीत संयोग में मनुष्य खमीर बताये तभी वह मनुष्य कहलाएगा । नामस्मरण की *प्रेक्टिस* पहले से लगन लगाकर की हो तो विपरीत संयोग में भी वह जरूर अधिक होगा और उससे लाभ हो वह विशेष ।

प्रश्न : प्रारब्ध पर भी उसका आधार है न ?

उत्तर : भगवान के मार्ग पर जाये तो भारी पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । हमारा सुख-दुःख प्रारब्ध पर निर्भर सही, परन्तु भगवान के मार्ग पर जाने की प्रबल इच्छा, तमन्ना होनी चाहिए । अडिग निश्चय हो तो सब आ मिलेगा । इसके बाद ईश्वर हमारी सुन लेंगे । पुरुषार्थ प्रारब्ध को बनाता है, प्रारब्ध को पलट भी सकता है । प्रभुकृपा ऐसे अवतरित होती है ।

प्रश्न : भगवान शंकराचार्य ने गाया है कि संत तो वसंत ऋतु की हवा जैसे हैं । जहाँ जहाँ वह हवा जाएगी वहाँ वहाँ सुगंध, सुरभि, उल्लास, आनंद फैलता है, वैसे ही संत स्वयं तर गये होते है और कोई भी स्वार्थ बिना अनेक संपर्क में आते मनुष्य को भी तारते होते है ?

उत्तर : यदि मनुष्य नाक बंद करके चलता हो तो उसे वसंत की हवा की सुगंध किस तरह मिलेगी ? उसी तरह मनुष्य अपना विकास करने के लिए, उलझन तोड़ने के लिए तैयार ही न हो, *रिसेप्टीविटी* – स्वीकारशक्ति, तैयारी बतलाता न हो तो उसे उन संत का लाभ कैसे मिल सकेगा ?

प्रश्न : मौनमंदिर में, पहली बार के मौन के दौरान, पहले दिन की रात को मैं गाढ़ निद्रा में था, तब एक कठोर गूढ़ आदेश सुना, 'चल, उठना नहीं है ?' इसलिए मैंने चौंककर घड़ी देखी तब बारह बजे थे । इसलिए मैंने मन से कहा, 'नहीं, भगवान पूरी नींद तो लेनी ही है । अभी रतजगा हुए है । तीन बजे के बाद उठूँगा ।' तो वह आवाज क्या मन की ही होगी या दूसरी कोई ? पर सचमुच उस आवाज में दमदार आदेश था !

उत्तर : यदि तुम्हें यह आवाज सुनाई दी है, इसे सत्य मानते हो तो दूसरा तर्क नहीं उठाना चाहिए । यह तो श्रद्धा का प्रश्न है । फिर यह आवाज क्या होगी, क्यों होगी आदि की माथापच्ची में क्यों पड़े ?

प्रश्न : मौनएकांत मंदिर की स्थापना का विचार आपको किस तरह उद्‌भव हुआ, बतलाएँगे ?

उत्तर : मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा, 'तुमने देशसेवा बहुत की है, अब मानवसेवा कर !' वे मुझे दंडा देने चाहते थे, पर मैंने कहा, 'में तो संसार में रहनेवाला व्यक्ति हूँ । इसलिए दंडे का उपयोग लोगों को सही मार्ग में जाने के लिए नहीं कर सकूँगा, प्रेम से उसे चढ़ा सकूँ ।' गुरुमहाराज ने उसे मान्य रखा और साधना के लिए यह मार्ग बतलाया । फिर मैंने उनसे कहा, 'लोगों के पास से लेकर मैं उन्हें क्या दूँगा ?' गुरुमहाराज ने कहा, 'रोटी की चिंता मत करना । तुमने प्रजा की सेवा खूब की है । इसलिए रोटी तो तुम्हारा *पेन्शन* है ऐसा समझना । और लोगों के पास से लेकर तुम्हारे सिर पर चढ़ा कर्ज तुझ पर नहीं रहने दूँगा ।' इसलिए मौनमंदिर स्थापित करने का विचार आया ।

प्रश्न : ये साधनामंदिर सचमुच अनोखे (Unique) है ! ऐसी योजना आपको कहाँ से प्राप्त हुई ?

उत्तर : स्वानुभव में से । अभय, मौन और एकांत ये साधना के आवश्यक अंग है । संसारी इसके लिए जंगल में नहीं जाएँगे । इसलिए सुविधा के साथ साधन देना उनके द्वारा प्रभुकृपा से प्रयत्न हुआ है ।

प्रश्न : आपको लगता है कि लोगों का उस ओर अच्छा आकर्षण है ?

उत्तर : मैंने किसी को यहाँ (मौनमंदिर में) आने और बैठने का विज्ञापन नहीं दिया, प्रचार नहीं किया । तब भी अपनेआप सभी जाति के लोग, धर्म के भेदभाव बिना, छोटेबड़े

स्त्रीपुरुष बैठते हैं और अनेक एक बार बैठते हैं, उन्हें प्रत्येक वर्ष में एक बार तो बैठने की लगनी लगती ही है । प्रत्येक **जीव** के मौनएकांत का काल मेरे मन से एक बहुमूल्य और दुबारा न मिल सके ऐसा अमूल्य काल है । इसके द्वारा **इस जीव** के साथ उन उन **जीवों** से जुड़े रहने की क्रिया है । यदि वैसा हुआ न होता तो तुम में से कोई मेरे साथ नहीं रह पाये होते ।

प्रश्न : ईश्वर निराकार है और दीखता नहीं । इसलिए उनके प्रति प्रेम, भक्ति चाहिए उतनी जागती नहीं है । फिर, प्रकृति भी बीच में विरोध पैदा करती है, तब क्या करें ?

उत्तर : अर्जुन की तरह ईश्वर के प्रतिनिधिरूप संतो की दोस्ती करो । **हरि मिलना दुर्लभ है, पर हरिजन दुर्लभ नहीं ।** हमारी प्रकृति भले ऐसी हो, तब भी दोस्ती करने पर ईश्वर हमें मदद करेंगे । जैसे जैसे सत्संग, सद्वांचन, सत्कर्म, परमार्थ बढ़ते जाएँगे, वैसे वैसे ईश्वर के विषय में भाव जागते जाएँगे और कृपा करके वह हमारे मन में स्थान जमाने लगेगा । इसलिए बैठे न रहों । चलते रहो ।

प्रश्न : प्रभु ! क्या आप कुछ कह रहे थे ?

उत्तर : (बहुत स्निग्ध भाव से) मुझे एक ही बात का दुःख है कि मेरे पास आनेवालों का मैं दुःख काट नहीं पाता हूँ ।

प्रश्न : क्यों ?

उत्तर : क्योंकि उनके कर्म बीच में आते हैं ।

प्रश्न : यह दुःख आध्यात्मिक या संसारी ?

उत्तर : सभी प्रकार के (दर्दपूर्वक बोले) कर्म बीच में आए इससे क्या हो ।

प्रश्न : इसका कोई उपाय नहीं ?

उत्तर : (जोश में आकर) क्यों नहीं है ! *'त्वमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।'* पर ऐसा करना हो उसके लिए न !

प्रश्न : 'सब कुछ ईश्वर ही करवाते है', ऐसा स्वीकार करें तो फिर स्वयं कुछ करना ही नहीं रहता, यह सच है न, मोटा ?

उत्तर : 'सब कुछ ईश्वर करवाते है', यह बात तत्त्वज्ञान की दृष्टि से सौ प्रतिशत सच है । परन्तु **यह हम तभी कह सकते हैं कि जब हम हर पल भगवान के भाव में ही रहा करते हों; द्वन्द्वो के पार गये हों, अहम् पूरा पिघल गया हो, त्रिगुणातीत हुए हों और हम उस के पूर्ण रूप से सचेतन यंत्र बन चुके हों ।**

प्रश्न : महासमाधि का सही अर्थ क्या हो सकता है?

उत्तर : महासमाधि यानी कि जिस समाधि से ब्रह्मज्ञान, अद्वैत का साक्षात्कार हो, उसे सही रूप में महासमाधि कह सकते है । पर अभी तो अलग अलग अर्थों में सभी कोई अपनी अपनी तरह से इस शब्द का उपयोग करते हैं ।

प्रश्न : जड़-काष्ठवत् और भावसमाधि इन दो के बीच में क्या अंतर है ?

उत्तर : काष्ठवत् समाधि में श्वासोश्वास बंद हो जाते हैं । नाड़ी भी नहीं चलती, बहिर्भान चला जाता है, हृदय काम नहीं करता, शरीर की *नर्वस सिस्टिम* (ज्ञानतंतु यंत्र) काम नहीं करती

हो, ऐसा तब नहीं होता है । वह जागृत होने पर भी सुषुप्त जैसी बनी होती है । अलबत्त, नाड़ी की धड़कन कम भी हो और कम होकर शून्य तक भी पहुँचे और ऐसे अभ्यास होते होते, वह सहज हो जाते हैं, फिर उसे सहज समाधि का भाव प्रगट हो, तब तो नाड़ी आदि यथावत् हो सकती है ।

प्रश्न : अपनी गत भूलों और दोषों को बारम्बार याद करते उसकी वेदना करते रहें, 'वैसा दुबारा न हो' वैसी बारबार प्रार्थना करते रहें, यह साधना के लिए श्रेयस्कर हो सकता है सही ?

उत्तर : नहीं, वैसा पुनः पुनः उच्चारण या याद मददरूप नहीं होते, उल्टा बाधक होता है । एक बार हृदयपूर्वक का पश्चाताप करने के बाद वैसे विचार आने पर उन्हें बह जाने दो। उसकी कड़ी भी न जोड़े ।

प्रश्न : मोटा, हमारा पुनर्जन्म किस प्रकार का होगा ? कब होगा ? क्या होगा ? उसका आधार क्या होगा ? वह कहोगे ?

उत्तर : प्रत्येक जीव की जन्मोजन्म की समग्र और लगातार संस्कारशक्ति किस प्रकार की है और उसके आधार पर मृत्यु के समय उस जीव की कैसी गति रहती है, उस पर जल्दी या देर से उस जीव का जन्म होने का आधार रहता है । पुरुषशरीरी जीव दूसरे जन्म में स्त्री भी जन्मे और स्त्रीशरीरी जीव पुरुष भी जन्मे । पुरुष हो, वह पुरुष ही जन्मे और स्त्री हो, वह स्त्री ही जन्मे ऐसा कोई निश्चित और अटल नियम नहीं है ।

तदुपरांत, हमारे इस जन्म की प्रकृति की गति और दिशा जिस प्रकार की होगी उस प्रकार का हमारा पुनर्जन्म है ।

प्रश्न : मोटा, जीवनविकास के लिए सबसे पहली आवश्यकता क्या है ?

उत्तर : मन से हम भिन्न है, ऐसा अभ्यास करते रहेंगे, तभी जीवनविकास हो सकता है । मन की तरंगो पर कभी वश न हो, इतनी और ऐसी जागृति रखें तो उत्तम ।

प्रश्न : इसका अर्थ ऐसा है कि साधना के लिए लगनी यह आवश्यक शरत है ?

उत्तर : हाँ, पर लगनी लगने के पहले भाव प्रगट हो, वह महत्त्वपूर्ण है । साधना में भाव मुख्य और महत्त्वपूर्ण भाग निभाता है ।

प्रश्न : आपने तैराकी स्पर्धा आदि प्रतिस्पर्धाओं के लिए दान किया है । ऐसे दान का और अध्यात्म का क्या संबंध है ? ऐसा दान दूसरे किसी संत ने किया हो सुना नहीं है ।

उत्तर : साहस के प्रसंगों का खास स्वागत करना चाहिए । साहस, होशियारी, धीरज आदि गुण नाव के पाल की या हवा की गरज रखते है । हम सामान्य लोग तो सहीसलामती को ढूंढते ही हैं । परंतु हमें उसे तिलांजलि देनी है, नहीं तो आत्मबल कहाँ से आएगा ? इसलिए ऐसे कार्यों के लिए मेरा दान यह मौलिक कार्य है । सच्चा अनुभवी मौलिक ही होता है । मेरे गुरुमहाराज कहते, 'सभी करे ऐसा तुम न करना । किसी को न सूझे वैसा मौलिक ही तुम करना ।'

प्रश्न : (एक प्रसिद्ध लेखक का) मुझे थोड़ा पूछना है ?

उत्तर : पूछो न ।

प्रश्न : आपको लोग 'मोटा' क्यों कहते हैं ? आपका बड़प्पन किसमें रहा है, वह मुझे समझना है ।

उत्तर : (मोटा का निर्मल हास्य) मैं अपनेआप को 'मोटा' के रूप में गिनता ही नही हूँ । मैं भी आपके जैसा सामान्य मनुष्य ही हूँ ।

प्रश्न : पर आप में कोई महानता, कोई सिद्धि होगी, तभी लोग दर्शन करने आते होंगे न ?

उत्तर : ऐसा कुछ नहीं है । मैं भी प्रभु का भक्त हूँ । उसकी कृपा से ही सब चलता है । मैं तो मात्र निमित्त हूँ ।

प्रश्न : मोटा, साधक साधना का पथ स्वीकार करने के बाद रूढ़िबंधन आदि तोड़ने की सामाजिक सुधार में प्रवृत्त रहना चाहिए सही ?

उत्तर : साधक को समाज में रूढ़ि-बंधनो की ग्रंथियों से वैसे-वैसे प्रसंग मिले, तब भावना विकसित करने के लिए मुक्त बनना है । केवल समाजसुधार के उद्देश्य से ऐसी कोई प्रवृत्ति वह न करे । प्रभुकृपा से वैसे प्रसंग आयें तो रूढ़ि के बंधन तोड़ते हुए न ठिठके या न घबराये । नरसिंह मेहता के जीवन का उद्देश्य समाज को सुधारने का बिलकुल न था । परन्तु परिस्थिति ऐसी हुई की हरिजन भाईओं ने भजन करने का निमंत्रण दिया तो वे वहाँ जाने से झिझके भी नहीं, और वे रूढ़िग्रस्त जमाने की ज्ञाति का सनसनाता कोड़ा अपने शरीर पर श्रीभगवान की कृपाप्रसादी

के रूप में उठाया और स्वीकार किया ।

प्रश्न : मोटा, साधकदशा में किसी कारण से मन में क्लेश हो, संताप हो तो क्या करे ?

उत्तर : परस्पर प्रकृति भेद के कारण, व्यावहारिक-अव्यावहारिकता के कारण जो जो संघर्ष जागे, तब साधक हमेशा अपने पर ले लेता है । अपने ही दोष देखता है और अन्य के प्रति सद्‌भाव ही पैदा किया करता है । साधक के दिल का सद्‌भाव और प्रेम यदि वैसे संघर्षों से विशेष से विशेष जागृत और तेजस्वी दुआ करेगा तो सुमेल और संवाद होंगे ही यह निश्चित जानें ।

प्रश्न : आप निराग्रहीता पर भार रखते हो, तो साधक के मन उसका क्या महत्त्व हो सकता है ?

उत्तर : सभी कोई परिस्थिति में संपूर्णरूप से ज्ञानात्मक दशा प्रगटाया करनी हो तो उपयोग के ज्ञानभान के साथ निराग्रहीता रखें तो हमेशा आराम, निश्चिंतता, प्रसन्नचित्तता, समता, शांति आदि पैदा हुआ करे ।

प्रश्न : (एक डॉक्टर बहन) कोई व्यक्ति केवल एक ही बार या थोड़ी देर संत के समागम में आये, तब उसका काम हो जाएगा सही ?

उत्तर : हाँ, निमित्त हो तो किसी बार ऐसा हो भी सही ।

प्रश्न : आपका ऐसा अनुभव किसी को हुआ है सही ?

उत्तर : अभी ही एक भाई को ऐसा अनुभव हुआ है । (इतना बोलने पर ही अमुक तीन भाइओं ने नड़ियाद आश्रम में

पैर रखा । उन्हें देखकर पूज्य श्रीमोटा सानंद बोल उठे) मेरा भगवान प्रत्यक्ष है । इन आनेवाले भाइओं को पूछ देखों ! (बात सच्ची निकली ।)

प्रश्न : मोटा, अनेक बार आपको किसी को देखकर अथवा विदाई देते गद्‌गद हो जाते, कंपित और क्वचित रोते हुए भी देखा है, ऐसा इतना सारा क्यों हो जाता होगा ?

उत्तर : एक तो हमारे लिए भाव है, प्रेम है, भावना है, यह सामनेवाला व्यक्ति को जब सचमुच समझ आती है, तब सामनेवाले व्यक्ति के लिए कुछ दिल में हुए बिना नहीं रहता, और उसके दिल में भाव पैदा करने के लिए यह कोई नाटक का खेल नहीं है । संबंध का उपयोग भाव जगाने, भाव तेजस्वी करने और उसमें चेतन लाने के लिए है । ऐसे भाव सामने के दिल में जागें तो वे भाव द्वारा ऐसे अनुभवी पुरुष उसके दिल में बैठ सकते है । प्रवेश करने के लिए भाव यह बड़े से बड़ा साधन है ।

प्रश्न : मोटा, सद्‌गुरु प्रारब्धवशात् मिलते होगे कि अकस्मात से ?

उत्तर : शायद कर्म-प्रारब्ध के संयोग और ईश्वरी कृपा से भी सद्‌गुरु मिलते होते है, इसमें अकस्मात का कोई स्थान नहीं है ।

प्रश्न : कोई साधक अति निचले स्तर का हो तो सद्‌गुरु क्या करें ?

उत्तर : अनेक प्रकार के संघर्ष साधक के जीवन में

उद्‌भव करके उसे ऊँचे लाये बिना सद्‌गुरु रहेंगे ही नहीं । साधक को अपना स्पष्ट भान जागे ऐसा कराने में वह कुछ भी बाकी नहीं रखता । उसकी धीरज अपार है ।

प्रश्न : आपने एक स्थान पर लिखा है, 'गुरु तो मुर्दे के जैसा है ।' इसका अर्थ समझाएँगे ?

उत्तर : हाँ, गुरु को जीवित रखना या मुर्दे जैसा रखना उसका आधार साधक पर, भक्त पर है । हमारे आधार पर ही वह जीवित हो सकता है । गुरु की भावना हमारे समर्पण भाव से, जीवंत हमारे आधार के एक-एक करण में न हो जाय, वहाँ तक गुरु भी पंगु होता है । गुरु को सक्रिय रखने गुरु में हमारा पूरी तरह हृदय से हृदय में एकराग हो जाना बहुत आवश्यक है । ऐसा हो सके तो ही योग्य गुरु योग्य साधक को योग्य तरह से चला सकेगा । इसका भी एक विज्ञानशास्त्र है ।

प्रश्न : गुरु के पास कोई साधक अनेक वर्षों तक रहता हो, तब भी प्रगति न हुई हो, उसका कारण भी आपने अभी कहा वैसा ही होगा ?

उत्तर : हाँ, ऐसा ही । इसके अलावा अपनी अधूरी समझ के अनुसार गुरु के विषय में मत बांधकर उन्हें अन्याय करता है । ऐसे रुख से गुरु की निकटता का लाभ नहीं मिल पाता । यदि साधक अभिप्राय न बांधे और खुलकर रहने को प्रयत्न करे तो लाभ पा सकता है ।

प्रश्न : निम्न प्रकृतिवाले भक्त को सद्‌गुरु कोई सहायता नहीं कर सकते, ऐसा तो नहीं है न ?

उत्तर : नहीं, ऐसी प्रकृतिवाले जीवों में इन सद्गुरु का संकल्प बारबार टकराकर वापस आता है । ऐसी अनेक बार की प्रक्रिया के कारण उन चेतननिष्ठ के साथ उस जीव प्रकार के शरीरवाले जीव का संबंध स्थायी हो जाता है । इससे उस जीव के भले ही कितने जन्म हों, तब भी उन चेतननिष्ठ द्वारा, उसके शरीर के मनादि में पड़ा हुआ संकल्प (अलग अलग जीवित शरीर के दौरान भी) कौंधता है । और अंत में तो उसे चेतन के प्रवाह में घसीटकर ले जाये बिना वह संकलप नहीं रहता ।

प्रश्न : मोटा, आपको अपने सद्गुरु के पास से सहायता किस तरह से मिलती रही ?

उत्तर : कितनी ही बार कहा है, 'मुझे मेरे सद्गुरु से स्थूल रूप में मिलना तीन-चार बार ही हुआ है, वह भी थोड़े ही दिन के लिए ।' जब प्रेमभक्ति की भावना से सद्गुरु के हृदय के साथ हृदय का संधान हो जाता है, तब जब जब हम जीवपन में आकर उसकी प्रार्थना करते हैं, तब तब हम दुबारा ऊपर आ जाते है, ऐसा मेरा ठोस अनुभव है । ऐसे हृदय का संधान होने पर स्थूल संपर्क की आवश्यकता रहती नहीं है । **जो सद्गुरु को स्थूल रूप में देखता है, वह सच्चा साधक नहीं है ।**

प्रश्न : मोटा, 'हरि को भजते कभी किसी की लाज जाती नहीं जानी रे !' यह आपका प्रिय भजन है । इसके पीछे कोई कारण सही ?

उत्तर : हाँ, है । मेरे बड़े भाई को क्षय की बीमारी हुई थी । उनकी दवा कराने को मेरे एक खूब निकट के संबंधी बुजुर्ग

के पास से सात सौ पचास रुपए उधार लिये । दवा तो की पर बड़े भाई गुजर गये । इसी दौरान संबंधी ने पठानी तरीके से तकाजा प्रारंभ किया । मैं कहता, 'दूध से धोकर आपकी पाई पाई वापस दे दूँगा ।' पर वे मुझे परेशान किये बिना नहीं रहते । एक दिन उन्होंने भरे बाजार में मेरी आबरू ली । न कहने जैसा कहा । लोग इकट्ठा हो गये । मैं रो पड़ा । इसी दौरान 'हरि को भजते कभी किसी की लाज जाते नहीं जानी रे !' यह भजन किसी के मुँह से गाते सुना था, वह याद आया । भगवान ने कितने सारे भक्तों को किस तरह बचाया था, यह सब इस भजन में आता है । इसलिए मैंने तो इस भजन का आश्रय लिया, यह भी एक प्रयोग है । हृदय निचोड़कर यह भजन गाता, प्रार्थना करता और सचमुच आश्चर्य हुआ । एक सुबह ठीक सात सौ पचास रुपए एक जन की ओर से रजिस्टर्ड पोस्ट से मिले और मैं गद्‌गद होकर प्रभु के पैरों पड़ा । लेनदार संबंधी के पैरों पर पड़कर कर्ज चुका दिया । बस, तब से यह भजन मुझे बहुत प्यारा लगने लगा और हमेशा उसका आश्रय लेता हूँ ।

प्रश्न : मोटा, घर के व्यक्तिओं के साथ प्रकृतिवशात् बहुत क्लेश हो जाता है ! तब क्या करूँ यह समझ नहीं आता । अनेक नापसंद स्थितियों का सामना करना पड़ता है !

उत्तर : यदि, जिसके साथ जिंदगीभर जुड़े है, उसे जो पसंद हो, उसमें यदि हृदय के भाव से साथ न दे सकते हो तो भगवान के लिए हम से क्या होगा ? तब ऐसी भावना से समझे की इससे हमारी जो अरुचि का भाव, उसे निर्मूल होने, आ मिले कर्म का उद्देश्य है । जीवन का श्रेयार्थी कैसे भी स्वयं को न

रुचते, ऐसे कर्म आ मिले उसे जीवनविकास के सतत ज्ञानभान के साथ, वह किया करता है । चेतकर, जागकर विकास के उद्देश्य के लिए व्यवहार करना चाहिए ।

प्रश्न : मोटा, साधना में त्राटक बहुत उपयोगी साधन कहलाता है न ? उसके बारे में कुछ कहेंगे ?

उत्तर : इससे हमारा आंतरिक क्रियाओं पर काबू बढ़ जाता है । हमारे विचार, भावनाएँ आदि अस्तव्यस्त रूप में न विहरने देने के लिए यह साधन है । हमारे सद्गुरु अथवा ईष्टदेव की (छबि में) हृदय पर त्राटक करने से भाव उत्पन्न होता है । मंदिर की पसंद मूर्ति पर भी इसतरह त्राटक करने से भक्तिभाव उद्भव होता है । और जब ऐसे त्राटक करते हैं, तब 'जागो हृदय जीवन चेतनशक्ति' ऐसे प्रार्थना भी किया करें । स्थिर ज्योत पर, कोमल सूर्यनारायण और उनकी किरण पर, बिन्दु पर भी त्राटक हो सकता है । त्राटक का समय धीरे धीरे बढ़ाते जायें । आँखें थक जाय तब ठंड़े पानी की छलक उस पर मारें । त्राटक में से एकाग्रता बढ़े उसका उपयोग स्मरणभावधारणा में भी कर सकते है ।

प्रश्न : (संकट में आ गये एक भक्त के बारे में) मोटा, क्या उसमें जरा भी सच्ची प्रेमभक्ति नहीं है कि उसके लिए कुछ नहीं कर सकते ?

श्रीमोटा ने प्रत्युत्तर में नीचे का काव्य लिख भेजा –

जो लोकोत्तर है उसके मन को परखने को,
– वह शक्तिमान है कौन ? मानव की न बिसात ।

तर्क, दलील उसके लिए क्यों छोटे साबित हों !
***जीव**दशा की बुद्धि तो उस अर्थ वामन-सी है !*
विचार करना इससे क्या वाहियात अर्थ वह !
अटपटे सारे प्रश्न जीव को उपजा करे ।
हल कर सके उसे पूरी तरह न शक्ति है,
तो फिर अक्ल योग्य वहाँ सयानापन कितना ?
स्वयं सोचके, अपने को तोले न्याय योग्य क्या ?
तुम्हारी कितनी चलेगी वह होशियारी जीवन में ?
क्या पछाड़ खायी है कितनी बार तो तुम ने ?
तब भी अभी ठिकाने आ सके क्यों न तुम ?
झमेले छोड़ो दूसरों के, इससे स्थिर हो जाओ अब ।

एक भाई आकर पूज्य श्रीमोटा के पैरों में पड़े ।

श्रीमोटा ने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो ?'

'पैरों में पड़ रहा हूँ ।'

'पैरों में पड़ना हो तो कुछ समर्पण होना चाहिए । समझे ?'

'हाँ, जी ।'

'नहीं, जी ।' नहीं समझे (दूसरे भाई की ओर देखकर) कहते हैं कि 'समझा, पर खाली खाली । समझा होता तो कुछ रखा होता । क्या रखा ?'

इसलिए उस भाई ने दक्षिणा रखी ।

'अब ठीक....भाई, मैं पैसों का लोभी हूँ । समाज उपयोगी कामों में दान देने के लिए चाहिए । आश्रम के बही खाते में सब जमा-उधार होता है । तुम वह देख सकते हो ।'

एक बार पूज्य श्रीमोटा ने बात बात में कहा, 'कई बार हमारी जड़ में बैठी मान्यता हमें सच ग्रहण करने से रोक देती है । पर इससे हमेशा ऐसी ही करना चाहिए, ऐसा सर्वसाधारण नियम नहीं बांधे ।'

प्रश्न : मोटा, ऐसा कोई प्रसंग हो तो कह सुनाओ तो समझ सकेंगे ।

उत्तर : करांची की बात है , बहुत वर्षों पहले एक फकीर एक स्थान पर पड़ा रहता था । वहाँ मैं उनके पास यदाकदा जाता । उसी दौरान समाज के पाप से और दोष से न करने का धंधा करती बहनें वहाँ बसने लगीं । अब उस फकीर को ऐसी एक बहन के यहाँ जाने का मन हुआ । पर उसके मन में होता, 'मैं वहाँ कैसे जा सकूँगा ? मेरी पवित्रता क्या ? मैं कुरान शरीफ पढ़नेवाला !' तब भी दिल में उलझन हो रही थी । मुझे पूछा, 'जाऊँ ?' 'हाँ, जाओ । मन में किसी प्रकार की आशंका क्यों रखते हो ?' और फकीर वहाँ गया, सब कुछ देखा करे, पर उसका भाव अलग था और उस बहन का भाव अलग प्रकार था ! इससे दोनों का मेल कैसे हो ? इसलिए उस बहन ने अपने नौकर के पास मरवाकर उसे बाहर निकाला ।

प्रश्न : सचमुच ?

उत्तर : जहाँ फकीर को मार पड़ा कि तुरन्त उसकी जो ग्रंथि तूटनी थी वह टूट गयी । और भान जाग गया और आनंद हुआ । खुदा का शुक्रिया अदा किया ।

प्रश्न : (महात्मा गांधी १९४४ में जेलमुक्त हुए)

मोटा, गांधीजी की जेलमुक्ति हमें मनानी चाहिए । किस तरह मनाएँगे ?

उत्तर : आसुरी बलों पर सात्त्विक बल का विजय हुआ, इसलिए उस दिन कुछ सत्कर्म करना चाहिए और इसतरह शुभ दिन मनाओ ।

यह प्रश्नोत्तरी ट्रेन के डिब्बे में चल रही थी । इसी दौरान पास में बैठे यात्री चिंतित स्वर में निजी बातें दबी आवाज से कर रहे थे, पर पूज्य श्रीमोटा वह सुन सकते थे । प्रश्नकर्ता तो उस दौरान सो गये थे । जो बात पूज्य श्रीमोटा ने सुनी उसका सारांश यह था – एक कुंवारी कन्या कि जिसकी शादी होनेवाली थी, उसे किसी बदमाश ने फँसाया था और उससे उसकी संतान होनेवाली थी । इसका रास्ता कैसे निकले, उस कन्या के माँ–बाप को समझ नहीं आ रहा था । इसलिए पूज्य श्रीमोटा ने उनके साथ जो भाई सो गये थे, उन्हें जगाया और उस कमनसीब कन्या की कहानी बतलायी और सूचित किया कि कन्या को अहमदाबाद के अनाथ आश्रम में रख आये और किसी को उस बात का पता न चले यह देखें । कन्या के मातापिता खुश हो गये । कन्या बच गयी । शुभ दिन में सत्कर्म करके मनाने की भावना इसतरह फलीभूत हुई !

प्रश्न : कर्म अथवा पुरुषार्थ और प्रारब्ध यह प्रत्येक को व्याकुल करते प्रश्न है, मोटा ! प्रारब्ध जैसा सचमुच कुछ नहीं है ?

उत्तर : देखो, भाई ! पुरुषार्थ और प्रारब्ध, एक सिक्के के दो पहलू हैं । तब भी अनजान कारण से सच्चे महात्मा लेख पर मेख मार जाय सही ।

प्रश्न : मोटा, ऐसा कोई उदाहरण, आपत्ति न हो तो कहेंगे ?

उत्तर : अरे, कोई किसी का कुछ करे – संसारी दशा में भी – तो उपकृत हुआ मनुष्य उसका बदला दिये बिना रहेगा ? ना, जी ।

तो चितननिष्ठ आत्मा की जो कोई सेवा करता हो तो वह आत्मा क्या कुछ किये बिना बैठी रहेगी ? (हाथ में बच्चे को लेकर खड़े एक भक्त की ओर हाथ करके) इस भाई ने मेरी बहुत सेवा की है । उसने किसी चीज की माँग नहीं की थी । पर एक बार उसने संतान में बेटे के लिए माँग की थी । तो मैं क्या करूँ ? मैंने अंदर देखा तो गर्भ लड़की का था । इसका मुझे स्पष्ट दर्शन हुआ । इसलिए मुझे तपश्चर्या करनी पड़ी । उसके परिणाम स्वरूप यह लड़का है । (जिसके हाथ में लड़का था वह)

प्रश्न : आपको तपश्चर्या करनी पड़े ? नहीं, नहीं, आपका संकल्प ही काफी है ।

उत्तर : नहीं भाई, तप हो सही ही ।

प्रश्न : आपके तप करने के दिन पूरे हो गये । अब कैसा तप ? हमें समझाने के लिए ऐसा कहते होगे ?

उत्तर : कैसे भी हो तब भी सारे पक्ष से पुरुषार्थ तो सही न ?

प्रश्न : मोटा, ग्रंथो का अभ्यास और चर्चाएँ हमें भगवान के मार्ग पर जाने में मददरूप हो सकती हैं ?

उत्तर : जिसे मात्र भगवान को ही और भगवान में ही मिलना है, उन्हें अधिक ग्रंथों का अभ्यास भी नहीं करना और व्याख्यानों की प्रवृत्ति भी नहीं करनी चाहिए, ऐसा मेरा मानना

है । मैंने नहिवत् ग्रंथ पढ़े है । खासकर गीता के अलावा कुछ नहीं । पर मेरे मंतव्य में मैं गलत हो सकता हूँ ।

प्रश्न : मोटा, 'परीक्षा पास होने के बाद भी अनेक वर्ष तक वही परीक्षा में बैठना, जैसे अभ्यास के अभाव में परीक्षा खंड में घबराहट होने का अनुभव और ऐसे सभी स्वप्न क्यों आते होंगे ?'

उत्तर : उस परीक्षा को पास करने के लिए जो *इन्टेन्सिटी* (आतुरता) होगी, मेहनत की होगी और पास होने में तकलीफ अनुभव की होगी उसके संस्कार गहरे तुम्हारे मन में पड़े होने चाहिए । इसलिए ऐसे सपने आते होंगे ।

प्रश्न : पर मोटा, *प्रेक्टिस* पन्द्रह-बीस साल से कर रहा हूँ और उसके लिए अनेक आघात-प्रत्याघात सहन किये हैं, तब भी उसके सपने नहीं आते है । उसका क्या कारण होगा ?

उत्तर : तुम उसके साथ जुड़े ही हो, इसलिए उससे संबंधित स्वप्न नहीं आते ।

प्रश्न : मैं आपके साथ काफी समय से जुड़ा हूँ । तब भी आपके सपने अनेक बार महिने में एक बार तो सही ही, आते हैं, उसका क्या ?

उत्तर : ठीक । परन्तु धंधे के स्वप्न न आये यह अच्छा ।

प्रश्न : यह अच्छा ?

उत्तर : हाँ ।

पूज्य श्रीमोटा के अंत समय में साथ रहे पूज्य श्री नंदुभाई ने बीच में बोलकर प्रश्नकार को समझाया, 'मोटा की चेतना

ने तुम्हारी चेतना में प्रवेश किया है, इसलिए मोटा तुम्हारे स्वप्न में यदाकदा आते हैं ।'

प्रश्न : मोटा, आप गुणभाव पर अच्छा भार रखते हो तब पढ़ा हुआ एक एक श्लोक याद आ रहा है –

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमनन्तरम् ।
शरीरे क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥

(मनुष्य के शरीर और उसके गुण उन दोनों के बीच अधिक अन्तर है । शरीर क्षण में नाशवान है, जब कि सद्गुण कल्प पर्यंत रहनेवाले हैं ।)

उत्तर : देखो, यह श्लोक पढ़ा, तब मेरे कहने पर अब विश्वास बैठता है न ?

प्रश्न : नहीं, नहीं मोटा ! ऐसा नहीं है ।

उत्तर : पर, उसमें 'भाव' शब्द का उल्लेख नहीं है । गुण के साथ भाव होना ही चाहिए, क्योंकि गुण निम्न प्रवृत्तिओं को भी प्रेरे । तो गुणों के साथ यदि भगवान विषयक भाव विकसित हो तो जीवन उच्चगति को पाएगा ।

प्रश्न : मोटा, जिसमें भाव प्रगट हुआ हो वह (भाव) ऐसे तो बहुत सूक्ष्म होने के कारण दीखता नहीं है, तब भी उन उन व्यक्ति में उसके लक्षण दिखेंगे ?

उत्तर : जरूर दिखेंगे । भाव की जब बाढ़ आती है, तब उसमें मस्ती चढ़ती है, मस्ती प्रकट होती है । 'भाव' का लक्षण खुमारी है । अनेक लोगों को मैंने 'यह तो बहुत अभिमानी है', ऐसा कहते स्वयं सुना है । जहाँ उछलते भाव का प्रपात है, वहाँ

खुमारी है ही । जहाँ सूर्य उदय होता है, वहाँ प्रकाश है, वैसा ही 'भाव' का और खुमारी का लक्षण है ।

प्रश्न : शरणागति प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर : शरणागति की योग्य भूमिका रचने के लिए प्रेमभक्ति यह मुख्य हकीकत माँग लेता है । प्रेमभक्ति अर्थात् विवेकशून्यता तो नहीं ही । वैसे ही विवेकहीन कर्म भी नहीं । हाँ, उसमें साहस से कूद जाना चाहिए । साहस, हिंमत और मृत्युपर्यन्त निर्धार आदि भी रहे हैं ।

प्रश्न : साक्षात्कार अर्थात् क्या, यह समझाएँगे ?

उत्तर : मानव के जीवन में जो अव्यक्त ईश्वर का स्वरूप है, उसे एकाग्र और केन्द्रित साधना के भाव द्वारा प्रगट करके उसे क्रिया के प्रवाह स्वरूप में, *उसकी* कृपा से, बहता करना उसका नाम साक्षात्कार । हम में जो अव्यक्त प्रभुमय जीवन है, उसे जीवन में प्रत्यक्ष काम करते अनुभव करना, वह साक्षात्कार है ।

प्रश्न : भूख-प्यास के ऊपर काबू पाये बिना मुक्ति नहीं मिलेगी न ?

उत्तर : नहीं होती । भूख, प्यास, शौच, इच्छा आदि पर पूर्ण काबू आने के बाद मुक्त दशा शुरु होती है । भावना के जोश के कारण यह सब संभव है । मन, प्राण और शरीर की सभी माँगे तब शांत हो जाती हैं और उन सब पर संपूर्ण काबू सहजरूप से आ जाता है ।

प्रश्न : टुकड़े-टुकड़े में मंत्र जाप करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर : कुछ भी टुकड़े टुकड़े में करने से हांसिल नहीं होगा । पहले उसमें अखण्डता आनी चाहिए, फिर एकाग्रता, केन्द्रितता और अंत में विस्तारता आएगी । **जब तक रागद्वेष निर्मूल नहीं होंगे, वहाँ तक कोई सिद्धि नहीं मिलेगी ।**

प्रश्न : श्रेष्ठ साधन कौन-सा है ?

उत्तर : जप । साधना में सातत्य और प्रेमभाव होने चाहिए ।

प्रश्न : मोटा, अनेक बार ऐसे प्रसंग होते हैं, तब ताजुब होता है - मानो योगानुयोग ! उसके पीछे किसी दिव्य का हाथ हो, ऐसा मान सकते हैं ?

उत्तर : जीवन में ऐसा *'कोइन्सिडन्ट्स'* - योगानुयोग - हो, तब उसमें कहीं दिव्य साँकल रही है । ऐसे अनुमान पर आने में आपत्ति नहीं है । इससे श्रद्धा-विश्वास जीवंत होने चाहिए ।

प्रश्न : मोटा, अनेकबार ऑफिस जाते हुए, बस में होते है तब, और ऐसी कोई संभावना न हो तब, अचानक अगरबत्ती या धूप की सुवास आती अनुभव हो, इसका अर्थ क्या समझें ?

उत्तर : कोई सत्पुरुष हमें याद कर रहे हैं, ऐसा सोचकर उनके स्मरण में गहरे उत्तर जाये ।

प्रश्न : अनेक बार महात्माओं के पास अनेक प्रकार के लोग इकट्ठे होते रहते हैं और उस पर कितने आलोचना करते रहते हैं, यह ठीक है ?

उत्तर : जैसे समुद्र में अनेक छोटीबड़ी नदिओं के बहाव बहते होते हैं, वैसे संतमहात्मा के पास भी अनेक प्रकार के लोग स्वार्थ साधने के उद्देश्य से जाते होते हैं । वैसे शंभुमेला भरे वातावरण के कारण हमें तब अन्यथापन नहीं होना चाहिए ।

प्रश्न : मोटा, श्रीसत्यसांईबाबा ने अपने भक्तों को अस्पतालों में जाकर बीमारों के साथ बात करने, उन्हें जो चाहिए, वह देने की सूचना दी है ।

उत्तर : अच्छी बात है । कुछ *प्रेक्टिकल* करे वह अच्छा । बीमारों की सेवा करते हों, उसे भगवान की सेवा कर रहे हैं, ऐसा भाव रखें ।

प्रश्न : संसार में होने से कौटुंबिक, सामाजिक, व्यावसायिक ऐसे अनेक प्रकार के घर्षणों का सामना करना पड़ता है, तब आध्यात्मिक विकास रुंधता लगता है । उसका उपाय बतलाएँगे ?

उत्तर : विकास का मूलभूत सिद्धांत घर्षण में है । घर्षण बिना का मनुष्य जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है । जो तुमने गिनाये घर्षणों से सूखकर काँटा हो जाओगे तो हो गया । अंतर्मुख मुड़े हुए के लिए घर्षण यह तो तेजस्विता को जीवंत रखने के लिए सच्चा साधन हैं । अकुलानेवाली स्थिति में अधिक जोर से, भाव से, उत्कटता से अपने सद्गुरु को पुकारे, निवेदन करे, प्रार्थना करे । वे रास्ता अवश्य बतलाएँगे ।

प्रश्न : प्रकृति और स्वभाव का गढ़न किसके आधीन है ?

उत्तर : यह है ऊनके जन्मजन्मांतर के इकट्ठे हुए स्वभाव की समग्रता ।

प्रश्न : उस स्वभाव को किस तरह बदल सकते हैं या जीत सकते हैं ?

उत्तर : उसके अनेक प्रकार के संस्कार हम में जगें, तब हमें उसके बहाव में मिल नहीं जाना है । उसे बह जाने देना है । ऐसी विचार-वृत्ति की स्थिति में भी जागृति बनाते बनाते भगवान को सच्चे दिल से प्रार्थना करें, 'हे प्रभु ! मुझे तो तुम्हारा आनंद की केवल चाहिए !' भगवान को इसतरह से पुकारने की जो उत्कट उत्साह है वह जोश हमारा बल है । ऐसे बल के आधार पर हम ऐसे स्वभाव की अड़चनों में कभी डूब नहीं सकते हैं । इसलिए भगवान के भावभरे स्मरण में प्रकृति को मठारने की और सुधारने की अद्‌भुत शक्ति रही है ।

प्रश्न : आपने 'स्त्रीहृदय' का उल्लेख कहीं कहीं किया है और उसके लिए आप बहुत भाव रखते हो ऐसा समझ में आता है । इसका हार्द समझाएँगे ?

उत्तर : 'स्त्रीहृदय' की प्रभुकृपा से मुझे सूझबूझ है और **उस** की कृपा से वह उस तरह से विकसित भी है अर्थात् उसकी समझ है । मनुष्य के दिल को, उसके रीतिरिवाज को और उसके सूक्ष्म व्यवहार को स्वयं ही अपने को इसतरह समझ सकने में समर्थ नहीं, वहाँ दूसरों को तो क्या समझ सके ? शरदबाबू के साहित्य में उन्होंने स्त्रीपात्र के हृदय का जो आलेखन किया है, वैसा दिल भी इस संसार में प्रत्यक्ष अनुभव में प्रगट हो तो कितना सारा आनंद आयेगा 'स्त्री का हृदय' तो कितना सारा

वफादारी से, प्रेम से, अनंतगुना त्याग और समर्पण का लक्षण यदि जीवन में प्रगट हुआ प्रभुकृपा से अनुभव कर सकें तो धन्य हो जाँए ।

प्रश्न : अनेक साधुमहात्मा मंत्र देते हैं और दीक्षा देते हैं, तो वैसी दीक्षा लेने में बाधा सही ?

उत्तर : दीक्षा के लिए साधुसंतो के पास दौड़ना नहीं । ऐसी भ्रमणा में न पड़े । साधु-महात्मा में शक्ति तो है, पर उनके लिए हमारे में भक्ति नहीं जगी है । दीक्षा हृदय से उत्पन्न करनी है । **दीक्षा का अर्थ जीवदशा की स्थिति से उच्च स्थिति में गतिमान होने का कदम ।** केवल गुरुमंत्र लेने से कुछ नहीं होता । भगवान के नाम का कोई भी एक मनपसन्द मंत्र स्वयं लेकर उसका जाप करना प्रारंभ कर सकते हैं और वह मंत्र बार बार बदले नहीं ।

प्रश्न : ऐसे जाप से, नामस्मरण से रोग मिटेंगे ? कामक्रोधादि फीके होंगे ?

उत्तर : अवश्य, जब स्मरण अखंड हो, तब कामक्रोधादि फीके होंगे । इसके लिए आंतरिक संग्राम खेलना पड़ता है । मुझे साँप ने काटा । मैंने उसके सामने सतत 'हरि:ॐ' के रटन से संग्राम खेला, तब अजपाजप पाया । उसमें से एक सिद्धान्त मिला । शब्द में निरंतरता प्रगट हो, तब आकाशतत्त्व खिलता है और आकाशतत्त्व खिलता है, तब सत्त्वगुण प्रगट होता है । सत्त्वगुण प्रगट होता हैं, तभी रजस और तमस फीके होते है । जिससे कामक्रोधादि फीके होते हैं । रोग भी मिटता है, इतना ही नहीं

पर हमारी बुद्धि खिलती है । मैं पहले बहुत भुलक्कड़ था, पर वह आदत स्मरण के कारण सुधर गई ।

प्रश्न : गुरु ऐसे ही मिल सकते हैं सही ?

उत्तर : जिज्ञासा रखो तो गुरु मिल जाँय, पर यह जिज्ञासा सामान्य प्रकार की नहीं होनी चाहिए । वह तो गतिशील, क्रियाशील और सर्जनशील होनी चाहिए । और गुरु से लाभ कब होगा ? जब तुम उनसे हिलमिलकर पिघल जाओ तब !

प्रश्न : मोटा, किसी की पत्नी एकदम कुरुप हो और इससे पति की ओर से उसे सुख न मिलता हो तो वैसी पत्नी को क्या करना चाहिए ।

उत्तर : यह प्रश्न सोचने जैसा सही । मानवजीवन यह मात्र स्थूल पर निभता नहीं है । दुश्मन में भी बस करके उसे अपना कर लेने की एक कला है सही । कुरुप स्त्री होने पर भी उसे जीवन के एक एक पहलू और क्षेत्र में अधिक लोगों की नजरों में आये बिना पति को इतनी सारी सरलता और मददरूप हो पड़े कि स्वयं उसमें तन्मय हो जाये । तो फिर, कभी उसके पति का ऐसी कुरुप पत्नी के प्रति भी प्यार जागने की संभावना है सही । ऐसी बात पति के पक्ष में भी हो सकती है और जिससे पत्नी को वह पसंद न हो ऐसा बनता है और पत्नी दूसरे पुरुष को चाहती हो, ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? ऐसे दोनों किस्सो में पति अन्य स्त्री को और पत्नी अन्य पुरुष को चाहते हों, उसका दर्द हमारे दिल में होता है, और उसके लिए हम मन में धुंआपुंआ हुआ करते हो । यह एक बड़ी उलझन है । तो

यह सारी उलझन समझ समझकर तोड़नी ही चाहिए । मालिकी अधिकार का विचार मन से निकाल देना चाहिए । किसी को हमारे सामने बांध रखने की वृत्ति को ही तिलांजलि दे देनी चाहिए । यद्यपि ऐसा करना कठिन है, फिर भी हम शांति और सुख आत्मविश्वास द्वारा चाहते हों तो उन उन व्यक्तिओं को बिलकुल स्वतंत्रता दे देनी चाहिए, इसके अलावा हमारा धर्म उन्हें चाहने का होना चाहिए । परन्तु संसार में अधिकतर सभी को प्रेम लेना है, माँगना है, देना नहीं है । **हमें अपने आत्मविकास के खातिर सच्चे दिल से चाहना है । तो जीवन जी सकते हैं । इसे ही सच्ची आध्यात्मिकता कह सकते हैं★ ।**

प्रश्न : (हाथ जोड़कर) प्रभु, आज्ञा करो, मेरे लायक कुछ काम दो ?

उत्तर : भाई, आज्ञा क्या दूँ ? नामस्मरण किया करें । कामक्रोधादि फीके हो रहे हैं कि नहीं, उसे जाँचते रहो । हम सब स्वार्थ में ही डूबे हैं । बहुत कम परमार्थ करते होते हैं । नहींवत् करते होते हैं । तो इसमें से तुम्हें जो ठीक लगे वह करो ।

★ इसके समर्थन में श्रीनंदुभाई ने कही एक हकीकत का उल्लेखन करना हमें ठीक लगता है । मालिकी हक की भावना का त्याग करके एक पति ने अपनी पत्नी को उसके प्रेमी के साथ रहने जाने दी थी । किन्तु थोड़े समय के बाद उस प्रेमी का बूरा वर्तन से उसकी आँख खुल गई और पति के शरण में लौट आयी । पति ने उस प्रेम से स्वीकार कर लिया । ऐसे पति-पत्नी और दो बालकों का संसार सुधर गया ।

प्रश्न : मोटा, आपने जहाँ जहाँ आश्रम बनाये हैं, वे सभी नदी किनारे और शहरों से दूर एकांत में हैं । प्रत्येक जगह की कोई खास विशेषता है सही ?

उत्तर : प्रथम आश्रम कुंभकोणम् में खुला । इस आश्रम में एक संत की समाधि है, उसकी *कोन्श्यसनेस* – चेतना की अनुभूति हुई थी । नड़ियाद का आश्रम जिस जगह पर है, वहाँ पहले कबीरपंथी साधु रहते थे । फिर मेरे गुरुमहाराज मुझे इसी जगह पर मेरे साधनाकाल के दौरान ले आये थे और साधना करवायी थी और उन्होंने भविष्यकथन किया था कि यहाँ मेरा आश्रम होगा ! रांदेर का आश्रम भी ऐसी तमोभूमि पर है । पास में ही नदी-तालाब हो तो एक तो पानी की सुविधा रहती है और दूसरा, जलराशि विचारों के उग्र आंदोलनों को (जलतत्त्व के कारण) मंद करते हैं । इससे मन को शांति लगती है और शहर से दूर हो, यह खास जरूरी है । उससे शुचि और शुद्धि की हिफाज़त होती है ।

प्रश्न : आदि शंकराचार्य महान वेदांती, अद्वैतवादी होने पर भी उन्होंने अनेक भक्तिस्तोत्र रचे हैं । ऐसा क्यों है ?

उत्तर : वे अद्वैतवादी थे और निर्गुण ईश्वर का साक्षात्कार किया, तब भी श्रीनगर में उन्हें सगुण ब्रह्म का अनुभव हुआ और वहाँ पर उन्होने पंचायतन की स्थापना की – शिव, पार्वती, गणपति, हनुमानजी आदि । निराकार परब्रह्म में रचते ऐसे आचार्य भी साकार में वापिस आते हैं, क्योंकि इसका आनंद ही और होता है । शंकराचार्य ने भक्तिस्तोत्र रचे, क्योंकि सामान्य जनसमूह

भक्तिप्रधान होता है, उसके लिए वेदांत को समझना, आचरण करना कठिन है, उन्हें इसका पता था ।

प्रश्न : ब्रह्मनिष्ठ हो उसके लक्षण कृपा कर समझाएँगे ?

उत्तर : वह सत में भी वर्ते और असत में भी वर्तन करे । उसे स्थान काल की मर्यादा नहीं होती । शरीर भी दूसरे धारण कर सकते हैं । मौनमंदिर में और उसके बाहर मोटा के स्थूल शरीर के दर्शन दूसरों को अलग अलग रूप से हुए हैं । दूसरा काम, मिले हुए लोगों में भगवान की भावना का बीज रोपना है । बीज का फलित होना फिर संयोगों पर आधारित है ।

प्रश्न : मोटा, आपको दक्षिण भारत अधिक प्रिय है सही न ?

उत्तर : हाँ, उसकी भावना के कारण मुझे अधिक प्रिय है । वहीं बड़े बड़े आचार्य पैदा हुए हैं । अब हिंद के लिए अंधाधुंधी का काल नजदीक आ गया है । स्थान और काल का तबक़ा बदलता है । अंधाधुंधी के काल में हमें टिकाये रखनेवाला कोई हो तो वह भगवान है । हमारी संस्कृति का पुनरोदय दक्षिण भारत में से होगा ।

प्रश्न : आप रूढ़िभंजक हो ऐसा हम जानते हैं । उसका मूल उद्देश्य आप कहेएँगे ?

उत्तर : मूल उद्देश्य मेरा पूर्वग्रहों को हटाने का है । पूछा है इसलिए कह देता हूँ । मैं मुसलमान मित्र के घर आता जाता था । उनके घर का चाय-पानी पीता था । इसलिए उस मित्र ने कहा, 'तू मुसलमान हो जा ।' मुसलमान के घर का पानी पीआ,

इसलिए मुस्लिम हो गये, ऐसा पहले मानते थे, पर यह गलत है । उस मित्र ने मुझे मांस खाने को कहा, वह भी खाया । पर इससे मैं मुसलमान नहीं हो गया । उस मित्र को मेरे ऐसे कर्म के हेतु का पता नहीं था । मांस आदि के लिए मेरा पूर्वग्रह मुझे मन से निकालना था । मेरे साधनाकाल के दौरान जो कोई रूढ़िभंजक काम किये हैं, उन सभी का उद्देश्य यही है – मेरे पूर्वग्रहों को मुझे हटाना है ।

प्रश्न : देशसेवा अभी जो सब कर रहे हैं, उस बारे में आपका क्या अभिप्राय है ? भारत का भावी कैसा दिखता है ?

उत्तर : जिसके रोमरोम में भगवान बसे हैं, वही सच्ची सेवा करनेवाला है । एक हमारे गाँधीबापू ऐसे निकले कि जिन्होंने सच्ची सेवा की है । उसकी जनमघूँटी हमने पी है, इसलिए हमसे हो वैसी सेवा अभी कर रहे हैं । बाकी, राजनीति आदि रागद्वेष बढ़ानेवाले हैं । इसलिए मैं उसमें नहीं पड़ा । अब कुछ वर्षों तक यह शरीर चलेगा, क्योंकि शरीर तो तूट गया है । आपसे प्रार्थना है कि मेरी योजनाओं में कृपाकर मदद करें । यह बड़ी सेवा है । इसमें से हिन्दू समाज का उत्थान अवश्य होगा, पर कब होगा यह नहीं कह सकता । **एक ऐसा नररत्न, नरशार्दूल पैदा होगा जो हिन्दुस्तान को ऊपर लाएगा । मैं ज्योतिषी नहीं हूँ पर यह काल की निशानी है । उथलपुथल जरूर होगी, होनी ही चाहिए । तब प्रजा में चेतना आती है, उसके बाद कोई कालपुरुष पैदा होगा और अधिक अच्छा होगा ।**

प्रश्न : अनेक बार ऐसा होता है कि भगवान दीखते नहीं है तो उनकी सेवा कैसे करें ?

उत्तर : अरे ! भगवान सर्वत्र बसे हुए हैं । ब्रह्मांड उनका व्यक्त स्वरूप है । सभी में वे बसे हैं, पर आज वे पत्थररूप हो गये हैं । उसमें से उसे जगाना है, बैठा करना है । इसतरह **तमस में पड़े हुए भगवान को उठाये, वही भक्ति-सेवा कहलाएगी ।** तन, मन, धन से भगवान की सेवा हो सके । **मात्र मंदिर में जाने से, माला फेरने से उस की सेवा नहीं होती ।**

प्रश्न : बाहर के विकारी, वासनावाले तत्त्व हमें परेशान करते हैं सही ?

उत्तर : हमारे आसपास के वायुमंडल में वासना से भरे हुए सूक्ष्म तत्त्व इतने सारे हैं कि, यदि भगवान ने हमें स्थूल शरीर न दिया होता तो वे सभी हम में प्रवेशकर हमें अपना मूढ़ हथियार बनाकर अपनी वासनाओं का संतोष करके हमारा अधःपतन करते । हमारा शरीर पार्थिव तत्त्व का है, घन है, (मिट्टी का बना ठोस है) जबकि वे अनिष्ट तत्त्व वायुरूप प्रवाही, बदलते आकारवाले होने से हमारे शरीर के स्थूल तत्त्व के साथ टकराकर निष्फल होकर वापिस जाते हैं । हमें काम या क्रोध की जोरदार वासना होती है, तब उसे रोककर शरीर हमारा रक्षणकार हो जाता है । यदि ऐसा न होता तो कौन जाने हम अपना कितना ही नुकसान कर बैठते ! इसप्रकार स्थूल शरीर हमारा बड़ा रक्षणकर्ता है ।

प्रश्न : आप अंतिम कितने वर्षो से कह रहे हो कि धन का परमार्थ में उपयोग करो । *'क्रेओस'* उथलपुथल होगी । वह किस आधार पर ? किसलिए ? और बचने का उपाय है सही ? तो कृपाकर कहएँगे ?

उत्तर : हाँ, मुझे ऐसा कहनेवाले मिलते हैं कि, मोटा, आप बारबार क्या ले बैठे हो ? (उत्सव मनाने को) अरे भाई, तब तुम क्यों बारबार नयानया ले-बेच किया करते हो ? नया घर क्यों खरीदते हो ? तुम जो करते हो, वह कोरे स्वार्थ से प्रेरित करते हो; मैं ऐसे उत्सव द्वारा जो कुछ मिलता है, वह प्रजा के कल्याण के लिए वापिस दे देता हूँ । मेरे आश्रम के लिए तुम से दिया जाय वह देना । नकारात्मक विचार न करे, क्योंकि ऐसे विचारों से तुम्हें ही नुकसान होगा, मुझे कुछ नहीं होगा । मैं यह कर्म करता हूँ, पर मुझे इसका बंधन नहीं है । अनुभवी पुरुष काल की माँग को समझकर हमेशा मौलिक कर्म करता रहता है ।

मैं अनेक वर्षों से स्पष्ट दर्शन पाकर कहता रहा हूँ कि अंधाधुंधी का काल आएगा । पैसा कलम के धक्के चला जाएगा । इसलिए स्वार्थ से अधिक परमार्थ करो और **परमार्थ ऐसा करो कि जो समाज की समग्रता को स्पर्श करे । यज्ञ और सांप्रदायिक कर्मकांडो को कुछ समय के लिए रोक दो ।** तुम्हें भड़काने के लिए नहीं कह रहा हूँ, पर तुम्हारे भले के लिए ही कह रहा हूँ ।

प्रश्न : ब्रह्म का अनुभव होने पर मनुष्य ब्रह्म बन जाता है, ऐसा कहा जाता है, यह सच है ?

उत्तर : नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं है । वह ब्रह्म जैसा संपूर्ण नहीं होता, क्योंकि ऐसा शरीरधारी चेतननिष्ठ चेतन की तरह, भगवान की तरह सर्जन नहीं कर सकेगा । विश्वामित्र ने पृथ्वी का सर्जन किया था, ऐसा कहते हैं, पर वह वास्तविक नहीं लगता । इसके द्वारा उनकी महानता बतलायी जाती है । फिर,

निमित्त मिलने पर चेतननिष्ठ व्यक्त होते हैं । पर उस निमित्त की भी मर्यादा होती है, तब चेतन का विस्तार अनंत है, मर्यादा बिना का है । इसलिए मनुष्य को भगवान से बड़ा नहीं बनाना चाहिए । चेतन का व्यक्तिगतपना नहीं होता । वह अनंतरूप सचराचर है, पर आज मनुष्य को समाज ने बड़ा बना दिया है ! भले वह बड़ा रहा, पर भगवान की तुलना में वह नहीं आ सकता, इतना ध्यान में रखें ।

प्रश्न : मोटा, साधना में रूचि कब जगेगी ?

उत्तर : जब किसी बात में 'गरज' जागी हो तो रुचि आएगी । जिसका सतत चिंतन हुआ करता हो, ऐसी बात में आनंद आएगा । जीवनध्येय की प्रतीति हो गई हो और उसके बिना जीवन में दूसरे किसी में आनंद न आये तो आनंद होगा । जीवन में जिसे हम सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न गिनते हों, उसमें रस आएगा । ऐहिक तमाम प्रकार के सुख सुविधाएँ होने पर भी इन सभी में दिल में चैन न हो और हृदय अंदर से अभी और कुछ चाहता हो तो उसमें रस आएगा । भले ही हमें प्रारंभ में शायद रस न भी हो या शुरू में रस आये फिर मंद गति हो जाय, तब भी जीवन के बाकी का कार्य यह ही है, ऐसा दृढ़ निश्चय यदि प्रगट हो सके होंगे और एक या दूसरे साधन को चिपके रहकर प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक कुछ न कुछ किया करते रहेंगे तो एक दिन वेग जन्म लेगा ही ।

प्रश्न : मोटा, 'साक्षीभाव' शब्द अनेक जगह पढ़ने में आता है और सुनने में भी आता है, पर उसमें रही भावना की खूबी समझ में नहीं आती है तो कृपाकर समझाएँगे ?'

उत्तर : साक्षीभाव अर्थात् अलगपन । तो अलगपन किसमें ? हमारे विचार, मनोभाव, भावनाएँ, संबंध, व्यावहारिक क्षेत्र – ऐसे अनेक प्रसंगों में अलग रहना, तटस्थ रहना । परन्तु **अलगपन अर्थात् बेदरकारी नहीं, उपेक्षाभाव नहीं, पर हमारे संबंधों में घुल जाना या बह जाना नहीं चाहिए; पर उनके साथ इसतरह रुचि ले कि जिससे वे उचित तरह व्यवहार करें और हमें सरलता रहे ।** साक्षीभाव के साथ विवेकवृत्ति भी रखनी है । साक्षीभाव अथवा तटस्थता और अनासक्ति लगभग समान अर्थवाले शब्द है । तब भी उसमें भेद है । तटस्थता को अनासक्ति का परिणाम भी गिन सकते है ।

प्रश्न : मोटा, आपके जीवन के बारे में जो कुछ प्रभुकृपा से लिखा है, वह ठीक ठीक पढ़ा जा रहा है ।

उत्तर : मेरे कहे बिना तुम स्वयं 'प्रश्नोत्तरी' मोटा के जीवनप्रसंग आदि लिखकर प्रकाशित कर रहे हो, वह अच्छा है । यह लिखना जारी रखना क्योंकि तुम्हारा प्राप्त धर्म है ।

प्रश्न : हम यात्रा पर जाएँ, तब किस भाव से जाएँ और कैसा व्यवहार करें ?

उत्तर : यात्रा पर जाँए तब कम के कम वापिस आए तब तक सांसारिक बातों को करना बिलकुल छोड़ दें । जिस स्थान पर जा रहे हो, उस जगह के बारे में, वहाँ के इष्टदेव अथवा वहाँ रहे हुए या रहते महात्मा की बातें करें, जिससे वहाँ के प्रति हमारा एकाग्रताभरा भाव और भक्ति प्रगट हो । दर्शन के दिन यदि अकेले ही जानें का हो तो उत्तम । दर्शन के समय

त्राटक का एकाग्रभाव से रहे, जिससे वातावरण का सूक्ष्मभाव हृदय में उतार सके और **दर्शन करने के बाद एकांत स्थान पर जाकर ध्यान में बैठें ।** दर्शन से प्रगट हुई असर का ऐसा रचनात्मक उपयोग आवश्यक है । पर आजकल अनेक लोग तीर्थ का तीर्थ में ही रखकर वापिस आते है । परंपरागत होती यात्रा से हमारा कुछ न होगा । आज तो मात्र घूमने जाते हो, ऐसा मुझे लगता है ।

प्रश्न : मोटा, कितनों को *विजन्स* (सूक्ष्मदर्शन) आते हैं, वह किसकी असर है ?

उत्तर : यह एक ढंग से साधना का अच्छा लक्षण गिन सकते हैं, परन्तु हमें ऐसे दृश्यों को महत्त्व नहीं देना है ।

प्रश्न : वैराग्य और संन्यास इन दोनों के बीच यदि कोई अंतर है तो उसे समझाएँगे ?

उत्तर : वैराग्य यानी संसारव्यवहार के प्रति बेपरवाह ऐसा नहीं समझना हैं । **जिस तरह का निम्न जीवन हम भी जी रहे है, उसमें से उपरामवृत्ति जागे, उसके प्रति अरुचि जागे तो इसप्रकार के रुख़ को एक प्रकार का वैराग्य गिन सकते हैं ।** वैराग्य यानी प्राप्त धर्म-कर्तव्य में से भाग खड़ा होना नहीं है । सच्चे वैराग्य की भावना-दशा में सात्त्विक गुण, जैसे कि समता, शांति, धीरज, ताटस्थ्य आदि व्याप्त होते है । परिग्रह या अपरिग्रह एक में भी ऐसी भावना-दशावाला उलझता नहीं है ।

अब संन्यास के बारे में - शास्त्रों में वर्णित संन्यस्त का धर्म और अभी साधारण रूप से आचरित संन्यस्तधर्म, इन दोनों

के बीच आसमान जमीन का अन्तर है । **गीता का संन्यास वह वृत्ति का संन्यास है ।** गीता का धर्म प्राप्त परिस्थिति और प्राप्त धर्म से भागने को स्पष्ट मना करता है । **वैराग्य यानी श्रीभगवान के चरणकमल में संपूर्णभाव से आसक्ति, संन्यास यानी सकल कर्म करते हुए भी उसमें पूरीतरह संन्यासवृत्ति अर्थात् सर्व कर्म का पूरा संन्यास ।**

प्रश्न : मोटा, हमें और वयस्क उम्र की संतानों के प्रति कैसा रुख़ अपनाना चाहिए ?

उत्तर : छोटे बालकों का प्रेमभाव से पालनपोषण करें । स्तनपान कराते समय खूब शांत रहें । एकाग्रचित्त से भगवान का नामस्मरण करते रहें, जिससे वह सारा भाव उसमें उतरे, पर प्रथम तुम्हारे दिल में वह तमन्ना प्रगट होनी चाहिए कि मुझे उसे ऐसा बनाना है । अपने बड़े पुत्र-पुत्रिओं के बारे में किसी भी प्रकार की आसक्त इच्छा न रखें । जिन बालकों पर मातापिता के रागासक्त तीव्र इच्छाओं के आक्रमण हुए हैं, वे अनेक बार मातापिता की इच्छा से विरुद्ध ही होते है । इसलिए उसे जैसा होना होगा वैसा होगा । संतान को हमारी रीत से नहीं परन्तु उसके रीत से, वह शोभित हो ऐसे आकार देना यह काम भगवान ने हमे सौंपा है । उसके गढ़ने का काम हमारे (मातापिता के) जीवन विकास के लिए है, ऐसा समझ लें । उस काम में जितना मोह-राग और ममता उतनी ही जकड़ विशेष और मुक्त होना असंभव । फिर हमारे संतानों का जो भी हो सभी प्रेम से सह लेना है ।

लड़के योग्य तरह से आचरण न करे तो उसका परिणाम उन्हें ही भोगना है । **प्रेमभाव से सहना और उदार दिल रखकर उन्हें समझाया करें यही उन्हें योग्य समझ में और व्यवहार में लाने का मार्ग है ।** वे न समझें तो इससे हमें त्रसित नहीं होना है, हमारा मानभंग हुआ है, ऐसा न समझें । 'तो फिर हमारा स्थान कहाँ ?' ऐसा मन हमें पूछे तो हमारा स्थान हमारे में ही रहा है ।

प्रश्न : मुक्तात्मा और अवतार के बीच अंतर सही ?

उत्तर : मुक्तात्मा काल को घड़नेवाले जरूर होते हैं । वे काल के अनुसार व्यवहार करते हैं, यह बात सच है । परन्तु वह उससे खिंचकर नहीं, उसके ऊपर तैरते रहकर । अवतार तो काल की असर से पर होते हैं, पर जगत की उनके अवतार समय की दूसरी कोई तरह न पूरी हो, ऐसी चेतना के आविर्भाव की माँग को वे पूरा करते हैं और वह उनके देहधारण का उद्देश्य होता है ।

प्रश्न : मोटा, अंग्रेजी में एक कहावत है, *'प्रेयर्स केन मूव माउन्टेन'* (प्रार्थना पर्वत को हिला सकती है) ऐसा सचमुच होता हो तो प्रार्थना कब, किस तरह करें यह कृपा करके समझाइए ?

उत्तर : हाँ, पुरुषार्थ से कोई काम बनने में बहुत समय लगे अथवा कभी असंभव सा लगे, तब प्रार्थना के बल से वैसा वैसा होते जाते अनेकों ने अनुभव किया है । परन्तु इसके लिए प्रार्थना की हमें गरज होनी चाहिए; इसके बिना उसका सच्चा

उठाव प्रगट नहीं होता । जो जीव हृदय में हृदय के सच्चे भाव से आर्तनाद और आर्द्रभाव से उसका आश्रय लेता है, उसे वैसी प्रार्थना कभी निराश नहीं करती । यदि प्रार्थना की कला साधक को प्राप्त हो तो इससे जीवन को बल, प्रेरणा, सहानुभूति, धीरज, हिंमत आदि मिल जाते हैं । प्रार्थना के निरन्तर भावभरे अभ्यास से कर्मों में दोष कम होते जाते है और सद्‌विचारों की प्रेरणा भी प्राप्त होती है । प्रार्थना सभी काम करते हुए हो सकती है । वह कितना सरल, सहज और उत्तम साधन है !

(अनुष्टुप)

खाओ, पीओ, सोओ, बैठो ; उठो, सभी कार्य करे,
*धारकर जहाँ धारणा **उस** की, सभी किया करें ।*

प्रश्न : भगवान के साथ व्यक्तिगत संबंध कर डालें, ऐसा आपने कहा है । यह विस्तार से समझाएँगे ?

उत्तर : व्यक्तिगत संबंध यानी उसके साथ हमारा खूब निजी संबंध बंधे वह – **'पर्सनल टच'** जम जाय वह । हमारे बैष्णव धर्म में जो सही मरजाद का धर्म है, वह ऐसा व्यक्तिगत अंगत परिचय उनके साथ बनाने के लिए है ।

प्रश्न : राष्ट्र और समाज के उत्कर्ष में धर्म या आध्यात्मिक विज्ञान की भूमिका क्या है ?

उत्तर : धर्म अर्थात् क्या ? आध्यात्मिक ज्ञान की नींव में धर्म निहित है । **धर्म अर्थात् जीवन में उच्च गुण आवें वह ।** धर्मपालन करते परमार्थ और त्याग आना चाहिए । संसार में रहने पर भी कामक्रोधादि फीके पड़ जाँय, लक्ष्मी की लोलुपता

घटे, यदि वह सचमुच धर्म पालता हो तो । ऐसा संसारी जीव ऋण को भूलता नहीं । पितृऋण, देवऋण, धरतीमाता का ऋण, समाज का ऋण आदि ऋण अदा न करे तो वह मनुष्य धर्मिष्ठ नहीं कहलाएगा । समाज का उत्थान हो, इसतरह उसमें हिस्सा ले, अपनी आहुति दे । ऐसा धर्मिष्ठ मनुष्य भगवान के प्रति मुँह फेरता है । ऐसा मनुष्य किसी को ठगेगा नहीं । स्वयं शायद ठगा जाय, स्वयं अन्याय सहन करेगा, सभी के साथ बाँटकर खाएगा । जिस मनुष्य में चेतना प्रगट हुई हो, वही सब जगह भगवान को देखता है और समाज व देश की सेवा करता है । इसतरह समाज के उत्कर्ष में आध्यात्मिक विज्ञान की भूमिका होती है ।

प्रश्न : 'समर्पण' एक बड़ी साधना है सही न ?

उत्तर : हाँ, यह एक उत्तम प्रकार का सरल और सहज साधन है ।

प्रश्न : इसमें किस किस का समर्पण करना होता है ? धन आदि ?

उत्तर : धन आदि दो वह स्थूल समर्पण है, पर इससे सब पूरा नहीं होता । स्थूल का समर्पण सूक्ष्म प्रगट करने के लिए है । प्रत्येक कर्म, विचार, वृत्ति, मनोभाव, भावना, प्राण का आवेश, आवेग, कामना, आशा-तृष्णा, लोलुपता, अहम्, पसंद-नापसंद और बुद्धि के जड़ आग्रह, यह सब, श्रीभगवान के चरणों में प्रेमभक्तिपूर्वक समर्पण करते जाना है । यद्यपि ऐसा समर्पण एकदम तो नहीं होता है, पर साधक सावधान रहे तो धीरे धीरे

हो सकता है । और ऐसा समर्पण परंपरा से न हो, उसके पीछे का भाव जीवंत होना चाहिए । भले हमारे ऐसे कर्म अधूरे हों, अयोग्य होने पर भी भक्तिपूर्वक, प्रभु को वे सब कर्म अच्छे और बूरे समर्पण करते रहें । ऐसे समर्पण करने का अभ्यास जैसे जैसे बढ़ता जाएगा वैसे वैसे अहंभाव पिघलता जाएगा ।

प्रश्न : मोटा, समर्पण की तरह आत्मनिवेदन भी एक साधन है न ?

उत्तर : हाँ, आत्मनिवेदन में हृदय का भाव महत्त्वपूर्ण होता है । **आत्मनिवेदन से हमारे हृदय का संबंध भगवान के साथ बंधता है । जैसे मल की शुद्धि के लिए खास विधि और क्रिया है, वैसे मनादि के मैल धोने के लिए श्रीप्रभु के चरणकमल में हुआ निवेदन है ।** इससे नम्रता आनी चाहिए, शक्ति प्रगट होनी चाहिए । ऐसे निवेदन कोई रुदन नहीं है । जिस बात का निवेदन हुआ हो वैसे एकरार में से तो फिर से वैसा कर्म न हो सके ऐसी ज्ञानयुक्त जागृति प्रगट होनी चाहिए, तभी वह सच्चा हृदय का एकरार गिना जाएगा ।

प्रश्न : किसी दंपति के उदाहरण में पत्नी झगड़ालू हो तो पति को कैसा भाव रखना चाहिए ?

उत्तर : हमें प्रेम से सहन करना चाहिए । समझ, बुद्धि और प्रेम से उसे समझाने का प्रयत्न करना चाहिए । गृहकार्य में जितना हो सके उतना साथ दें । उन्हें अपनी रीत से व्यवहार करने में स्वतंत्रता दो । हमें कुछ खास खोने जैसा नहीं है तो 'हाँ जी हाँ' करने में शरम न रखें । हमें इस मार्ग में आगे बढ़ना

हो तो पत्नी का सब कुछ सहने की तैयारी रखें - प्रेम और आनंद से । इससे हमारे अहम् पर मार भले ही पड़े । यह सब सहना एक प्रकार की साधना है । अरे ! मैं तो कहता हूँ कि उस (पत्नी) की शरण में जाओ । किसी किस्से में पति ऐसा हो तो यही सिखावन पत्नी को लागू होगी । जिसे जीवनविकास करना है, उसके लिए यह सलाह है ।

प्रश्न : मोटा, ऐसा दृढ़ करने में आता है, 'जो होता है, वह हमारे अच्छे के लिए है ।' तो प्रत्येक कड़वे-मीठे अनुभव को इस सूत्र पर लागू कर सकते है ?

उत्तर : हाँ, श्रद्धा हो तो । जैसी जैसी परिस्थिति हमें प्राप्त होती है या प्रसंग प्राप्त होते हैं, वे सभी कोई न कोई नयी समझ पैदा करने के लिए हैं । मनुष्य के अभ्युदय के लिए संपूर्ण संभावनाओं से भरपूर होता है । कोई भी परिस्थिति से भागने की जरूरत नहीं है । परिस्थिति और प्रसंगों तो अनेक प्रकार के आयेंगे और जायेंगे, परन्तु उनमें हम कैसे रहते हैं और किस तरह जीते है, उस पर हमारे जीवनविकास का आधार है । कुछ भी बेकार नही है । प्रसंग के सिवा हमारे जीवन का दूसरे किससे निर्माण होगा ? प्रसंग अच्छे-बुरे दोनों होते हैं, परन्तु हमें तो उन दोनों में प्रभुभावना दृढ़ करनी चाहिए ।

प्रश्न : हमारे आसपास का वातावरण हमारे जीवन पर बड़ी असर करता है सही ?

उत्तर : निश्चित । हमारे आसपास एकदो नहीं पर अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न वातावरण छाये हुए हो, हमारी आसपास

में घुमते हो । इसका पता सामान्य जीव को नहीं होता । जीव को वातावरण हिला देता है और उसके बल से एक या दूसरे प्रकार से उसका निर्माण होता है । साधका का कर्तव्य अनिष्ट सूक्ष्म वातावरण से उबर जाना चाहिए और उसके लिए एक रास्ता–कोई भी पारमार्थिक, अर्थात् प्रभु के सतत विचार में या वैसे भाव के साथ किसी कार्य में सतत सख्त लगे रहना है । मन को सतत सात्त्विक रूप से प्रवृत्तिशील रखने से हम पर दूसरे वातावरण की असर नहीं होती ।

प्रश्न : 'सात्त्विक रूप से प्रवृत्तिशील' अर्थात् कैसा ?

उत्तर : अर्थात् ऐसी प्रवृत्ति कि जिसमें मन को आसक्त होने जैसा न हो । वह प्रवृत्ति स्थूल कार्य की हो तो उसमें भी सतत भगवद्भाव रहना चाहिए और वह भी समर्पणभाव से । मानो कि तुम मेरे लिए कोई फंड उगाहते हो, तब तुम्हें वह 'मोटा' के लिए उगाहते है ऐसा नहीं मानना है, पर श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ यह कार्य कर रहे हैं, ऐसा मन में दृढ़ करें ।

प्रश्न : अच्छा वातावरण खड़ा करने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : गुणों की विशुद्धि जितनी आवश्यक है, इससे शायद अनेकगुणी अधिक विशुद्धि ऐसे वातावरण की साधक के लिए आवश्यक है । अपने सद्गुरु के प्रति अश्रद्धा का भाव मन में या ऐसे किसी का भी एक तरंग न हो, यह देखने का काम उसके लिए बहुत आवश्यक हो जाता है । ऐसी दृष्टि और शुद्धि अच्छे वातावरण से निर्माण हो सकती है । अच्छा वातावरण खड़ा

करने के लिए खराब का सामना करने से अच्छा अच्छे का बल को बढ़ाने का प्रयत्न करना, यह अधिक सरल उपाय है ।

प्रश्न : मोटा, कितने पूछते है, 'हरिः ॐ' जप करना योग्य मंत्र है ?

उत्तर : क्यों ऐसा पूछेंगे ?

प्रश्न : शायद दूसरे बहुत सारे मंत्र 'ॐ' से शुरु होते हैं और पूर्ण होते हैं या बीच में आता है 'नमः'; जैसे कि 'ॐ नमो नारायण,' 'ॐ नमः शिवाय,' 'ॐ श्रीनारायण नमः', 'ॐ श्रीरामाय नमः' आदि ।

उत्तर : 'हरिः ॐ' निर्गुण, वैदिक मंत्र है । 'हरि' बोलते हुए कोई अमुक देव देवी का स्वरूप हमारे आगे खड़ा नहीं होता । यद्यपि शब्दकोश में 'हरि' अर्थात् 'विष्णु', 'कृष्ण', 'शिव', 'इन्द्र' ऐसे अर्थ बताये हैं । कुछ भी हो, इसके जप हो सकते हैं । इश्वर के हजार नामों में 'हरि' एक नाम है और गुणवाचक है ।

प्रश्न : (मुंबई के एक सद्‌गत समाजसुधारक) मोटा, आपकी तबियत अब कैसी रहती है ?

उत्तर : चला करती है, *प्रोस्टेट ग्लेन्ड* की तकलीफ बढ़ गयी है ।

प्रश्न : तो ओपरेशन करवाना चाहिए ।

उत्तर : आपका कहना सच है, पर यह रोग कितने तक सह सकता हूँ, उसकी मैं परीक्षा करना चाहता हूँ । इसमें हमारे खमीर और खुमारी की परीक्षा होती है ।

(तब उपस्थित रहे के एक दूसरे भक्त ने पूज्य श्रीमोटा

को कहा, 'चेतना में निष्ठा पाये हुओं का कर्म और प्रारब्ध जलकर भस्म हो जाते हैं, तब ऐसे रोग उन्हें होते हैं, यह 'विकेरीअस सफरिंग' होते हैं। यानी कि दूसरों के बदले भोगते है। परन्तु उस सद्गृहस्थ ने सस्मित नकार में सिर हिलाया। ऐसा मानने का अस्वीकार किया। अहमदाबाद में भी दूसरे एक प्रसिद्ध सद्गत समाजसुधारक ने पूज्य श्रीमोटा को सीधा सीधा सुनाया था कि 'जन्तरमन्तर से रोग नहीं मिटता!' पूज्य श्रीमोटा ने तब 'हाँजी, हाँ' कहकर बात पर परदा डाल दिया था।)

प्रश्न : मोटा, आपको किसी स्वजन का रोग लागू हो जाय तो आप अपने शरीर से बिदाई नहीं दे सकते ?

उत्तर : भाई ! जिस हेतु से यह रोग आया, वह हेतु जब तक पूरा न हो, तब तक वह जाय किस तरह ?

प्रश्न : इसका अर्थ यह कि जहाँ तक स्वजन पूरीतरह अच्छा न हो जाय, वहाँ तक यह रोग आपके शरीर में रहेगा। बल्कि स्वजन को अच्छा हो जाय, तब भी आपके शरीर की शक्ति अनुसार उस रोग की असर आपको होगी। और कोई रोग लंबे समय तक आपके शरीर में रहे, कोई रोग तुरन्त दूर हो जाय, कोई रोग थोड़े समय बाद चला जाय, कोई रोग प्राणलेवा भी हो, सही है न मोटा ?★

★ *स्पोन्डिलाइटिस* – रीढ़ की हड्डी खिसक जाने का रोग उनके एक अत्यंत प्यारे स्वजन की पत्नी का रोग उनके शरीर को लग गया; जिस रोगने उनके पैर की शक्ति को ले लिया और खड़ा रहना अशक्य बना दिया था।

उत्तर : ठीक है ।

प्रश्न : मृत्यु का डर निकालने के लिए क्या करना चाहिए ? मृत्यु का भय क्यों लगता होगा ?

उत्तर : मृत्यु अर्थात् क्या यह पहले समझ लेना चाहिए । अभी जो जो पल बीत रहे हैं और भूतकाल की अनंत छाया में जो जा रहे हैं, वही मृत्यु पाता है । हमारे आगेपीछे का सभी परिवर्तनशील है । यह क्षण क्षण होते परिवर्तन को हम मृत्यु कहते हैं । अनजाने में कूदते हुए मनुष्य स्वभाव अनुसार डरता है । जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् जीवन का क्या होता है, यह उसे समझ नहीं आता, तब मनुष्य को मृत्यु से डर लगता है । पर जहाँ मृत्यु है, वहाँ नूतन जीवन भी है – इस सच्चाई को हम समझ लें तो मृत्यु का भय नहीं लगना चाहिए । बाकी, मृत्यु पश्चात् शोक करने के पीछे तो कोरी आसक्ति ही है और अनजानी किन्तु गहरी स्वार्थवृत्ति भी होती है ।

प्रश्न : मोटा, आपके सभी आश्रमों के वृक्ष, बगीचे सुंदर हैं, आपको उसके लिए प्रेम का कारण, खास कोई हो तो समझाएँगे ?

उत्तर : बात सत्य है । जहाँ जहाँ मैं रहा हूँ । साबरमती आश्रम में १९३८ में एक पीपल उगाया ओर पाला, वह पीपल अभी भी रास्ते पर खड़ा है । साधनाकाल में मैं घनी, एकांत जंगलवाली जगह पसंद करता और वहाँ बैठ जाता । कुदरत के साथ प्रेमभक्ति भरा सान्निध्य होने से हम में निर्मलता, निर्दोषता और एक ऐसे प्रकार की दृष्टि आती है, जो अन्य किसी से नहीं आ सकती । कुदरत के साथ की तादात्म्यता, उसके साथ का

प्रेमभरा सहकार, सान्निध्य और उसमें सतत रहने से हमारे जीवन में जो विकास होता है, अनुभवी को ही उसकी समझ आ पाती है । कबीरवट का जीर्णोद्धार करने के लिए हम (आश्रम) ने पच्चीस सौ रुपए की रकम भरुच जिल्ला पंचायत को दी है । इससे, कबीरवट का स्थान पर्यटन के लिए अधिक आकर्षक होगा ।

प्रश्न : दूसरे संत भक्तों के रचे भजन और प्रार्थना हम अपनाकर गायें, तो हमें फलदायी हो सकते हैं ?

उत्तर : उन भक्तों के भजन आदि गाते-गाते हम में ऐसे उत्कट भाव जागे तो वह हमारे काम के हैं । बहुत बार ऐसी प्रार्थना ऐसा भाव पैदा नहीं कर पाती, क्योंकि ऐसी उनकी प्रार्थना हम बोलते हैं, उस पल में उन प्रार्थनाओं या भजनों की रचना करनेवालों में उनकी उस रचना के समय की अंतर्दशा हम में नहीं जागी होती । इसलिए सचमुच तो हमे हमारी अपनी जैसी स्थिति हो और उस स्थिति को सुधारने के लिए हमें जैसा योग्य सूझे, वैसे हमारी अपनी अंतर्दशा के योग्य प्रार्थना करें, हमारी भाषा और भाव में भगवान को भजें, प्रार्थना करें, निवेदन करें यह उत्तम है ।

प्रश्न : प्रार्थना और ध्यान का कितना संबंध होगा ?

उत्तर : प्रार्थना में उत्कटता से उत्तम प्रगट हुआ भाव यह एक प्रकार का ध्यान है । वह भावात्मक ध्यान है । इसमें शब्द हों भी सही और न भी हो । प्रारंभ में शब्द की आवश्यकता है; पर भाव प्रगट होते भावावस्था में शब्द का लय हो जाता है ।

प्रश्न : प्रार्थना कब फलदायी होती है ?

उत्तर : जो माँगना हो, वह सतत लगातार प्रार्थनाभाव से माँगे । उसमें अखंडता होनी चाहिए । उसका ही मनन और उसका ही रटन । इसके साथ प्रार्थना के भाव के अनुकूल आचरण प्रतिदिन के वर्तन व्यवहार में प्रगट हुआ होना चाहिए । दूसरे काम कर रहे हों, तब भी प्रार्थना अन्तर में जारी रहनी चाहिए । इसतरह भावभरी प्रार्थना के सातत्य के कारण, वह फलित हो या न हो, परन्तु श्रीभगवान के साथ हमारे अन्तर का संबंध बंधता है ।

प्रश्न : मोटा, दान के बारे में, उसके महत्त्व के बारे में कुछ कहो न ?

उत्तर : दान देखादेखी से हो, दो आँखो की शरम से हो, अहम् प्रेरित हो, बड़बड़ाते लाचार होकर हो, यह दान नहीं है; **समर्पण की भावना से, आत्मविकास की भावना से, नम्रतापूर्वक खड़े होकर, दो हाथों से भगवान का नाम लेकर दान दो तो वही सच्चा दान है ।** दान लेनेवाला बैठेबैठे स्वीकार करे, देनेवाला खड़े होकर नम्रता से भावपूर्वक दे । गुण और भावना विकसित हो ऐसे दान करो, तभी सही है, क्योंकि मृत्यु पश्चात् वही साथ में जाएगा । सत्कर्म करते हुए मैं फना हो जाऊँ, आश्रम को लूटा दूँ । दान करते समय जिसे दान करते हो, उसके प्रति हृदय से भक्ति प्रगट हो और हम में उदारता, विशालता आदि भाव प्रगट हो तो वैसा दान जीवनविकास को फलित करे सही । नहीं तो जगत की तरह किया दान कितनी बार अहंता को पुष्ट करता है ।

प्रश्न : बहुत ऐसा कहते हैं, *'बुढ़ापे में गोविंद को भजेंगे ।'* यह संभव है ?

उत्तर : बुढ़ापे में अधिकतर कोई गोविंद के गुण नहीं गा पाता । जीवन की साधना इतनी आसान नहीं । साधना में आवश्यक साहस, हिंमत, पुरुषार्थ का बल, उत्साह, सावधानी, धीरज आदि गुण यौवन में ही अधिक विकसित होते हैं । उस समय साधना में यदि गहरे पैठें तो उत्तरोत्तर विकास हुआ करेगा । तब ऐसा मनुष्य बुढ़ापा आने पर भी बूढ़ा नहीं होगा । **यौवन यह ताजा फूल है । श्रीभगवान के चरणों में ताजा फूल चढ़ाना होता है ।**

प्रश्न : कितने साधु महात्मा स्त्रीस्पर्श से छुआछुत मानते है, यह ठीक है ?

उत्तर : स्त्रीस्पर्श का संकोच होना यह भी योग्य नहीं है, उसी प्रकार उसका विस्तार होना वह भी योग्य नहीं है । सभी प्रकार की भड़क और चौंक में से मुक्त होना है । शरीर की भड़क हमें तोड़नी है, शरीर तो साधना के लिए है ।

प्रश्न : एक महाराज स्त्री का मुँह नहीं देखते थे, पर बाद में विवाह कर लिया ।

उत्तर : कोई बात नहीं, फिर से जागेंगे । जीवदशा की गति में चढ़-उतर होते ही रहेगी ।

प्रश्न : अधिकतर अपना जन्मदिन बहुत महत्त्व देकर मनाया करते हैं, इस विषय में आप क्या कहेंगे ?

उत्तर : ऐसे उत्सव का कोई अर्थ नहीं है । हम लोगों में हमारे शरीर का माहात्म्य और रहस्य समझने के लिए ही जन्मदिन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । जन्मदिन के दिन अधिक अंतर्मुख होकर सोचना है ।

प्रश्न : मोटा, 'मौन-एकांत का उद्देश्य क्या है ?' ऐसा अनेक पूछते हैं तो हम संक्षिप्त में कैसे समझाएँगे ?

उत्तर : उसका उद्देश्य लगनी लगाने का है, ऐसा कह सकते है । इसका उद्देश्य है साधना में अधिक एकाग्रता और केन्द्रितता प्राप्त करना साथ ही कोमल, उच्च भावनाओं को प्रगट करने का उद्देश्य है ।

प्रश्न : मोटा, जल्दी से पुनर्जन्म किसका होगा ?

उत्तर : जितने प्रमाण में उत्कट प्रकार की भावना अधिक सात्त्विक होगी, उतनी ही मात्रा में उसका जन्म शीघ्र होगा और आध्यात्मिक मार्ग की जिसे लगनी लगी हो, ऐसे जीव का जन्म दूसरे प्रकार के जीवों से बहुत शीघ्र होता है ।

प्रश्न : अपने सद्गुरु को कोई छोड़ दे तो सद्गुरु भी उसे छोड़ देंगे ?

उत्तर : नहीं, भूत लगा हो तो उसे कोई निकाल सकता है, पर यदि कोई चेतना में प्रगट हुआ हो ऐसी आत्माओं को कोई सचमुच लगा रहे और प्रकृतिवशात् ऐसी आत्मा से दूर रहता हो, तब भी वह आत्मा (सद्गुरु) उसे नहीं छोड़ सकता ।

प्रश्न : ईश्वर के प्रति, भक्तिभाव किसी भी तरह पैदा न हो, तो उसके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : कामक्रोधादि संपूर्णरूप से जाएँगे तब ईश्वर के प्रति भाव और भक्ति जगेगी । कामक्रोधादि को निकालने के लिए ब्रह्मचर्यपालन आवश्यक है, पर यह सब एकदम नहीं हो जाता । तब तक क्या करे ? सत्संग करे, सद्वांचन करे, सत्कर्म करे, परमार्थ करे, सत्पुरुष का संग करे । हमे शांति और आनंद जिसके पास बैठ़ने से मिलते हों, ऐसे सत्पुरुषों का संग करे । साधना न हो सके तो ऐसे पुरुष की मैत्री तो करे, अर्जुन की तरह । उनकी सेवा करे, उनके बताये मार्ग पर चले । ऐसे सत्पुरुषों की की हुई सेवा निष्फल नहीं जाती । इसके कारण जिज्ञासा जागेगी, भाव जागेंगे, भक्ति जागेगी, नामस्मरण करने का मन होगा । सतत, नियमित, भावपूर्वक नामस्मरण करने से भगवान के बारे में भाव जगेगा, पड़ते-गिरते, ऐसा करते करते, आगे बढ़ता जाएगा —— प्रभुकृपा से——यह निश्चित जानें ।

प्रश्न : अखंड स्मरण करना अर्थात् ?

उत्तर : अर्थात् बिलकुल खंडित हुए बिना - एक पल के लिए भी खंडित हुए बिना; जिसमें बिलकुल भी अवरोध न हो । एक मिनिट का भी नहीं ।

प्रश्न : युवाशक्ति का आज उल्टी दिशा में ह्रास हो रहा है, उसके सामने क्या हो सकता है ?

उत्तर : इसकी जवाबदारी सर्वप्रथम मातापिता की है । फिर बाहर के वातावरण की । युवाशक्ति को योग्य दिशा में मोड़ने के लिए चिंतन करते हुए मुझे उनके लिए गुण - भावप्रेरक विकासक योजनाएँ जाहिर करने का प्रभुकृपा से सूझा और तब से यह प्रवृत्ति उठायी है । इसके सिवा कोई छुटकारा नहीं ।

प्रश्न : (बहन का) आज स्त्रियाँ किस तरह धर्मपालन करके समाज और कुटुंब को उपयोगी होकर जीवन की कठिनाईयों को हल्की कर सकती है ?

उत्तर : यह बहुत व्यावहारिक प्रश्न है, महत्त्वपूर्ण भी है, अभी हम सभी स्वार्थी बनकर जीते है । एक दूसरे के साथ जुड़े है, यह हम भूल गये हैं । यह उच्च भावना जागे तो सभी को उपयोगी हो सकेंगे । त्याग की भावना विकसित होनी चाहिए । आशा अपेक्षा के बिना एक दूसरे को चाहना चाहिए, एक दूसरे के लिए योगदान देना चाहिए । यह बहुत आवश्यक है । स्त्री का जीवन एक यज्ञ है । उसकी कोई कदर नहीं करता । स्त्री की शक्ति और उसका भोग, उसे सताना, उसे परेशान करना, यह सब देखकर कोई सोचता नहीं है । स्त्री के प्रति हमारी भावना में बदलाव आना चाहिए । स्त्री तो जगतजननी है । उसकी जितनी उच्च भूमिका होगी और उसका जितना सम्मान होगा उतना अधिक ऊपर समाज आएगा ।

प्रश्न : अभी अभी 'चमत्कार' की बातें बहुत सुनने में आती हैं । बालक के पैरों में से कंकु झरता है, किसी बहन के हाथ में से कंकु आता है और दूसरा अनेक ! आप ऐसे चमत्कारों के बारे में क्या मानते हैं ?

उत्तर : इन चमत्कार की बातों को हमें बहुत महत्त्व नहीं देना है । पर मुझे पूछो तो कहूँगा कि चमत्कार संभव है । किसी निष्ठाभरे आत्मा की चेतना को साधन बनाकर वे गूढ़ शक्तियाँ चमत्कार बारबार बतलाती है, पर कोई ज्ञानी या अनुभवी के

जीवन में ऐसे चमत्कार बारबार नहीं होते; नित्य के व्यवहार में तो नहीं ही होते । कुछ भी हो, पर हमें चमत्कार की बातों पर ध्यान नहीं देना है । इससे हमें कोई लाभ नहीं होगा । हमारा कर्तव्य तो समाज से रागद्वेष, काम, क्रोध, भय, अहंकार आदि कम हो वैसा करना है ।

प्रश्न : समाज का ऊर्ध्वीकरण साधने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : प्रत्येक व्यक्ति में, विशेष रूप से माताओं में गुण और भावना विकसित हो यह देखना चाहिए । भगवान इस समाज में खो गये हैं । सामाजिक प्रवृत्ति द्वारा उसे खोजना होगा । कथावार्ता कार्यक्रमों में हजारों मनुष्य जाते है, पर उसके इच्छित परिणाम नहीं आ रहा है ।

प्रश्न : 'एक क्षण में सब पलट जाता है,' ऐसा जो कहा जाता है, उसमें कितना तथ्य होगा ?

उत्तर : ऐसा कहने में सामान्य रूप से अतिशयोक्ति होती है । स्वभाव का या किसी का भी रूपान्तर पूर्णरूप से एकदम से नहीं हो पाता । भाग्य से ही कोई विरल अपवाद हो ।

प्रश्न : जीवन प्रतिक्षण बदलता रहता है, इसे किस तरह से समझाएँगे ?

उत्तर : नदी के प्रवाह की तरह जीवन प्रतिक्षण परिवर्तित होता जाता है और तब भी वे परिवर्तन पुराने के आधार पर ही होते है । इससे इन्द्रियों के साम्राज्य के नीचे मनुष्य कर्म की गठरी, संस्कार की गठरी बांधकर जगत में आता है और अधिक

बड़ी गठरी बांधकर चला जाता है । इसप्रकार जीवन छिन्न भिन्न नहीं परंतु अविच्छिन्न रूप से एक है ।

प्रश्न : मोटा, आप हरिजन सेवा के दौरान जीवन विकासार्थ साधना करते थे तो आपने सत्याग्रह के संग्राम में भाग क्यों लिया था, वह बतलाएँगे ?

उत्तर : हाँ, यह ठीक पूछा । ऐसे संग्राम में भाग लेने के पीछे का उद्देश्य अभय, अहिंसा, धीरज, हिंमत, अनासक्ति, निष्ठा आदि कठोर मार पड़ते समय भी आंतरिक भावना किस तरह बनी रहती है – यह सब प्रयोगात्मक अनुभव पाने की मेरी इच्छा थी । जब लाठियाँ पड़तीं, तब उस जगह से एक इंच भी हिले बिना 'हरि:ॐ' के स्मरण के साथ प्रभुकृपा से अड़िग खड़ा रहता था ।

प्रश्न : मौन में नींद कम होती है । यद्यपि सुस्ती नहीं आती, यह क्या बतलाता है ?

उत्तर : यह अच्छी बात है, सत्कार योग्य है । एकाग्रता जितने प्रमाण में अधिक उतने प्रमाण में नींद कम होगी । यह उसका *लोजिक* है ।

प्रश्न : अनेक लोग 'श्री सत्यानारायण' की कथा करवाते है, इसे कोई लाभ होता है सही ?

उत्तर : ब्राह्मण के पास कथा कराने का कोई अर्थ नहीं है । इससे तो भगवान का स्मरण करें वही उत्तम । भगवान के सहस्त्रनाम का पाठ स्वयं करें, वह अधिक अच्छा । भगवान की ऐसी पूजा, पाठ और कथा हम स्वयं करें वही उत्तम ।

प्रश्न : माँ-बेटे के सतत झगड़ों में पुरुष क्या करे ? भाई-बहन लड़ा करते हों तो मातापिता क्या करें ?

उत्तर : माँ-बेटे के सतत झगड़ों में पुरुष को तो अलग ही रहना है । वे दोनों स्वयं ही अपनेआप समाधान कर लें वही योग्य है । मैं अनेक कुटुंबों में जहाँ उनके बेटे-बेटी बहुत लड़ते यानी भाई-बहन बहुत लड़ते होते हैं, तब उन्हें सलाह देता हूँ कि वैसे भाई-बहन के झगड़ों में माँ या पिता को कभी नहीं पड़ना चाहिए । भाई-बहन वैसे एकर स्वतंत्र संबंध है और वे स्वयं अपनेआप ही उसका हल करें तो वे एकदूसरे के अधिक नजदीक आ पाएँगे । हमें एक बार उन दोनों को कह देना है, 'अब से मैं तुम दोनों के झगड़ों मे पड़नेवाला नहीं हूँ । मेरे सामने तुम दोनों ऐसा करोगे तो मैं यहाँ उपस्थित नहीं रहूँगा, या तो बाहर चला जाऊँगा । इसलिए तुम दोनों आपस में समझ लो यह अधिक अच्छा ।' **यह मैं नानालाल डॉक्टर या रतिलाल मेहता को नहीं कह रहा हूँ, पर सभी को कहता हूँ ।**

प्रश्न : प्रभु के बदले सद्गुरु का स्मरण करें तो नहीं चलेगा ?

उत्तर : यदि सद्गुरु को प्रभु के प्रतिनिधि के रूप में हम ने माना हो और उनमें प्रभु का भाव दृढ़कर सकें हों तो प्रभु के बदले गुरु का स्मरण अवश्य चलेगा । इतना ही नहीं पर वह अधिक सुलभ और सरल भी है । प्रभु का स्थूल आविर्भाव रूप में गुरु को मन हृदय ने स्वीकार किया होना चाहिए ।

प्रश्न : परमतत्त्व में मिल गयी मुक्तात्मा फिर से जन्म ले सही ?

उत्तर : भगवान-चेतन साक्षात् स्वयं ही अवतार धारण करने की संभावना हो तो फिर मुक्तात्मा को ऐसी संभावना होगी सही । परमतत्त्व में मिल जाने पर भी भक्ति द्वारा भगवान के अवतरित को हम वास्तविकता में जन्म लिवाते है । उसी तरह मुक्तात्मा को उसके भक्त प्रेमभक्ति से चाहते होते हैं । इसलिए वे दुबारा आते हैं । **भाव के अनुसार मुक्तात्मा का शरीर न भी हो, तब भी वे भक्तों के लिए शरीरधारी बनते हैं ।** मीरांबाई के लिए श्रीकृष्ण प्रगट हुए थे, त्यागराजभागवधर को श्रीरामचन्द्रजी प्रगट हुए थे । उसी तरह मुक्तात्मा भी उनके भक्तों की आर्द्र और आर्त प्रार्थना के कारण देहधारण करते हैं, उसका योगक्षेम चलाते रहते हैं ।

प्रश्न : मोटा, विष्णु सहस्रनाम के पाठ के अंत में नीचे का एक श्लोक आता है -

वासनात् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तुते ॥

यहाँ पर 'वासना' का अर्थ क्या समझें ? वासुदेव भगवान की 'वासना' अर्थात् क्या ?

उत्तर : ऐसे श्लोकों में अक्षरशः शब्द का अर्थ लेना ठीक नहीं है । वासुदेव की 'वासना' अर्थात् भगवान का भगवत् तत्त्व सारी सृष्टि में समाया है, ऐसा अर्थ लें तो वह गलत नहीं है । यों तो सब कुछ भगवान के वस्त्र से अथवा तो आवास में सारा

विश्व बसा है और सकल भूतमात्र वे वासुदेव रूप ही है, ऐसा अर्थ ले सकते है । हमें किसी शब्द के लिए बहुत सिर नहीं खपाना है । जो भी है, सब सार रूप समझ लें । विष्णु सहस्त्रनाम का केवल पाठ करने से कुछ नहीं होगा । परन्तु भगवान की भावना से सकल कर्म विद्यमान रहे तो ही हम सभी भगवान की भक्ति में ओतप्रोत हो सकेंगे । इसका पाठ करने से हमारे कामक्रोधादि मंद पड़े, तो काम का है ।

प्रश्न : पति पत्नी के रूप में जुड़ते दो जीवों का संबंध आकस्मिक होता होगा ?

उत्तर : नहीं, इन दो जीवों का संबंध अनेक जन्मजन्मांतरों में किसी न किसी रूप में चलता ही रहता है । इसलिए एक समय विवाह से जुड़े दो जीवों का संबंध कभी छूटता नहीं है ।

प्रश्न : एक समय जो लोग पति और पत्नी के रूप में जुड़े हों, वह उसी संबंध में दूसरे जन्म में जुड़ेंगे ?

उत्तर : यह निश्चित नहीं कह सकते । इसका आधार वे किस भाव से सारा जीवन जीते है, उस पर रहता है । जो एक जन्म में पति हो, वह दूसरे जन्म में पति के रूप में जुड़ेगा ऐसा निश्चित नहीं, वह पत्नी के रूप में भी जुड़ सकता है । यदि दोनों जन एक जन्म में लंबे समय तक ब्रह्मचर्यपालन करके पवित्र जीवन जीये हों तो वे दूसरे जन्म में उनकी अंतिम इच्छा अनुसार संबंध से जुड़ेंगे, पर जुड़ेंगे तो सही ही । या तो भाईबहन के रूप में अथवा माँ-बेटे का संबंध या पतिपत्नी के संबंध में या गुरु-शिष्य के संबंध में भी (यदि उन्होंने साधु जीवन इस जन्म में जीया हो तो) जुड़ेंगे ।

प्रश्न : विवाह करना अर्थात् 'प्रभुता में कदम बढ़ाना', ऐसा कहा जाता है, तो उस विषय में दो शब्द कहेंगे ?

उत्तर : विवाहभावना केवल भोगविलास के लिए नहीं है । यह तो तपश्चर्या के लिए है । समाज का, देश का, पितृओं का, ऋषिओं का और देव का ऋण को अदा करने के लिए यह भव्य दिव्य साधन है । शुद्ध सात्त्विक भावना लाकर आत्मा के स्वरूप में एकदूसरे को पहचानकर यदि जगत के चरण में एकाद बुद्ध भगवान, एकाद ईशु भगवान, एकाद शंकराचार्य, एकाद श्रीअरविंद या एकाद महात्मा गाँधी की भेट रखेंगे तो जगत की बड़ी से बड़ी सेवा कर सकेंगे । विवाह ऐसी प्रजोत्पत्ति के लिए है । सर्वश्रेष्ठ दान का भाव तो विवाह की भावना से ही विकसित होता जाता है । इससे, स्वयं के साथ जुड़े जीव की जो अवगणना करता है, वह समाज की भी अवगणना करता होता है । ऐसे जीवों के लाखों के दान वृथा हैं ।

प्रश्न : पतिपत्नी के संबंध में अनेक जगह पत्नी का चलन अधिक देखने को मिलता है तो कितने कुटुंबो में पति के आगे पत्नी गरीब गाय की तरह व्यवहार करती होती है, इस विषय में आप का क्या कहना है ?

उत्तर : भले ही पुरुष स्त्री पर रोब मारता हो, पर जानेअनजाने पुरुष को स्त्री ही रास्ता दिखलाती है, पर उसका जीवंत भान पुरुष जीव को नहीं होता । किसी भी पुरुष का जीवंत द्रष्टांत नजर के सामने लाके देखो । या तो वह माँ के बतलाये

मार्ग पर चलता होगा, यो तो बहन के बतलाये या तो पत्नी के या किसी उपपत्नी या किसी अन्य स्त्री जीव के बतलाये रास्ते पर चलता है। पुरुष जीव के जीवन में स्त्रीजीव महत्त्व का भाग निभाता है और उसमें पुरुष और स्त्री ऐसे दो जीवों के संबंध से ही समग्र जीवन का निर्माण होता है। उसी तरह ही प्रत्येक स्त्री जीव के जीवन में भी किसी न किसी पुरुष जीव की प्रतिभा या छाया काम करती होती है।

प्रश्न : हमारे संबंध तो ऋणानुबंध के कारण हैं, यह सह है न ?

उत्तर : निश्चित।

प्रश्न : यह संबंध कभी टूटे नहीं ? उन पर पूर्णविराम किस तरह लगाया जा सकता है ?

उत्तर : नहीं टूटे। जब कोई जीव जीवनविकास करते करते सबसे मुक्त हो जाय और चेतना में निष्ठा पा जाये, तब वैसे जीव का संसारी संबंधो पर पूर्णविराम आ सकता है, बाकी नहीं।

प्रश्न : तो ऐसे बंधन से कैसे छुट सकते है, यह कृपा करके कहेंगे ?

उत्तर : प्रत्येक जीव का संबंध कर्म के कारण होता है और कर्म को यदि हम बंधनरूप से नये न होने दें तो उन्हें सर्व संबंध में हमें भगवान की भावना का अथवा तो हमारे आध्यात्मिक जीवनविकास की भावना का जीवंत ख्याल; हेतु रखेंगे तो उन जीवों का संबंध कर्म बंधनरूप हमें नहीं होगा।

प्रश्न : यह सब करना बहुत कठिन लगता है ?

उत्तर : हाँ, कठिन तो है, पर एक बार स्वभाव को जीत लेने की सीमा तक आ जाने के बाद यह सब कुछ कठिन नहीं है ।

प्रश्न : मोटा, गुरुपूर्णिमा मनाने की शुरुआत कब से हुई और किस हेतु से हुई होगी ?

उत्तर : वेदकाल में गुरु की प्रथा न थी । तब ऋषि थे, गुरुकुल थे । शिष्य पढ़ने के लिए वहाँ जाते, पर भावना का जैसे जैसे पतन होता गया वैसे वैसे भावना का *'मिड़ियम'*- वाहन सूक्ष्म में से भी स्थूल होता गया । भावना को कोमल रखने के लिए मूर्तिपूजा स्थापित होती गई । उन लोगों ने जीवन का स्वीकार किया था । उसके बाद संसार मिथ्या होने का विचार आया । शंकराचार्य ने भी वैसा कहा, पर उनका कहना सभी *रिलेटीव*-सापेक्ष है ।

प्रश्न : शंकर भगवान के मंदिर में सुंदर नंदी और उसके आगे कछुआ होता है, वह क्यों होता होगा ?

उत्तर : वर्षाऋतु में चरा हुआ, मत्त साँड हो, पर जैसे ही उसका मुँह महादेव की ओर फिर जाता है, उसकी इन्द्रियाँ कछुए की तरह संकुचित हो जाती हैं, अंतर्मुख हो जाती हैं और विकास होता जाता है - वैसे हम मत्त साँड जैसी जीवदशा में रहते हुए ईश्वर के प्रति मुँह फेर दें तो कछुए की तरह इन्द्रियाँ संकुचन कर सकती है और जीवनविकास कर सकते हैं । इसप्रकार महादेव के नंदी और कछुआ इसी के प्रतीक हैं ।

प्रश्न : श्री सांईबाबा ने आपको कोई स्थूल चीजवस्तु खुश होकर दी थी सही ?

उत्तर : हाँ, सूखे हरे मेवे की कंडी दी थी । यह बात 'जीवनदर्शन' में आ जाती है । उन्होंने मुझे एक रुपया भी दिया था । वह मैंने अपनी माँ को दिया था, पर उन्होंने वह खो दिया था । किस्मत खोटी ।

प्रश्न : आपके मन में कभी कमाने का ख्याल आया था सही ?

उत्तर : प्रारंभ में पेरिस जाने की दरखास्त मिली थी, पर देशसेवा का व्रत लिया था, इसलिए नहीं गया । अफ्रीका जाने का भी तैयार था, वह भी जाने दिया ।

प्रश्न : मृत्यु पश्चात् गतात्मा का कैसा जीवन होता है, वह कृपाकर समझाएँगे ।

उत्तर : फिर उस मनुष्य का जीव जहाँ उसे आसक्ति हो उस जगह, उस वातावरण में तेरह दिन तक चिपके रहता है । सूक्ष्म शरीरधारी होने से वह सुनता है, देखता भी है । परन्तु वह बोल नहीं सकता या अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि उसके सूक्ष्म शरीर में जल और पृथ्वी तत्त्व का अभाव है । इन तेरह दिनों के दौरान हमें जीव के लिए रोना नहीं चाहिए, गुस्सा न करें, प्रार्थना किया करें । सतत नामस्मरण करें, उसके हितार्थ सत्कर्म करे । उसे पसंद कार्य करें तो उसे शांति मिलेगी ।

प्रश्न : फिर उसे पुनर्जन्म लेते कितना समय लगता है ?

उत्तर : उसे दोबारा जन्म लेते बहुत समय चला जाता

है । सामान्य संसारी जीव (मुक्तों, भक्तों या साधु संतो की बात अलग है ।) समीकरण समय (period of assimilation) के दौरान अपने अनेक जन्मों के वातावरण को जुगाली करता रहता है । इनमें से वह आप ही आप दूसरे जीवन का अनुभव लेने का निश्चित करता है । जैसे संस्कार, जैसे रागमोहादि भाव, जैसे उच्च सात्त्विक प्रकार के भाव हों, जैसे कि कोई साधक हो । ऐसे अनेक प्रकार के भावोंवाला जीव अलग-अलग काल में जन्म लेता है । जिस प्रकार के जीवन का अनुभव लेने का निर्णय स्वतः निश्चित हो जाय, उस प्रकार का अनुभव लेने के लिए वह जन्म लेता है । वह कभी धनवान, कभी गरीब, कभी किसान, कभी मजदूर ऐसे अनेक प्रकार के अनुभव लेने का जीव किया करता है । उन अनुभवों को लेने के लिए जो जो ऐसे निमित्त प्रकार के जीवों का संयोग वहाँ होना चाहिए, ऐसे संयोग जहाँ सानुकूल हो सकें, ऐसे काल के दौरान संभावना हो वैसे काल में ही वह जीव वैसे संयोगो में निश्चित हुए अनुभव को लेने को जन्म लेता है । तब उसके साथ उस जुगाली के समय दौरान निश्चित हुए ऐसे अनुभव लेने को जो जो दूसरे जीवों की आवश्यकता होती है, वह जीव भी उस दौरान में जन्म लेते हैं ।

प्रश्न : अवतारी और अनुभवी *(रीअलाइजड)* पुरुषों के पुनर्जन्म के बारे में कुछ कहें न प्रभु ?

उत्तर : अवतारी पुरुष को कोई ऐसा जन्म लेने की इच्छा नहीं होती । अनुभवी पुरुष को भी इच्छा नहीं होती और इच्छा हो तो वह अज्ञान की दशा कहलाएगी । उनकी दिव्य चेतना मूल

चेतना में जुड़ी होने पर भी, एकरार होने पर भी, अनोखी है, अलग है । इसलिए कि जब वह अपने जीवन में था, तब उनके साथ कितने ही जुड़े जीव उन्हें प्रेमभक्तिभाव से पुकारते हैं, यद्यपि ऐसे बहुत थोड़े ही व्यक्ति होते हैं । तब भी भक्तों के खातिर वह अवतारी और अनुभवी पुरुष पुनर्जन्म लेने को तैयार होता है । ऐसे भी श्रीरामकृष्ण परमहंस की दिव्य चेतना हमारे भारत में अभी भी विद्यमान है★ । इस तरह दूसरे अनुभवी, चेतननिष्ठ संतात्माओं के बारे में समझ लें ।

प्रश्न : नामस्मरण से रोग मिटता है यह किस तरह से, समझाएँगे ?

उत्तर : नाम का स्फोट हो, आवाज हो, तब ज्ञानतंतुओं के अनेक केन्द्रों को वह स्पर्श करता है । बारबार ऐसा स्पर्श होने से ज्ञानतंतु (tone up) प्राणवान होते हैं, मजबूत होते हैं । इसतरह मुझे मिरगी रोग को सहन करने की शक्ति मिली नामस्मरण से । इसलिए 'शब्द' यह खाली शब्द नहीं, उसे हमारी संस्कृति में 'ब्रह्म' कहा है । अब शब्द जब अखंड होता है – सतत दीर्घकाल पर्यन्त नामस्मरण करते करते–तब हमारी भूमिका में आकाशतत्त्व *'प्रिडोमिनन्ट'* अग्र रहता है । (आकाशतत्त्व का संबंध सत्त्वगुण के साथ है ।) तब रजस और तमस गौण बन जाते हैं । कामक्रोधादि विषय यह रजस और तमस गुण के हैं । इसलिए जब सत्त्वगुण अग्र होता है, तब हम में कामक्रोधादि

★ श्रीरामकृष्ण ने कहा था कि मेरे भक्तों को दिया जा सके उतना ज्ञान नहीं दिया गया, इससे मुझे दुबारा आना पड़ेगा ।

की असर न हो और रोग मिट जाय । यद्यपि इस *स्टेज* तक पहुँचना सरल बात नहीं है, बहुत कम इसे कर सकते हैं । इसतरह 'शब्द' का 'नामस्मरण' का कितना सारा महत्त्व है वह तुम्हें समझ आएगा । कोई तुम्हें गाली दे, प्यार के बोल बोले तो तुम्हें कैसी असर होती है ?

'बहुत ही ।'

यह है 'शब्द' की असर । राजनीतिज्ञों की भाषा का जादू देखो । वे लोग कितने सहृदयी और प्रामाणिक होते हैं ! होते हैं न ? !

(हास्य...)

फिर भी उनके पीछे सभी खिंचते हैं । यदि भाषा का ऐसा जादू है तो भगवान के नाम का, शब्द का, भगवान के भाव में रंगे हुए मनुष्य की वाणी का प्रभाव तो निराला ही होता है । इससे, नामस्मरण के जादू से रोग किस तरह मिट जाते है और कामक्रोधादि किस तरह कम होते जाते है, वह तुम्हें समझाया । यह भी 'शब्द' का एक विज्ञान है ।

प्रश्न : आपने संन्यास क्यों नहीं लिया था ?

उत्तर : संन्यास तो वृत्तिओं का होता है । मात्र भगवा वस्त्र पहनने से संन्यास नहीं आता । पहले से जीवन और कर्म का स्वीकार किया था ?

प्रश्न : पुत्रादि के लिए पहले के समय में यज्ञ करवाते थे । तो क्या ऐसे यज्ञ इष्ट फल दे सकते हैं सही ?

उत्तर : मूल तो यज्ञ करनेवाला और करानेवाला – याजक

और यजमान की भावना पर, याजक की (यज्ञ करनेवाले की) पवित्रता पर, संकल्प बल पर सब आधारित है । ऐसे संकल्पबल से इष्ट प्राप्ति संभव है । परन्तु वर्तमान में जो यज्ञ ब्राह्मण करते हैं, उसमें याजक की ऐसी संकल्पशक्ति नहीं होती कि इष्ट प्राप्ति हो । *'साप गया पर निशान रह गया,'* अभी की स्थिति ऐसी है । यज्ञ का अर्थ भी काल के साथ बदलता रहता है । प्रत्येक काल का लक्षण और उसका महत्त्व अलग अलग होता है । यज्ञ के स्थूल, सूक्ष्म और कारण और अलग अलग उत्तरोत्तर अर्थ होते हैं । यह भी गहरा शास्त्र है । जाने दो ना यार, यह सब । हमें तो कुछ भी चाहिए तो भगवान के पास गोहार लगायें, निवेदन करें, प्रार्थना करें । आर्द्र और् आर्तभाव से, चित्तशुद्धि करने का प्रयत्न नियमित नामस्मरण द्वारा करें ।

प्रश्न : साधना के मार्ग में पड़ा व्यक्ति जीवदशा के सरोकार में से छूट न जाय तो वह ठीक है ?

उत्तर : नहीं, थोड़ा भी नहीं । जिसने जीवनविकास करने का निश्चित किया है, उसे मोह, माया, भोगविलास आदि कामनाओं से छूटना ही रहा । या तो उसे कोई-सा एक मार्ग स्वीकार करना चाहिए । आधा इस मार्ग में और आधा जीवदशा की स्थिति में जारी रहे तो उसकी शक्ति बिखर जाएगी और रोग का भोग होना संभव है । वह कहीं का भी घर का या घाट का रहेगा नहीं ।

प्रश्न : *'निर्बल के बल राम'* का अर्थ समझाएँगे ?

उत्तर : जीव से हो उतना सारा पुरुषार्थ कर करके उसमें

अंत तक लगे रहें और तब भी कुछ सफलता न मिले, तब वे प्रभु को मदद के लिए पुकारें । अंत में तो मेहनत कर करके उनमें गलकर मर जाना है । ऐसा बनकर उसके सच्चे अर्थ में 'निर्बल' बनना है । हाथ जोड़कर बैठा रहे, उसके लिए यह लागु नहीं होता । अंत तक पुरुषार्थ करके *'हारे को हरिनाम'* ऐसी स्थिति प्राप्त हो, तब *'निर्बल के बल राम'* ऐसा सच्चे भाव से हम पुकार सकते हैं ।

प्रश्न : हमारे दोषों के प्रति कैसा अभिगम रखना चाहिए, वह कहेंगे ?

उत्तर : दोषों पर बहुत विचार न करें । इसका अर्थ यह नहीं कि दोषों के प्रति दुर्लक्ष रखें । दोषों को टालने का ही मात्र पुरुषार्थ करने का कर्म तो कोरा कोरा कर्म है । इससे तो प्रभुभाव से आर्द्र हृदय रखकर पुरुषार्थ होता रहे तो वह अधिक अच्छा; भगवान की भक्ति में मन भीगा रहे, यह अधिक उत्तम । एक बार सहृदय से पश्चाताप हो जाय और उसका पुनरावर्तन न हो, ऐसी जागृति रखनी खास जरूरी है । बारबार दोषों को याद करने से लाभ के बदले हानि होगी । हानि इसलिए कि बारबार दोषों को याद करने से उसके संस्कार अधिक चिपकेंगे, यह ध्यान में रखें ।

प्रश्न : मेरी इच्छा साहित्य जैसे विषय के प्रोफेसर होने की थी, पर उससे उल्टी ही दिशा में फेंका गया !

उत्तर : तुम्हें आनेवाले जन्म में जो होना हो, उस विषय में तुम सतत रत रहो, लगे रहो, उसके पीछे दिल लगाकर वही काम करते रहो तो वैसे तुम आनेवाले जन्म में जरूर बन सकोगे ।

प्रश्न : मैं अभी जो बना, *प्रोफेशनल प्रेक्टिसनर* वह नियम अनुसार होगा ?

उत्तर : संयोगो के कारण भी हो । दृढ़ मनोबल, संकल्प प्रारब्ध को भी फेर सकते हैं । प्रारब्ध पर बहुत झुकाव न दें । प्रारब्ध को बनाता है पुरुषार्थ । ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं ।

प्रश्न : विकार घटाने का रास्ता बतलाएँगे ?

उत्तर : मेहनत या श्रम द्वारा शरीर थककर चूर हो जाय, उसमें वैसा विकार अधिक फैलता होता नहीं । इसलिए खूब शरीर श्रम करो और विकारवाले पुस्तक, फिल्म, वातावरण आदि से दूर रहो । पहले शिक्षा में मेहनत का स्थान था; आज वह नहीं है । सौ में से ९५ प्रतिशत विद्यार्थिओं को हस्तदोष की बुरी आदत पड़ी होती है । उसे सुधारने के लिए नहीं किसी मातापिता को पड़ी है या शिक्षा संस्थान को पड़ी है । शारीरिक प्रवृत्तिरहित जीवन विषयविकार को अधिक फैलाता है ।

प्रश्न : आजकल दी जाती शिक्षा और विद्यार्थीओं के विषय में आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : आजकल शिक्षा में शरीर का ठाट-बाट और विलास बढ़े ऐसी जानेअनजाने पैरवी होती है । ऊँचे कहलाते लोगों का रहन-सहन कपड़े पहनने का ढंग, आचरण विषयविकार को पोषण मिले वैसा ही है । उच्च कहलाता वर्ग शरीरश्रम को धिक्कारता है । ऐसे समाज की असर मध्यम वर्ग पर पड़े बिना नहीं रहती । मातापिता भी उन्हें मार्गदर्शन नहीं देते । अधूरे में

पूरा, शिक्षा संस्थाओं में और विद्यार्थी मंडलों में राजनीति प्रवेशकर गयी है । इसलिए जहाँ तहाँ रागद्वेष और मारामारी दिखायी देती है । ये अच्छे चिह्न नहीं है । कोई इस गंभीरता से नहीं सोचता । कहीं भी संयम या अनुशासन की भावना जीवंत ही न हो ऐसा लगता है ।

प्रश्न : साधु-महात्मा, विद्वान, विचारक इस संबंध में कुछ कर सकते हैं ?

उत्तर : ऐसे लोग भी समाज को जगाने का नहीं कर सकते । समाज का ऋण ऐसे लोगों पर भी है और वह ऋण अदा करना उनका धर्म है ।

प्रश्न : बालकों की संभाल और लालनपोषन के बारे में आप कुछ कहेंगे ?

उत्तर : बालकों के खाने के बारे में खासकर माँ को ध्यान देने की आवश्यकता है । बालक को बचपन से ही यदि योग्य आहारविहार के नियमों का पालन करा सकें तो शरीर की सुखाकारी लंबे समय तक टिक सकती है । किसी का बलात्कार बालक पर न हो, उस तरह से युक्ति से रस्ता निकाल लेना चाहिए । बालक की स्वादेन्द्रिय का निर्माण आवश्यक है, इसलिए विविध व्यंजन बनाकर माँ बालक को खिलाये । पर पड़ा होने पर उसे अनेक प्रकार की आदत बंधनकारक न हो जाँय उसे भी देखना माँ का विशेष धर्म है । बालक बासी ठण्डा खाये, उसे न पसंद हो वह यद्वाकद्वा करे और युक्ति से खिलाये, तंगी-तंगीपन प्रेम से सह लेने की उसे आदत डलवाये । सब कुछ अमुक तरह ही उसे मिलना चाहिए, उस प्रथा को तिलांजलि देनी

चाहिए । ऐसी आदतों को डालने का काम माँ का है; पर ऐसी समझ यदि माँ में पैदा हुई होगी, तभी वैसी माँ उस अनुसार करवा सकेगी ।

प्रश्न : बालक जब जब खाना पीना माँगे तब देना ठीक है ?

उत्तर : नहीं, अनेक धनवान बालक या तो पेटू या तो अनेक बार खाते नजर आते हैं । उनकी माताओं को कब, कितना और कैसे खुराक देनी है, उसकी कोई समझ नहीं होती है । भोजन करते समय जो भी खाना हो खा लें और उसके सिवा कुछ नहीं । ऐसी आदत हो तो सच्ची भूख लगने पर जो खाते है, वह अन्न जैसा पचता है वैसा जोर से भूख लगे बिना के अन्य अन्न खाने पर अनाज पचता नहीं है और शरीर इससे बिगड़ता ही है ।

प्रश्न : मोटा, अनेक बड़े बड़े घरों में तीनचार बार खाने का रिवाज होता है !

उत्तर : चार बार खाना और इसके अलावा चलते फिरते खाये वह अलग ! धनवान कुटुंब में बालक को जोर से भूख लगे और खाना खाये उसी समय यथायोग्य रूप से खाते हो ऐसा देखा नहीं है । बालक के जीवन मे जोर से भूख लगने का जो *'सेन्स'* वृत्ति का विकास कराना चाहिए, वह वृत्ति उनमें बचपन से ही आनी चाहिए ।

प्रश्न : बड़े घरों में बड़ी उम्र के लडकों को घर का काम या चाय बनाना भी नहीं सिखाते यह ठीक है ?

उत्तर : ऐसा सिखाना *'स्टेटस'* बाहर का उनके लिए है,

पर यह प्रशंसापात्र नहीं है, सभी दिन सभी के समान नहीं जाते हैं । इसलिए गलत *'स्टेटस'* का ख्याल छोड़कर लड़कों को घर् का काम, चाय-पानी, रसोई आदि कामचलाउ भी करते आना चाहिए, यह मातापिता का कर्तव्य है, इस ओर अवश्य ध्यान दें ।

प्रश्न : पर मोटा, ये लड़के विदेश जाते हैं, तब होटल में बर्तन धोने का और लिफ्टमेन का काम करते होते हैं !

उत्तर : ऐसा काम खास हमारे मध्यमवर्ग के लड़के करते हैं । पूँजीपतियों के लड़कों को वैसी मजदूरी करके अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं होती, यह सत्य है ।

प्रश्न : यह सच है, परन्तु मोटा, ऐसा जानने को मिलता है कि पश्चिम के देशों में बड़े घरों के लड़के भी पढ़ते हैं, तब छुट्टियों के दौरान काम करने जाते हैं ।

उत्तर : ठीक है ! *'अर्निंग एन्ड लर्निंग'* का मुहावरा सभी को आवश्यक है । *'डिग्निटी ऑफ लेबर'* श्रम का गौरव, श्रम की प्रतिष्ठा गाँधी बापू ने आचरण कर बताया । आज उसे हम भूल गये हैं । बालक का जीवन ठोस हो, सहिष्णु हो, नरम दिल का न रहे, डरपोकपन उसका जाये, बहादुर बने, ऐसे प्रयोग करने तो किसी माँ को पसंद नहीं होता ।

प्रश्न : आजकल बालक को स्तनपान नहीं कराने का रिवाज शुरु हुआ है । खासकर श्रीमंत, पढ़े लिखे वर्ग में वह योग्य है ?

उत्तर : नहीं थोडा भी नहीं । हम लोग समझते नहीं है कि बालक को दूध पिलाने का कार्य भी यह यज्ञकर्म है । इससे

बालक को माता के संस्कार पड़ते हैं, पोषण मिलता है, ताकत मिलती है । बालक को स्तनपान कब, कैसे वातावरण में करवाना उसका माताओं को पता नहीं है । जहाँ आवाज न होती हो, शांति हो, माँ का मन भी शांत, धीरज हो, आनंद और उल्लास हो ऐसी स्थिति में बालक को दूध पिलाना योग्य है । मन में क्रोध हो, मन में गुस्सा हो, तब बालक को कभी दूध नहीं पिलाना चाहिए । दूध पिलाते समय माता को प्रभुस्मरण करना चाहिए, भजन गाये, प्रार्थनाभाव में रहे, पर आज *फैशन* में, देखादेखी में, शरीर के बारे में गलत भ्रम में यह सब भुला रहे हैं, यह दुर्भाग्य है ।

प्रश्न : मोटा, जिस जगह बड़े तीर्थ स्थान के रूप में प्रसिद्ध हैं और हजारो लोग वहाँ दर्शन के लिए इकठ्ठे होते हैं, वह किस शक्ति के कारण होगा ?

उत्तर : कुंभमेले में लाखों लोग इकठ्ठे होते हैं, यह देखकर नास्तिक जैसे पंडित जवाहरलाल नेहरु को भी प्रश्न उद्‌भव हुआ, 'कौनसी शक्ति से लाखों लोग खिंचकर यहाँ इकट्ठे होते हैं ?' **एक ही समय सारा समाज दिव्य चेतना में एक ही प्रकार की चेतना में सजाग रहे, एकाग्र रहे, इस लिए ऐसे उत्सवों को मनाना हमारे चेतननिष्ठ महात्माओं ने शुरु किया था ।** ऐसे महान आत्माओं की भावना, उनके चेतनापूर्ण आंदोलन तीर्थस्थलों पर काम कर रहे होते हैं । मुझे इसका अनुभव डाकोर में हुआ था । तिरुपति बालाजी में मैं और नारायण स्वामी (हिमालयवाले) गये थे, तब हम दोनों को अजीब-सा ध्यान लग

गया था । ईशु की चेतना, श्रीराम और श्रीकृष्ण की चेतना आज जीवंत है । महंमद पैगंबर साहब की स्वतंत्र चेतन भावना जीवंत है – हजारों वर्ष के लिए । इसप्रकार कोई अवतार की पाँच हजार वर्ष के लिए, किसी की दो हजार या एक हजार वर्ष के लिए तो किसी की दो सो या पाँच सौ वर्ष के लिए यह चेतना जीवंत रहती है और उसे लेकर उन उन स्थलों का तीर्थयात्रा के रूप में माहात्म्य होता है । मनुष्य उन उन स्थलों पर प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक अंतर्मुख होकर जाता हो तो उस स्थल की चेतना उसे स्पर्श किये बिना नहीं रहेगी ।

प्रश्न : काफी समय तक जप करने पर भी उसकी असर जीवन में क्यों नहीं प्रगट होती है ?

उत्तर : यदि रागद्वेषादि से हम मुक्त हो जाय तभी जपादि साधन की असर हो सकती है । और जीवदशावाली हमारी भूमिका होगी तो लंबे समय तक सतत एकसमान स्मरण नहीं हो सकेगा और टिक भी नहीं सकेगा । यदि ऐसा न हो तो फिर वह स्मरण अखंड तो हो ही कैसे ? इलिए कोई भी साधन करने से पहले चित्तशुद्धि होनी चाहिए ।

प्रश्न : हम जो कमाते है, वह हमारे बुद्धिबल के कारण और प्रारब्धवशात् नहीं कहलाएगा ? और वह न हो तो किसी को उसके सामने, खासकर जिनके पास नहीं है, उन्हें क्यों भाग माँगना चाहिए ?

उत्तर : कृपाकर हम सभी को एक बात साफ समझ लेनी है कि हम कमाई करते है, वह समाज के पास से । समाज को

भी उसका बदला मिलना ही चाहिए । जिसके पसीने से वह कमाई मालिक को होती है, उसमें पसीना बहानेवाले का भी हिस्सा है । अब समय ऐसा आया है कि हम मात्र पैसे ही इकट्ठा करके ऐशोआराम, वैभवविलास, भोगा करें वैसा लंबे समय तक नहीं चलेगा ।★ हमारी कमाई में बहुतों का भाग होता है, यह सत्य हम से, बुद्धि से कबूल न होता हो, तब भी उसमें समाज का तो भाग है ही । इसलिए त्याग त्याग कर (उत्साह से और समझ समझकर) जो भोगेंगे वही पच सकेगा । मेरी अपनी निजी, जिसे मैं अपनी कह सकूँ, ऐसी पचास से साठ हजार★★ की मेरी लिखी पुस्तकों के विक्रय की रकम, कुछ भी रखे बिना, समाज के सत्कर्म में प्रभुकृपा से खर्च हुई है । इसलिए तुम्हें मैं जो कह रहा हूँ, वह पोथी का कोरा ज्ञान नहीं है, आचरण करके, व्यवहार करके ही उस प्रकार वर्ताव करके ही तुम्हे कहता हूँ ।

प्रश्न : मोटा, दक्षिण भारत में अधिक से अधिक भाव है, ऐसा आप कहते हो, वह किस पर से, यह समझाएँगे ?

उत्तर : जहाँ कला है, सुंदर चित्र, नृत्य, गीत, संगीत जीवंत है, वहाँ अधिक भावना होनी चाहिए । दक्षिण भारत में अधिक

★ दि.२९-७-६७ के दिन पू. श्रीमोटाने यह बात कही थी ।

★★ १९६० में वह रकम मिली, जो १९६२ में गुजराती साहित्य परिषद को पहला दान दिया । देहत्याग पहले और उसके बाद इसके अतिरिक्त और लगभग १ लाख से सवा लाख के पुस्तक विक्रय हुए है जो रकम समाज के चरण में दे दी है ।

गरीबी है, तब भी वहाँ के अलौकिक मंदिर, शिल्प कला आदि अनुपम है । ऐसी कला बेगारी से या मजदूरी से खिल नहीं सकती, स्वतंत्र हृदय के भाव से ही पैदा हो सकती है । भावना के बिना संभव नहीं है । पैसों से ऐसा भाव नहीं आएगा । इस भाव के कारण तो हिन्दू धर्म के महान आचार्य दक्षिण भारत में पैदा हुए । भले अभी उसमें कमी आयी हो, पर हमारी संस्कृति का उद्धार दक्षिण भारत से होगा यह निःसंशय बात है ।

प्रश्न : चेतन और जगतजननी, इन दो के बीच कुछ अंतर है सही ?

उत्तर : कोई अंतर नहीं है । एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं । यह तत्त्व अनंत स्वरूप में अभेदरूप से बिलस रहा है । भेदभाव प्रकृति में रहा है । जैसी जैसी अभिरुचि और जिसके दिल का जैसा स्वाभाविक अभिगम हो, वैसे वह उसे भजे, वह उसके लिए योग्य भी है । किसी को जगतजननी की भक्ति योग्य लगे तो वैसा कर सकते है । परन्तु मूल तत्त्व तो वह एक ही है, दो अलग अलग नहीं है । किसी न किसी तरह परमात्मभाव की भावना टिकी रहे वैसा हमें करना है । प्रतिदिन के हमारे कार्यक्रम में श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ की भावना में निरंतरता प्रगट होती रहे, उसी तरह हमें प्रभुकृपा से व्यवहार करना है । शुद्ध चेतन जब प्रकृतिरूप से बिलसता है, तब वह जगतजननी का रूप लेता है ।

प्रश्न : हमें भावना प्रगट करने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : भावना को प्रगट करने के लिए साधन के अभ्यास की जरूरत है और वैसे अभ्यास के साथ मनादिकरण में से रागद्वेष कम होते हैं, वह भी साथ ही साथ जरूरत की मात्रा में अधिक ही है । जिसे आगे, ऊपर चढ़ना है, उसे उद्यम करने की भी आवश्यकता है ।

प्रश्न : ऐसा उद्यम किस तरह ठीक से होगा ?

उत्तर : यह सब लगातार होना चाहिए और इसके लिए किसी न किसी धक्के की आवश्यकता रहती है । यह धक्का या तो कोई सत् पुरुष के साथ जुड़ा हो उसकी ओर से मिला करे, अथवा स्वयं अपने को ऐसे ज्वालामुखी जैसी प्रगट हुई ध्येय प्रति की तमन्ना में से मिला करे । इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है । यदि भावना अपनेआप न प्रगट हो तो बुद्धिगम्य प्रयोग कर करके, समझ समझकर प्रगट करते रहें । अंत में उसका आधार भी हमें उस विषय के प्रति की उत्कट और तीव्रमय लगनी पैदा हुई होगी वही ।

प्रश्न : मोटा, हमारी हिन्दू संस्कृति इतनी सारी उथलपुथल होने पर भी टिकी है, इसका क्या कारण होगा ?

उत्तर : हमारी संस्कृति टिकी है, इसका कारण हमारी संत परम्परा है । काश्मीर से कन्याकुमारी और द्वारका से बंगाल तक संतो की परम्परा फैली है । समर्थ स्वामी रामदास ने छत्रपति शिवाजी को चेतनावंत गौरव अर्पण किया, धर्म के संस्कार डाले वह अनोखे प्रकार के थे । उनके प्रताप से शिवाजी महाराज ने जो सब किया वह बड़ा चमत्कार था । जो शक्ति समग्र समाज

के हार्द को स्पर्श करती है, वह सच्ची शक्ति और सच्चा चमत्कार है ।

प्रश्न : शंका के साथ कोई सत्संग करे तो उसका कैसा फल मिलेगा ?

उत्तर : मनुष्य के जीवन में प्रत्येक वस्तु के संस्कार पड़ते है । शंका के साथ भी सत्संग हो, तब भी उसका फल तो मिलेगा, पर वह मिलावटवाला होगा । संतों के समागम में आते हैं, तब उनका सूक्ष्म शरीर हमारे सभी संस्कार चूस लेता है ।

प्रश्न : 'ॐ' को इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया जाता है ?

उत्तर : बोलने में नाभि, कंठ और ब्रह्मरंध्र – ये तीन स्थानों का उपयोग होता है । अव्यक्त में से स्फोट हुआ (आविर्भाव) वह शब्द 'ॐ' । आकाश की तन्मात्रा यह शब्द है । आकाश और् शब्द ओतप्रोत हैं । जब शब्द में निरंतरना प्रगट होती है, तब आकाशतत्त्व खिलता है । इसप्रकार 'ॐ' यह स्वयंभू है, इसलिए 'ॐ' का महत्त्व है । देवता के (मंत्रो के देवता) स्वरूप कल्पित होते हैं । कल्पित इसलिए कि 'राम', 'कृष्ण', 'शिव' आदि को हम चित्रों से ही पहचानते हैं, वही चित्र सच्चे हैं, ऐसा नहीं कह सकते । मात्र सच वह 'ॐ' ही है ।

प्रश्न : मोटा, आपको अब किसलिए ऐसे (समाज को दान देने के) काम करने चाहिए ?

उत्तर : अनुभवी को कर्म और लोकसंग्रह करना चाहिए ।

इससे अनुभवी की भक्ति चली नहीं जाती । वह हमेशा गतिशील, क्रियाशील और सर्जनशील होता है ।

प्रश्न : मोटा, 'चमत्कार' जिसे लोग कहते है, उसे सचमुच 'चमत्कार' कह सकते हैं ?

उत्तर : अनुभवी के जीवन में–स्वयं मोटा के जीवन में ऐसे प्रसंग बने हैं, जिसके साक्षी अभी जीवित हैं ! ऐसे प्रसंग होते हैं, ये बिलकुल वास्तविक होते हैं । इसका कारण यह है कि, 'उन उन प्रसंगों में वैसी वैसी व्यक्तता की योग्यता होने से और वह आवश्यक होने से, वह वैसे वैसे सहजरूप से, अपनेआप हुआ करता है । उसे चमत्कार भी नहीं कह सकते । यद्यपि समाज की यह 'चमत्कार' के प्रति जो अभिमुखता है, उसमें किसी प्रकार का वास्तविक समझपूर्वक का ज्ञान नहीं है । समाज इसके द्वारा उल्टा अधिक परावलंबित होता जाता है, इतना ही नहीं, परन्तु उनके लिए वह विकास का बिलकुल कारण भी नहीं ।

प्रश्न : मोटा, आप रात में स्मशान जाते तो वहाँ कभी सो जाने का नहीं हुआ ?

उत्तर : नहीं, स्मशान में रात्रि को साधना करता, तब पलथी लगाकर बैठता और थंभे के साथ मेरा पेट और छाती के ऊपरी हिस्से को बंधवा देता । जिससे आसन स्थिर हो और सीधे बैठा जाय – लंबे समय तक । सुबह जल्दी घर जाकर थोड़ी देर आराम कर लेता । मेरी माँ के पास जाकर दुबक जाता और प्यार करता, तब वह मुझे गाली देने लगती ।

प्रश्न : आपके गुरुमहाराज ने आपको कठिनाई में सूक्ष्म रूप से मदद की उसकी कोई बात नहीं करेंगे ?

उत्तर : जेल में बहुत अनाज पीसने को देते । कुछ घण्टों में कुछ वजन जितना पीस ही जाना चाहिए, नहीं तो दंड होता ! फिर खड़े ख़डे पीसने का । हाथ में छाले पड़ जाते और चक्की की दंडी भी पकड़ में नहीं आये, ऐसी स्थिति हो जाय, तब गुरुमहाराज से प्रार्थना करता, 'शक्ति दो कि जिससे काम पूरा हो सके ।' और हो भी वैसे ही । देखते ही देखते सब ऐसे हाथों से पीस जाता ! तब मुझे भरोसा हो जाता कि मेरे गुरुमहाराज मेरे सामने ही बैठे है और मेरी संभाल रखते है । ऐसी सूक्ष्म मदद के कितने ही उदाहरण मिले है, पर वह सुनकर, जानकर तुम में कितनी भक्ति जाग जाएगी ?

प्रश्न : *'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'* (गीता १८/६६) इस श्लोक में अर्थ समझना कठिन नहीं है, यद्यपि 'धर्मान्' शब्द आता है तो उस बारे में क्या समझें ?

उत्तर : लोग उसका अलग अलग अर्थ करते है । मेरी दृष्टि से तो इसका अर्थ यह है **कि मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि के सर्व प्राकृतिक धर्मों का संपूर्ण त्यागकर स्वयं का सर्वस्व, सोचे बिना, सद्गुरु के चरण में न्योछावर करें यही सच्ची शरणागति है ।** सद्गुरु तो देने बैठे हैं, पर शिष्यों के लेने की तैयारी के अनुसार वह मिलता है ।

प्रश्न : मोटा, 'चेतन' 'चेतन' अनेक बार बोलते हैं, फिर भी उसके साथ आत्मीयता हो, ऐसा लगता नहीं, समझ नहीं आता, तो क्या करें ?

उत्तर : मानवजीवन में आंतरिक दशा से प्रगट होनेवाली अलग अलग प्रकार की समझ की भूमिकाएँ होती है । हम जीवदशा में होते हैं तो उस प्रकार की समझ हम में पैदा हुई होती है । हमारी जैसी भूमिका उसी अनुसार हमें समझ आया करती है । हम संसार को समझ सकते हैं, क्योंकि हमारी भूमिका संसारी है, पर बालक कोई संसार को नहीं समझ सकता । उसी तरह हमें यदि चेतन को समझना हो, तो उसे समझने के लिए उस प्रकार की भूमिका में हमें प्रगट होना चाहिए ।

प्रश्न : गीता, विष्णु, सहस्त्रनाम, श्रीमद्‌भागवत आदि के पाठ के अंत में इतना सारा फल मिलेगा ऐसा बतलाया जाता है, यह सच है ?

उत्तर : ऐसा सब लोग पढ़ा करें, इसके लिए लिखा होगा । यदि ऐसा ही होता हो तो जो सैंकड़ो बार पढ़ते हैं, वे तो ऐसे के ऐसे ही रहते हैं । हाँ, वह कोरा बेकार नहीं जाता । उसके संस्कार पड़ते हैं । यदि नियमित, भावपूर्वक और सतत पढ़ा जाय तो ईश्वर के प्रति प्रेमभक्ति जागेगी और उसके साथ यदि हमारे आचार सुधर जाँय तो उसका फल मिले–इस जन्म में नहीं, दूसरे जन्म में ।

प्रश्न : ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति में महेश की क्या विशेषता है, इसे कृपाकर समझाएँगे ?

उत्तर : इन तीनों में महेश की स्थिति और उनका स्वरूप अलौकिक एवं अनोखा है । शिवजी की बायी जांघ पर पार्वती

बिराजती हैं । एक ओर से जिनकी जांघ पर नारी यानी विजातीय तत्त्व बैठा है और अन्य को उस विषय की पूरी कामुकता लगे और दूसरी ओर से जिन्होंने मदन (काम) को जलाकर भस्म किया है; एक ओर से जो शरीर में राख लगाते हैं और बिलकुल निर्धन अवस्था में रहते हैं और दूसरी ओर ढेर सारे धन का पति कुबेर भंडारी जिनके सेवक हैं । एक ओर से जो देवों के देव-स्वामी माने गये हैं और दूसरी ओर से जिनके गण बिलकुल मामूली बेहाल स्थितिवालें बिना रंग ढंग के हैं । इसप्रकार, दोनों धारों की परिस्थिति के स्वामी है-दोनों पर जिनका काबू है और दोनों जिनके दास हैं । विष्णु और ब्रह्मा में यह स्थिति नहीं है । वे एक छोर के स्वामी है, तब शिवजी में दोनों अंतिम अवस्थाएँ समायी हैं । यह शिवजी की विशेषता है ।

प्रश्न : जो दो लोग इस जीवन में जिगरजान दोस्त हों, वे आनेवाले जन्म में उसी तरह मिलेंगे सही ?

उत्तर : जो दो लोग ऐसे जिगरजान, लंबे समय तक यानी कि लगभग चालीस वर्ष तक मित्र के रूप में रहे हों, वे दूसरे जन्म में मिलेंगे सही, पर उसका आधार है, उनके मृत्यु समय की उस उस जीव की मति-गति पर तथा जन्मोजन्म की समग्र और लगातार संस्कारशक्ति पर । वे मित्र के रूप में ही मिलेंगे ऐसा नहीं है, पर पिता-पुत्र रूप में, भाईबहन के रूप में, पतिपत्नी के रूप में भी मिल सकते हैं । दोस्ती की भावना का उनके स्थूल और सूक्ष्म संबंध के प्रकार पर पुनर्जन्म का आधार रहता है ।

प्रश्न : (एक भक्त का) एक मध्यरात्रि को जब मैं

रेलगाड़ी द्वारा मुसाफरी कर रहा था, तब पूज्य श्रीमोटा का देह, रूपहला चांदनी से मढ़ा हुआ, प्रकाशमान, रुपहले प्रकाश से जगमग होता, मानो दर्शन में एक बार आये, गये और दूसरी बार आये और अदृश्य हो गये । मैं रेल की *सीट* पर नामस्मरण कर रहा था, तब ऐसे दिव्य दर्शन हुए, यह क्या होगा ?

उत्तर : ऐसा अनुभव अच्छा है, पर उसके पृथक्करण में उतरने की अपेक्षा जो अनुभव हों, उनके द्वारा श्रद्धाबल पाये और यह जो मार्ग लिया है, उसमे अधिक प्राणवान बने ऐसे प्रयास जारी रखने चाहिए । जिसका Being आधार — भक्ति — भाववाला हो उसे ऐसे अनुभव हों यह सहज और अच्छा है । महत्त्व हमारा नहीं पर उस स्वरूप का है । हमारी वैसी पूरी योग्यता **न होने पर भी किसी अगम्य उद्देश्य से ऐसे अनुभव वह** करवाता होता है । इसलिए यह सिर पर से चला न जाय, उसका ध्यान रखकर प्रकृति का रूपान्तर होता जाय, उसकी सावधानी रखें तो उत्तम है ।

प्रश्न : मोटा, अर्जुन अभिमानी था, युधिष्ठिर कम लायक न था, तब भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ही क्यों दिव्यदर्शन कराये ?

उत्तर : सखाभाव से अर्जुन श्रीकृष्ण पर अधिक प्रेम रखते थे । उसका अभिमान उन्होंने गीता सुनाकर तोड़ा था ।

प्रश्न : तो ऐसे मात्र सखाभाव से ही भगवान खुश होते हैं ?

उत्तर : जरूर, तुम मेरे पास शिष्यभाव से नहीं आओ, दूसरी कोई साधना न करो, मौन में न बैठो, तो भी केवल मित्रता

तो रखो । तुम्हें शायद ऐसा लग रहा हो कि 'मोटा पैसे माँगेगे' तो पैसे भी न देना - यद्यपि पैसे मैं समाज के लिए माँगता हूँ, मेरे लिए नहीं । ऐसी मैत्री से तुम्हें कैसी मदद मिलती है, कैसा आत्मविश्वास आता है, जीवन में कैसा आनंद आता है, कैसी सुझ आती है उसका अनुभव होगा ।

प्रश्न : 'भगवान, मैं तुम्हारा; तुम मेरे' ऐसा नहीं कह सकते ?

उत्तर : 'मैं तुम्हारा' ऐसा जरूर कह सकते हो, पर 'भगवान मेरे' ऐसा नहीं कह सकते । हमें तो **उस** के ही होकर रहना है । उसमें हिलमिलकर लीन हो जाना है ।

प्रश्न : अनेक बार नामस्मरण के दौरान ऐसा उत्साह आता है कि कूदने का मन होता है और अनेक बार ऐसे बैठ जाते हैं कि खड़े भी नहीं हुआ जाता ! तब क्या करें ?

उत्तर : जब व्यापार करते हुए लाभ हो, तब अधिक आवक को हम किसी में रोक लेते हैं, तो अधिक लाभ होता है । यदि उसे खर्च कर डालें तो कुछ बचेगा नहीं । बढ़ेगा नहीं । उसी तरह साधना करते ऐसा उत्साह प्रगट होता हो तो उद्देश्य में ज्ञानपूर्वक स्वस्थ रहकर नामस्मरण में उस उत्साह का व्यय करना चाहिए, जिससे अधिक से अधिक लाभ हो । अनेक बार नामस्मरण बरबस भी नहीं हो । इसलिए प्रकृति के वश न होने का प्रयास करना चाहिए । और अधिक प्रार्थनापूर्वक साधन में लगे रहना चाहिए ।

प्रश्न : कोई पैसेवाला आदमी हो, तब भी दो ही रुपए दान में दे तो उसकी अधोगति न होगी ?

उत्तर : नहीं, कंजूस तो कंजूस ही रहेगा ।

प्रश्न : (एक बहन का) मोटा, आत्मा को बहुत अशांति बारबार होती है तो क्या करूँ ?

उत्तर : आत्मा को अशांति नहीं होती है । वह तो हमारे दिल को होती है । अशांति होने का कारण स्वयं खोज निकालना चाहिए और उस कारण को दूर करने का प्रयत्न करें । हमारी पसंदनापसंद को लेकर हमें अशांति होती है, इसलिए हमारा आग्रह बातबात में महसूस होता हैं, उसे निकाल दें ।

प्रश्न : साकार से निराकार भक्ति अधिक अच्छी नहीं ? मुसलमान और ख्रिस्ती तो निराकार को ही भजते हैं न ?

उत्तर : हम अपने मातापिता के फोटो रखते हैं, वह प्रत्यक्ष प्रगट करने की खातिर । एक आधार के रूप में, अवलंबन के रूप में साकार की आवश्यकता है । मुसलमान काबा में पत्थर को पूजते हैं, उसे अति पवित्र मानते हैं । ख्रिस्ती लोग क्रोस को नहीं पूजते, भजते ? यह सब साकार ही है न ! इसलिए साकार को भजने में कोई गलत नहीं है । साकार के निराकार में जा सकते हैं । निराकार को भजना, प्रार्थना करना, उसके साथ तादात्म्य बनाना बहुत कठिन है ।

प्रश्न : (१९६८ में तापी-नर्मदा में भयंकर बाढ़ आयी) मोटा, उस बाढ़ से अत्यधिक विनाश हुआ है - एक साथ !

उत्तर : भाई, कुछ अधिक, करे ठीक । (भावार्थ **:** जहाँ असमानता है, वहाँ ईश्वर इसतरह से एक समानता लाते हैं ।)

प्रश्न : पर यह तो *enmass destruction* (थोकबंध विनाश) कहलाएगा और गरीब एवं मध्यम वर्ग ही इसे भोगते हैं इसका क्या ?

उत्तर : *enmass* (थोकबंध) अनाचार भी होता है न ? *'एक्शन' और 'रिएक्शन'* का कानून सदाकाल चलता है । ईश्वर के यहाँ अन्याय नहीं । उन लोगों ने क्या नहीं किया होगा, उसका हमें कहाँ पता है ?

प्रश्न : ऐसी बाढ़ के कारण अचानक मृत्यु से गत हुए जीवात्मा की कैसी गति होगी ?

उत्तर : इसतरह से मृत्यु होते जीव खूब व्याकुल होते हैं, स्वस्थता न रहे, इसलिए वे लगभग सभी प्रेतयोनि में जाते हैं । बहुत कम ऐसे समय में ईश्वर को याद करते हैं और जो आता है, उसका स्वीकार करते हैं । यदि ऐसे समय में नामस्मरण हो तो बहुत अच्छा हो, पर ऐसा तो कोई भक्त ही कर सकता है ।

प्रश्न : प्रेतयोनि में उस जीव की आयुमर्यादा कितनी होगी ?

उत्तर : मानवजीवन की आयु मर्यादा से थोड़ा अधिक ।

प्रश्न : मोटा, आपने लिखा है कि चेतना के आंदोलनो को पकड़ लेने की कला यदि आ जाय तो हमारे में नया सर्जन हो सके, तो ऐसी कला किस तरह आएगी ?

उत्तर : यदि हमारा हृदय हमारे गुरुमहाराज में या कोई भी महात्मा में केन्द्रित हुआ हो तो ऐसे आंदोलन पकड़ सकते हैं । इसके लिए सदा जागृति रहनी चाहिए । एकाग्रता रहनी चाहिए ।

प्रश्न : भक्त से जीवदशा में कोई भूलचूक हो जाय तो उसके सद्‌गुरु से वह बच जाता है, यह बात सही है ?

उत्तर : हाँ, पर वैसी भक्ति प्रगट होनी चाहिए ।

प्रश्न : भगवान का स्मरण करते करते या अन्य साधन करते कभी कभी प्रेमाश्रु आयें, तब साधक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर : प्रेमाश्रु आयें, भगवान का स्मरण या पढ़न करते, यह तो अच्छी निशानी है । परन्तु ऐसी स्थिति होने के बाद बैठे रहना अच्छा नहीं है । तब प्रभु को जो कुछ कहना हो, उसका निवेदन करें, अधिक भावना जोड़ते रहें और ऐसी स्थिति में से एकदम अन्य निम्न प्रकार की स्थिति में चले न जाँय ।

प्रश्न : मोटा, हम से अनेकबार भूल हो जाती है - जीवदशा की क्या करें ?

उत्तर : भूले तो होती हैं, पर उससे हार न जाँय । उसके बाद तुरन्त जाग जाँय और भूतकाल को भूल जाँय । मुझ से भी दो बार भूल हो गयी थी । इससे एक बार तो कपाल में धधगता मिट्टी का तवा चिपका दिया था ।

प्रश्न : मोटा, आप साधना करने जिन जिन जगहों पर जाते थे, उनको पसंद आप स्वयं करते थे या गुरुमहाराज की आज्ञा अनुसार ?

उत्तर : नहीं, उन जगहों का मुझे *'विजन'* दर्शन-फिल्म की तरह नजर में आता था । हूबहू वह दिखाई देता - नदी,

पर्वत, गुफा, मंदिर या जंगल, टीले पर का वृक्ष ठीक *'विजन'* में आता । फिर वह जगह कहाँ पर है उसका मैं पता लगाता । उस गाँव में जाता और फिर वहाँ से अंदर के भाग में फिर फिरकर खोज निकालता, तब *'विजन'* अनुसार स्थान मिल जाता और मैं वहाँ बैठ जाता ।

प्रश्न : आप ऐसी जगह पर जाते, तब साथ में क्या क्या ले जाते थे ?

उत्तर : कुछ खास नहीं । बिछाने - सो जाने को रात को धोती या अँगोछा बिछाता और तकीये के रूप में पत्थर जैसा । पर निद्रा केवल दो घण्टे जितनी होती । एकांत हो इसलिए नग्न भी रहूँ तब भी कोई आपत्ति नहीं ।

प्रश्न : जान पर जोखिम ऐसी जगह पर कभी आयी ?

उत्तर : प्रभुकृपा से कभी नहीं ।

प्रश्न : भोजन के लिए क्या करते ?

उत्तर : दोचार दिन तो फाके होते, फिर कोई आकर सब्जी रोटी दे जाता । मैं उनका खूब आभार मानता और उनका आग्रह होता इसलिए उन्हें दिन में एक ही बार एक रोटी और सब्जी या दाल देने की विनती करता । यह भगवान की कृपा ।

प्रश्न : उन लोगों को कैसे पता चलता कि आप ऐसी एकांत जगह पर बैठे हो और आपको भोजन की आवश्यकता है ?

उत्तर : हाँ, मैं उन भोजन लानेवालो को पूछता, 'भाई, तुम्हें किस तरह पता लगा कि मैं यहाँ बैठा हूँ और भूखा हूँ?'

तब वे भाई कहते, 'स्वप्न में कोई कोई आकर मुझे कह जाता★ या आपके दर्शन हो कि फलानी जगह पर आप साधना करने बैठे हो और इतने दिन से भूखे हो इसलिए खाना दे आओ । इससे खाना लेकर आये हैं ।' यह मेरे भगवान की कैसी कृपा !

प्रश्न : इतना दूर जाने के लिए खर्च की व्यवस्था कैसे होती ?

उत्तर : परसदराय मेहता ने की, ('बापू' की तरह जिन्हें मानता) वे मुझे प्रत्येक समय तार से पैसे भेजते ।

प्रश्न : आपने एक बार कहा था, 'अभय कितना विकसित हुआ है, उसे जाँचना' एक बार आप गिरनार गये थे और सिंह के पास रहे थे, उस बारे में विस्तार से प्रभु कहिए न ?

उत्तर : मैं और वजुभाई जानी एक बार गिर के जंगल में सिंह की गुफा में जाने के लिए गये । दत्तात्रय के पैरों के निशान जहाँ है, उस ओर से चढ़ने से पहले एक कुंड आता है । उस ओर से उसके पीछे के भाग में जंगल-खाई है - एकदम घना जंगल भयानक - वहाँ नीचे उतरकर साधुबाबा को कहकर निश्चित किया कि हम नीचे उतर कर दोचार दिन रहना चाहते हैं । तब उन लोगों ने कहा, 'अरे ! वहाँ तो तुम सिंह का शिकार हो जाओगे !' हमने कहा 'हम तो भक्ष होने के लिए ही जा

★ मूल कालोल (जि. पंचमहाल, गुजरात) के. गुजराती साहित्यकार श्री नरसिंहराव दिवेटीया के जमाई । उनकी दो पुत्री चित्रा और कुरंगी की देखभाल बनारस में पू. श्रीमोटा करते थे ।

रहे हैं । देखें तो सही । हमें दिन में एक बार रोटी-सब्जी या दाल दो जन के लिए देने को आना । उसके पाँच रुपए देंगे ।' उन लोगों ने कहा 'नहीं, हम नीचे घोर तक देने को नहीं आएँगे, सिंह का भय रहता है । आधे रास्ते एक आएँगे । आधे रास्ते तक तुम्हें आकर ले जाना होगा ।' हमने हाँ कहा । वजुभाई आधे रास्ते जाकर खाना ले आते ।

प्रश्न : तो सिंह आपके आसपास या पास नहीं आये ?

उत्तर : आसपास आकर घूमते । पास भी आते । भय तो अंदर का है, बाहर का नहीं । वजुभाई को भय के कारण पेट चलने लगा और पेशाब हो गई । पर हमें सिंह ने कुछ नहीं किया । इसतरह हम कितने निर्भय हुए हैं, इसकी परीक्षा होती है ।

प्रश्न : मोटा, सुबह जल्दी दो तीन बजे जप ध्यान करने बैठे वह अच्छा न ?

उत्तर : रात के बारह से तीन बजे तक का समय साधना के लिए श्रेष्ठ है । तब तुम गुरु को याद करोगे तो वह तुम्हें जरूर मदद करेंगे । तब तुम्हें भय जैसा लगे, बैचेनी हो, नींद आये, ऊब हो, तब भी निश्चयपूर्वक इन सभी को हटाकर स्मरण, जप, ध्यान में लग जाँय । एक बार आदत डाली तो फिर कुछ कठिन नहीं लगेगा । मैं स्मशान में सोने को प्रथम बार गया, तब पसीना आ गया । पर धबराये बिना जारी रखा । इसलिए आदत डाले तो कुछ कठिन नहीं ।

प्रश्न : सत्पुरुष का सचमुच का संग जीवदशावाले मनुष्य को भी लाभ दे सही ? कैसा लाभ हो ?

उत्तर : हमारे शरीर में स्थूल, सूक्ष्म कारण ऐसे तीन शरीर हैं । स्थूल शरीर में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् स्थूल रूप से काम करते हैं - संस्कार के अनुसार निम्न और ऊर्ध्व । यह हम देख सकते हैं । सूक्ष्म शरीर है, वह अनुभवी महात्मा की सोबत के कारण उनके चेतनवाले संस्कार जानेअनजाने झेल लेता है । सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर के कर्म के साथ ऐसा संबंध नहीं है । इसलिए मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर पर के सात्त्विक संस्कारो के कारण वह जीव ईश्वर को याद कर सकता है और मृत्यु हो, तब सूक्ष्म शरीर उन संस्कारों को लेकर चला जाता है, इससे उसकी ऊर्ध्व गति को मदद मिलती है । इसलिए स्थूल शरीर से कैसी भी निम्न प्रवृत्ति हुआ करती हो, तब भी चेतननिष्ठ के साथ मैत्री रखकर सोबत में रहना बहुत लाभदायी है ।

प्रश्न : मोटा, अनेक बार 'घर और ऑफिस का कैसे करें ?' 'क्या होगा ?' आदि प्रश्नों से मन में उद्वेग होता है तो क्या करें ?

उत्तर : 'प्रभुकृपा से दालरोटी खाये उतना तो मिलता है, फिर किसकी चिंता ?' इसतरह *'पोजिटिव'* (रचनात्मक) विचार करें । *'नेगेटिव'* (नकारात्मक) विचार करने से नुकसान होगा । *पोजिटिव* विचारों से सुख मिलेगा । ऐसे समय में सत्पुरुष का समागम करें । इससे समाधान होगा, रास्ता सूझेगा, उलझने कम हो जाएँगी और राहत मिलेगी । हम जो कुछ करें, वह श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ करें और सुख-दुःख में धीरज रखें । यही सच्चा मार्ग है ।

प्रश्न : अभी कुछ भी स्थिर नहीं रहता; मन बहुत अस्थिर रहता है और निर्णय नहीं ले पाता । व्यापार के बारे में कुछ भी निश्चित नहीं हो पा रहा है । फिर, निम्न प्रकार के काम में मन खिंच जाता है ।

उत्तर : 'तुम कहाँ स्थिर हुए हो, जिससे स्थिरता मिले ?' पहले अंदर भरा हो तो वह मौका मिलते ही उभर आएगा । यह कोई नया आता नहीं है । ऐसे समय में प्रार्थना, आत्मनिवेदन आदि करें । मेरी ऐसी स्थिति होती, तब मैं खूब लिखकर भजन गाता । 'केशव चरणकमल को' में ये सारी प्रार्थनाएँ प्रकाशित हुई है । सत्संग से रास्ता सूझता है ।

प्रश्न : मन ऐसा लुच्चा है कि हमें यहाँ से वहाँ घूमा कर धोखे में डालता है ।

उत्तर : गलत बात । यदि मन मनुष्य के रूप में हो तो तुम्हें वह थप्पड़ लगाकर कहे, 'गलत तो तुम हो और दोष मुझे देते हो ?' ऐसे समय में हम मजबूत रहकर क्यों न योग्य कदम भरें ?

प्रश्न : कितने मनुष्य मनौती रखते हैं, यह ठीक है ?

उत्तर : मेरी मनौती मन रखना । यह तो कोरी मूर्खता है । परन्तु मुझे आकर अपनी कोई तकलीफ की बात करोगे और सलाह माँगोगे तो वह मैं सुनूँगा और भगवान को प्रार्थना करूँगा ।

प्रश्न : मोटा, आपके शरीर में इतनी सारी वेदना होने पर भी आप इतने सारे भजन कैसे लिख सकते है ?

उत्तर : शरीर के दर्द को हलका करने भजन लिख सकता

हूँ, **उस** की कृपा से । यह मेरे लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण और बहुत आनंद की बात है । भजनलेखन मेरे लिए दर्द की दवा है ।

प्रश्न : आप *क्लीनिक* में शरीर की संभाल के लिए रहे थे, तब भी आश्रम में जल्दी सुबह, इतनी ठंडी में किसी की शादी करवाने गये थे, ऐसा सुना !

उत्तर : हाँ, भाई । परमार्थ के लिए कुछ होता हो तो शरीर की ऐसी हालत में भी खड़ा होकर जाऊँ, उसकी ना नहीं है । पर मेरा स्वयं का भाई (भूलजीभाई) के स्वर्गवास पर नहीं गया । वहाँ दौड़कर जाऊँ उसमें स्वार्थ काम कर रहा कहलाएगा । दोनों कर्म में भेद समझ आ रहा है ? प्रश्नकार **:** हाँ, जी ।

प्रश्न : मोटा, हरिभक्त शूरवीर होते है, रण-यौद्धा भी शूरवीर होते है । तो दोनों की शूरवीरता में कोई अन्तर सही ?

उत्तर : भक्त की मर्दानगी महापराक्रमी यौद्धा से भी अधिक चढ़ जाती है । नेपोलियन छोटा यौद्धा था ? तब भी वह बिल्ली से डरता था, ऐसा कहते हैं । तो ऐसे यौद्धा की मर्दानगी संपूर्णतावाली नहीं है । भक्ति फूट निकलती है, तब उसका पराक्रम, उसकी धीरज, उसका त्याग ऐसे अनंत गुण उसमें सहजरूप से खिलते हैं । अकेले लेने जाये तो कितने ही जन्म लेने पड़ें ।

प्रश्न : पर भक्त हो, उसमें रहे गुण और भाव का पता शायद उसके सामने रहनेवालों को भी न हो ऐसा होता है न ?

उत्तर : हाँ, मोटा के शरीर में अभी इतनी सारी वेदना होती है कि झेलनी कठिन है । अनेक बार सुई चुभती हो ऐसा

दर्द होता है । जब यह दर्द असह्य होता है, तब मैं भजन लिखवाता हूँ । वह भजन गाते गाते मुझे कुछ आराम मिलता है । यह भक्ति का प्रताप है । मेरी बातें स्वयं कहना यह ठीक नहीं है, पर बात निकली है, तब तुम्हें समझाने के लिए यह कहा है ।

प्रश्न : जो कोई भक्ति मार्ग पर आगे बढ़ा होगा वह आप जैसे के धकेलने से ही हुआ होगा न ?

उत्तर : मेरे जैसा कोई, कोई भी जीव को ऐसे ही नहीं धकेलेगा, प्रेरणा नहीं देगा । हृदय की सच्ची नेक दानत से, संपूर्ण एकनिष्ठा से भगवान के सन्मुख एकटक देखकर जो कोई मथनेवाला होगा वैसे सदा ही उत्सुकतावाले जीव को, प्रभुकृपा से, धकेलने या प्रेरणा देने की माँग नहीं करनी होती ।

प्रश्न : बड़ी उम्र के लड़के हमारा कहा नहीं मानते हैं तो... (श्रीमोटा बीच में ही बोल उठे)

उत्तर : मेरी तुम्हें सलाह है कि भाई, लड़कों को सुधारने की बात छोड़ देना । हमें स्वयं को सुधारना है । आज समय ऐसा है कि युवा लड़के मातापिता का कहा करेंगे नहीं । बड़ी उम्र के लड़को के साथ झगड़ा हुआ करे तो प्रेमभाव से एक दिन उसे कह देना, 'भाई, अलग होकर रहो, जिससे हम प्रेमभाव से रह सकें ।' इसलिए हमारे आग्रह उस पर ठोक बिठाने की इच्छा न रखें ।

प्रश्न : मोटा, महात्मा ध्यान में जाकर जिस बारे में जानना हो वह कर सकते हैं । तो आपके पुस्तकों में ऐसा न बतलाया हो ऐसे किसी दूसरे प्रसंग के विषय में कहें न ?

उत्तर : एक बार श्रीकृष्णमूर्ति को करांची में सुनने मिला । उसके बाद मेरे पूज्य बुजुर्ग ने कहा, 'उनका सूक्ष्म शरीर कैसा है, वह ध्यान में जाकर देखों न ।' इसलिए मैं ध्यान में गया और देखा तो श्रीकृष्णमूर्ति का सूक्ष्म शरीर स्फटिक जैसा सुंदर और निर्मल था । कहीं कोई दाग नहीं थे । बाकी, अन्य जीवदशावालों का सूक्ष्म शरीर कितने ही रंगो से रंगा और दागवाला होता है । फिर, श्रीकृष्णमूर्ति ने एक जन का बहरापन कितनी ही सिटिंग्स देकर दूर किया था । एक मुसलमान बड़े पद और प्रतिष्ठित व्यक्ति बंदगी कर रहे थे, नमाज पढ़ते थे, तब उनके मन में दूसरे कोई विचार थे कि नहीं वह देखने मुझे मेरे बापू ने कहा इसलिए मैंने देखा और जो कुछ देखा, उस बापू को कहा । उसे सुनकर उन्होंने उस मुस्लिम गृहस्थ को कहा और उलाहना दी कि नमाज पढ़ते हो कि दूसरे तीसरे विचार करते हो ? जब मुझे इस बात का पता चला, तब मुझे अच्छा नहीं लगा और किसी को ऐसा न कहने का निश्चित किया । क्योंकि ऐसा कहने-करने से पाप में पड़ूँगा । बस, तब से इसतरह से देखना और कहना बंद कर दिया । प्रभुकृपा से यह बात अलग है पर इसतरह देखने की प्रक्रिया को योग की भाषा में 'संयम' कहा जाता है । इस विषय में अन्यत्र कहा है ।

प्रश्न : उस रोबिन ने ३८८ दिन का मौन लिया, फिर बाहर निकलने पर विचित्र व्यवहार कर रहा था, ऐसा क्यों होगा ?

उत्तर : यों तो वह 'हरि:ॐ' मय हो गया था और मन

पर उसका काबू न रहा था । पागलपन भी करता, कपड़े निकाल देता, वस्तुएँ फेंक दे, भान न रहे, सभानता न रहे ।

प्रश्न : इसका क्या कारण ?

उत्तर : जहाँ तक आंतरशुद्धि न हो, वहाँ तक साधना का फल नहीं मिलेगा ।

प्रश्न : आपने कहा कि गुरुमहाराज ने आपको बुलाकर दीक्षा दी थी । इसका अर्थ क्या है कि उनके साथ आपका परापूर्व का संबंध होगा, ऐसा ही न ?

उत्तर : समझने के लिए ऐसा कह सकते हैं, फिर भी ऐसे व्यक्ति का व्यवहार नहीं समझ सकते हैं । ऐसे महात्मा निरिच्छ, मुक्त होकर उनके परापूर्व के संबंध भी कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि उनका प्रारब्ध तो होता नहीं, तब भी संसारिओं को समझने के लिए ऐसा कहना हो तो कह सकते हैं ।

प्रश्न : तमन्ना और तामस दोनों साथ में हो सकते हैं ?

उत्तर : हाँ, एक ही मनुष्य में बिलकुल परस्पर विरोधी गुण एकसाथ रह सकते हैं ।

प्रश्न : मोटा, महात्मा गांधी ने एक वर्ष में स्वराज लेने का संकल्प किया था, वैसे मैं भी एक वर्ष में आत्मप्राप्ति पाने को खूब प्रयत्न करूँ और उसमें आप मुझे साथ दें ?

उत्तर : दूसरी-तीसरी कक्षा में पढ़ता कोई विद्यार्थी ऐसा कहे, 'आनेवाले वर्ष में मुझे बी.ए.पास करवाओ' तो वैसा हो सकता है ?

प्रश्न : (एक वेदांत का विद्यार्थी) कामक्रोध संसार के चलन के लिए आवश्यक नहीं लगते ?

उत्तर : यह प्रश्न मैं समझ नहीं पाया । ऐसा कहना है कि कामवासना न हो तो प्रजोत्पत्ति बंद हो जाय ? पर लोगों को कभी कामवासना से मुक्त हुए सुना है ? फिर भी काम आदि की आवश्यकता है और उसे चलाये रखो, ऐसा ही कहना हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है । तुम्हारा ध्येय क्या है ? यह निश्चित न हो तो खड्डे में गिरो । इसके सामने किसी को विरोध नहीं । प्रत्येक वस्तु की मर्यादा होती है । व्यक्तिगतरूप से हमारा क्या ध्येय है, इसे निश्चित किये बिना ऐसे प्रश्न खड़े करने का अर्थ नहीं है ।

प्रश्न : ईश्वरप्रेमी होनेवाला साधक रोजी-रोटी की ओर उपेक्षा करता हो जाय तो वह ठीक है ? सहज है ?

उत्तर : साधना करनेवाला मनुष्य नित्य नैमित्तिक कार्यो में अधिक तेजस्वी होगा; कम समय में बहुत कुछ कर सकेगा । मैं जब साधना करता था, तब ऑफिस का काम अधिक अच्छा करता था । उस काम में ढील या निर्बलता नहीं आती थी । यदि निर्बलता आये तो समझना कि हमारी साधना सच्ची नहीं होती है । इसमें समझदारी या वफादारी नहीं है ।

प्रश्न : मोटा, विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ प्रभुकृपा से नित्य होता है, वह पाठ करते हमें कैसा भाव रखना चाहिए ?

उत्तर : उसे करते करते भगवान की अनंतता का ख्याल मन में रखें ।

❑

॥ हरि:ॐ ॥

खण्ड : २

श्रीमोटा का आविर्भाव

(अनुष्टुप)

हमें तो तुम में प्रवेशकर काम करना है ;
परन्तु क्या बारह मन के ताले सभी जगह मारे हैं !

– **मोटा**

श्री सांईबाबा के दर्शन

पूज्य श्रीमोटा हरिजन सेवक संघ की सेवा से निवृत्त होकर साबरमती आश्रम में श्री नंदुभाई के घर में १९४० सितम्बर में रहते थे, तब की एक बात है । श्रीमोटा और श्री हेमंतकुमार नीलकंठ एक ही कमरे में सो रहे थे, तब सूर्योदय से पहले उनके बीच हुई बातचीत –

श्रीमोटा : आज मुझे दर्शन हुए ।

प्रश्न : किसके दर्शन, मोटा ?

उत्तर : किसी एक सांईबाबा ने (ओलिया जैसे थे – कभी नहीं देखा है उन्हें) मुझे करांची आने को कहा और फिर ऐसा कहा, 'हवाईजहाज में तेरे जन्मदिन के दिन आ पहुँच ।'

प्रश्न : आपने क्या कहा ?

उत्तर : मैंने कहा, 'मेरे पास पैसे कहाँ है कि हवाईजहाज से आऊँ ?' तब श्री सांईबाबा ने कहा, 'पैसे भेजेंगे ।'

और उसी दिन रजिस्टर्ड पोस्ट से साठ रुपए मिले । पत्र में इसप्रकार लिखा था – 'करांची के सांई के हुक्म से ये भेजे गये हैं । पैदाईश के दिन तुम करांची हवाईजहाज से चले जाना ऐसा हुक्म है ।' लिखनेवाले के हस्ताक्षर नहीं थे । रकम किसने भेजी उसका पता कभी न चला ऐसा श्री हेमंतकुमार अधिक बतलाते है – 'कवर पर के पोस्ट ऑफिस के सिक्के पर से लगा कि कवर पूज्य श्रीमोटा को दर्शन हुए उसके अगले दिन अहमदाबाद से डिस्ट्रिक्ट कोर्ट की पोस्ट ऑफिस से रवाना हुआ था । उन दिनों में श्रीमोटा कहीं बाहर गये नहीं थे, जाते नहीं थे । हम सभी उन्हें *रोयल सेन्ड ओफ* देने गये थे । उनके हवाईजहाज की मुसाफरी का पहला अनुभव !'

करांची से श्रीमोटा साबरमती आश्रम वापिस आये, तब श्री हेमंतभाई उनकी हवाईजहाज मुसाफरी का अनुभव जानना चाहते थे । श्रीमोटा ने कहा, 'हवाईजहाज में बैठने के बाद तुरन्त ही खूब अच्छा ध्यान लग गया । सबसे ऊँची कक्षा का वह ध्यान था । भूज आया वहाँ तक ध्यान चल रहा था । दूसरे उतरनेवालों को हुआ कि मुझे कुछ हो गया है, बेहोश हो गया हूँ, इसलिए मुझे हवाईजहाज से बाहर निकाला और खूब हवा डाली और जोर से हिलाया तब देहभान वापिस आया ।'

भक्तिभाव का प्रभाव

श्रीमती मंजुलाबहन तमाकूवाला (सुरत), उनकी दायी आँख की दृष्टि मेनिन्जाइटीस रोग के कारण, १९६१ में चली गयी थी । एक सौ एक दिन तक उन्हें अस्पताल में रहना पड़ा था । 'अब

कुछ नहीं हो सकता,' ऐसा सुरत के आँख के डॉक्टर ने कह दिया था, तब श्रीमोटा ने उस बहन को उसी वर्ष के अगस्त महीने में, उनके घर के एकांत कमरे में इक्कीस दिन तक मौन लेने को कहा । उस दौरान कुछ पढ़े नहीं, किसी के साथ बोले नहीं, केवल 'हरिः ॐ' का रटन करे । श्रीमोटा तब कुंभकोणम् में रहते थे । इक्कीस दिन तक मंजुलाबहन को श्रीमोटा के छायादर्शन हुए और बाद में उन्हें आँख से दिखने लगा । वह स्थिति अभी तक रही है, लिख-पढ़ सकती है । भक्तिभाव का यह प्रभाव है । चेतनशक्ति का चमत्कार कहना हो तो कहो । पर इसमें भी *'वन वे ट्राफिक'* नहीं होता । उस कुटुंब की श्रीमोटा के प्रति भक्ति, उस बहन के सुकृत भगवान की कृपाबिन्दु के लिए उत्तरदायित्व है ।

'जिसके पास दृष्टि हो वही समझे'

ता. ५-९-'७० के दिन डुमस में पूज्य श्रीमोटा थे, तब उस रात मूसलाधार बारिस हो रही थी । श्रीमोटा चौगान के पास मच्छरदानीवाली खाट में सो रहे थे । आसपास सारा खुल्ला । चौगान और कमरे पानी से भीग गये थे । श्री नंदुभाई चौगान के पास ही सो रहे थे । वे भी बारिस के कारण मध्यरात्रि में अंदर के कमरे में जाकर सो गये । श्रीमोटा तो बाहर ही हवा के सरसराहट और मूसलाधार बरसात होने पर भी जल्दी सुबह उठते श्रीमोटा ने एक भाई को पूछा, 'देखो तो, खाट गिली हुई है ?' 'नहीं, खाट गिली नहीं हुई है ।' श्रीमोटा ने कहा, 'मध्यरात्रि को अंदर चले जाने का मन हुआ, पर सभी को नींद

से क्या उठाऊँ ! ऐसा सोचकर पड़ा रहा ।' तो खाट क्यों न गिली हुई ? उसका बिस्तर क्यों न गिला हुआ ? आश्चर्य !

ता. ६-९-'७० के दिन डुमस में भारी बरसात के कारण बिजली बंद हो गई थी । दिन के डेढ़ दो बजे का समय होगा । 'जिज्ञासा' में नये लिखे काव्य-श्लोक श्रीमोटा पढ़ते जाँय और हमें वे क्रमानुसार रखने को देते जाँए । अचानक पूरे बंगले में अंधेरा हो गया । हम सभी ने 'हरिः ॐ' कहा । और तुरन्त कमरे में बिजली आ गयी ! श्रीमोटा ने भाई दिलीप को पूरे बंगले में दूसरी जगह लाईट है कि नहीं उसे देखने को भेजा । जाँच करके दिलीप ने कहा । मोटा, 'हमारे इस कमरे के सिवाय सभी जगह अंधेरा है ।' और श्रीमोटा ने काम करना जारी रखा । आधे-पोने घण्टे यह काम चला और काम पूरा होने पर श्रीमोटा ने 'हरिः ॐ तत् सत्' बोला और हमारे कमरे की भी लाईट चली गयी ! हम में से कितनों के मुख से 'अरे वाह !' शब्द निकल पड़े । 'जिसके पास दृष्टि हो वह यह प्रसंग देखे, समझे,' ऐसा श्रीमोटा सहज भाव से बोले थे ।

तब भी भक्ति कहाँ ?

पूज्य श्रीमोटा सूर्योदय से बहुत पहले आश्रम में (सुरत) भजन लिखवा रहे थे, तब कीर्तिदाबहन ने चाय लेकर उनके पास जाकर कहा, 'प्रभु चाय लायी हूँ ।'

श्रीमोटा : क्या रतिभाई बहादुर आये हैं ?

उत्तर : हाँ, जी ।

श्रीमोटा : इसने मेरे भजन में भंग डाला । बहुत ही

गलत किया । रतिभाई ने तुम्हें आगे भेजा और बच गये, पर भजन में भंग डाले वह माफ नहीं किया जा सकता । (ऐसा वे तीन-चार बार बोले ।)

प्रश्न : मोटा, इसका प्रायश्चित नहीं है ?

उत्तर : नहीं, अरे, इतने सारे अनुभव होने पर भी भक्ति कहाँ प्रगट हुई है । सांईबाबा के चरणचिह्न पड़े इससे तुम्हारी भक्ति कितनी बढ़ी ? अपने आपको उत्साहपूर्वक कुरबान करने को कहाँ हुआ है ?

कीर्तिदाबहन : मोटा, लगाओ थप्पड़, फिर जाये ।

उत्तर : मेरे कहे अनुसार करता हो तो लगाऊँ । अपने आपको संभालते नहीं और दूसरों की पंचायत में भला क्यों पड़े ? सच्ची जिज्ञासा जगी हो तो स्मरण, भजन, निवेदन क्यों नहीं होते ? स्वजन की जड़ता के बारे में कई बार इसतरह असंतोष व्यक्त करते ।

बुद्धिभेद करना हमारा काम नहीं

प्रश्न : मोटा, लक्ष्मीजी का अनुष्ठान करने से लक्ष्मी मिलेगी, ऐसा मेरे गुरुमहाराज ने कहा था, पर कुछ नहीं मिला, तो मुझे यह जानना है कि, मेरे गुरुमहाराज ने जो जो कहा था वह सच है या गलत ?

उत्तर : ऐसे प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकता ।

प्रश्न : क्यों नहीं ? उत्तर न दो तो कैसे चलेगा ? (एक से अधिक बार वह भाई ने ऐसा पूछा ।)

उत्तर : (गुस्सा होकर) एक बार कह दिया, तो उस विषय

में बारबार न पूछें । किसी में बुद्धिभेद करना हमारा काम नहीं । यह गीतामाता का आदेश है ।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङिनाम ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ (३-२६)

अर्थ-ज्ञानी मनुष्य को कर्मफल आसक्त ऐसे अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि को डामाडोल नहीं करना चाहिए ।

उस भाई के ऐसे हठ और दुराग्रह से श्रीमोटा बहुत क्रोधित हुए थे । पीछे से उस भाई को अपनी भूल समझ में आते ही क्षमा माँगी थी ।

अब काम से फुरसत ले लो

१९७३ में पूज्य श्रीमोटा, मुंबई में भाईश्री चन्द्रकान्त मेहता के यहाँ ठहरे थे । २६-६-७३ के दिन तड़के अन्यत्र जाने को तैयार होते श्री चन्द्रकान्तभाई की वयोवृद्ध मातृश्री★ को श्रीमोटा ने कहा, 'अब काम से फुरसत ले लो । मैं भी फुरसत ले रहा हूँ । जो कुछ इकट्ठा करना है वह इकट्ठा कर लेता हूँ । अब तुम अब दूसरी बातों से मन को खींच लो । ये सभी सगेसंबंधी कोई साथ न आएँगे । मात्र भगवान का नाम साथ आएगा, उसे ही अब याद करो । दूसरे किसी झंझट में पड़ना मत । स्मरण किया करो ।'

मैं एक बार अपनी माँ को लेकर गुरुमहाराज के पास जाने

★ श्री चंद्रकान्तभाई के मातृश्री को पू. श्रीमोटा के प्रति अच्छा भाव था । वे १९७७ में श्रीजीचरण में पहुँचे ।

को तैयार हुआ । छोटा भाई माँ का बहुत लाड़ला था । इससे वह कहे, 'सोमभाई को साथ में ले चलें ।' मैंने कहा, 'माँ, सोमभाई अभी छोटे हैं । इसमें वह कुछ समझेंगे नहीं और बेकार में आने जाने का खर्च होगा । कैसे भी करके दो जनों के किराये की रकम किसी के पास से माँग कर लाया हूँ ।' जैसे तैसे समझाया तब माँ मानी ।

फिर गुरुमहाराज के आश्रम में (सांईखेड़ा - गाडरवाडा (म.प्र.) के पास) पहुँचे । गुरुमहाराज तो दिगम्बर और जैसा तैसा बोले । इसलिए मेरी माँ ने कहा, 'मरा कहीं का ! इसके पास लाया ?' मैंने उसे बहुत समझाया । 'माँ, देखों तो सही ?' आराम से उनके दर्शन करना ।

फिर तो उसके पास पाँच रुपए थे, वह मैंने उसे गुरुमहाराज को देने को कहा, पर वह देती ही नहीं थी । 'हाँ ! बहुत दे दिया है मुझे तुमने वापिस ?' मैंने कहा, 'माँ, तुम्हें पाँच के दस दूँगा । महाराज को दे न । तुम्हारा कल्याण हो जाएगा ।' पर उसने नहीं ही दिये । बाद में यद्यपि उसने बाजरी के बड़े (गुजराती वानगी) बनाकर खिलाये थे ।

'ऐसी पैसों की माया है । तो माँ, अब सब छोड़ने लगो । जिसे जैसा करना है, उसे वैसा करने दो । हम उसमें से छूट जाँय ।'

श्रीमोटा कैसा ध्यान रखते है !

एक बार हम लोग सुबह चार बजे टेप करने की मशीन लेकर मुंबई में श्री हरमुखभाई जोगी के घर पहुँच गये । आपश्री

बीसेक मिनिट तक बोले । टेप ठीक से हुआ था । दूसरा कुछ खास पूछा न था और आपश्री शांत रहे । आराम करते हों ऐसा लगा । इसलिए मशीन लेकर घर वापस आया । लगभग पाँच बजे घर आकर टेप रेकार्ड बजाकर देखा, ठीक हुआ था । इसलिए संतोष हुआ । अंघेरा करके थोड़ा जप करके लेटा । आँख घिरने लगी कि टेलिफोन की घंटी जैसे सुबह की शांति को जगाते हुए बजी - 'रतिभाई, मोटा पूछवाते हैं कि टेप ठीक से हुआ है न ?' भाई किरण जोगी की आवाज थी । 'हाँ, आकर थोड़ा बजाकर देखा, ठीक से हुआ है ।' 'भले' कहकर भाई किरण ने फोन रख दिया । मेरी पत्नी ने कहा, 'टेप लगाओ, मोटा, को सुबह के समय में सुनें ।' और टेप दुबारा रखा । बीसेक मिनिट चला । आनंद हुआ । इतने में दुबारा फोन की घंटी बजी, 'रतिभाई, मोटा पूछवाते हैं कि टेप किया हुआ सुना ? ठीक से समझ आ रहा है न ?' किरणभाई की आवाज थी । श्रीमोटा के प्रेम से आनंद, आश्चर्य और सुख हुआ ।

'हाँ, हम दोनों ने सब सुना । ठीक से समझ आया है । बहुत आनंद हुआ । मोटा को मेरी तरफ से आभार कहना ।' इसप्रकार दो बार उनका फोन-संदेश आते ही हमें बहुत ही खुशी हुई । मेरी पत्नी ने कहा, 'मोटा, वहाँ बैठे-बैठे कैसा ध्यान रखते है ! घर में आ गये !' 'हाँ, हाँ, हमारे मन की सारी बातें, वे वहाँ बैठे-बैठे जानते हैं, सुनते हैं, यह इस पर से सिद्ध होता है ।'

मुझे यह टेप करने के बाद थोडा असंतोष रहा था । उन्होंने

अपने व्यक्तव्य के अनुसंधान में उनके बड़े भाई की बीमारी, उनकी दवा के पीछे हुआ कर्ज, उस भजन में से ('हरि को भजते...') मिली प्रेरणा आदि बातें आश्रम में कही थीं, वह इस समय उन्होंने नहीं की थीं, इसलिए कुछ कम लग रहा था और यह सब सोचता था, इतने में भाई किरण का संदेश तीसरी बार फोन पर आया, 'रतिभाई, मोटा कहते हैं कि दूसरा कुछ भी पूछना हो तो मशीन लेकर वापस आओ ।' अभी आता हूँ ।' ऐसा कहकर हम वापस सानंद उनके पास पहुँचे । श्रीमोटा का ध्यान हम पर केन्द्रित था, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

श्रीमोटा को उनके सिर पर उनके बड़े भाई की बीमारी से हो गया कर्ज और अगम्य रूप से उसे वापिस देने की बात कहने को विनती की । तब उन्होंने, ऐसी अंगत बात टेप नहीं की जाती, मात्र तुम्हारी जानकारी के लिए कहता हूँ, ऐसा कहकर सारी बात की । (यह बात अन्यत्र आ गयी है ।) ऐसा पूज्य श्री का स्वजनों के लिए प्रेम था ! आपश्री हमारे मनोव्यापार भी जानते होते हैं, यह इस उदाहरण पर से स्पष्ट समझ में आता है ।

स्वर्ग और नरक सभी समान !

पूज्य श्रीमोटा कुंभकाणम् से ता. २-८-'७१ के दिन मुंबई वापस आये, तब की एक बात है । बैंगलोर होकर हवाईजहाज से आये थे । एलेम्बिक केमिकल्सवाले शेठ श्री रमणभाई अमीन ने बैंगलोर से मुंबई सेन्ट्रल स्टेशन तक पहुँचाने की व्यवस्था की थी । इसलिए हमें एरपोर्ट पर लेने आने के लिए मना किया था ।

शरीर की अशक्ति को लेकर हवाईजहाज से मुसाफरी करनेवाले और शेठ रमणभाई अमीन जैसे के वैभवपूर्ण बंगले में आराम करनेवाले श्रीमोटा, मुंबई सेन्ट्रल के पहले वर्ग के आरामगृह में केवल एक कोच पर जाकर सो गये ! थक गये थे और सो जाना था । दोतीन घंटे बाद सुरत की *'फ्लाईंग क्वीन'* में जाना था । दूसरे चारपाईवाले कमरे में सोने की व्यवस्था करने को सूचना दी पर उन्होंने मना किया । बिस्तर में से तकिया ले आने को भी मना किया । उनके सिर पर पगड़ी थी, उसे निकालकर अपने सिर के नीचे रखा और कोच छोटा पड़ता था, इससे करवट ले पैरों को मोड़कर सो गये और हम सभी को प्लेटफोर्म पर जाकर श्री नंदुभाई के पास बैठकर बात करने को कहा ! कुछ बच्चे आरामगृह में यहाँ वहाँ खेल रहे थे, कुछ मुसाफिर आराम कुरशी में लंबे होकर सो रहे थे, पास के रेस्टोरां से तेल में तलती वस्तुओं की गंध आ रही थी । ऐसे वातावरण में श्रीमोटा सो गये ! आपश्री अनेक बार कहते, 'नरक में भी सो जाने की तैयारी रखनी चाहिए !' ऐसे मुक्तों को स्वर्ग या नरक, महल या झोंपड़ी सभी समान होता है । यह प्रसंग प्रत्यक्ष अनुभव का है ।

साहब कहाँ से ?

राजकोट में ता.२४-९-'७२ के दिन मनाया एक उत्सव के प्रमुख स्थान सद्‌गत श्री ढेबरभाई ने शोभित किया था । उन्हें पूज्य श्रीमोटा ने 'ढेबरभाई साहब,' ऐसा कहकर संबोधित किया, जैसे आपश्री अनेक को संबोधन करते हैं । इसलिए ढेबरभाई

ने पूछा, 'साहब कहाँ से ' पूज्यश्री ने उत्तर में कहा, ''कबीर साहब जिस अर्थ में 'साहब' कहते हैं, उस अर्थ में मैं अनेक को 'साहब' कहता हूँ ।''

उसी सभा में श्रीमोटा की स्तुति-प्रशंसा करते संस्कृत काव्य पढ़ने एक भाई खड़े हुए, उन्हें वह शुरु करने से पहले ही श्रीमोटा ने बिठा देते हुए कहा, 'खाली खाली प्रशंसा मुझे नहीं सुननी है । मेरा काम करोगे तो अधिक अच्छा लगेगा ।' श्री ढेबरभाई ने भी 'पढ़ने दो न मोटा' ऐसा कहा तब भी उन्होंने मना कर दिया । बाकी, प्रशंसा सुननी किसे नहीं पसंद ? पर श्रीमोटा अलग व्यक्ति थे ।

वजन घटाया और रोग गया !

सुरत के एक प्रतिष्ठित लेखक श्री ईश्वरभाई देसाई एक बार पूज्य श्रीमोटा को डुमस में मिलने आये थे । श्री ईश्वरभाई वापिस गये । श्रीमोटा को इस बात का पता लगा तो वे उन्हें मिलने के लिए गये । उन्हें देखकर श्री ईश्वरभाई खड़े हो गये, 'पधारो मोटा, पधारो । आपने कष्ट लिया ! तबियत कैसी है ?'

श्रीमोटा : ठीक ठीक रहती है, तुम्हें कैसा है ?

उत्तर : मीठी पेशाब के कारण बारह महीने मैं दूध पर ही रहा । फिर, हृदयरोग, तो अभी मिटा नहीं है । आपको कैसा है ?

श्रीमोटा : प्रभुकृपा से मुझे मीठी पेशाब का रोग मिट गया है । डॉक्टर कहते हैं कि वजन घटाओ । ओहो ! इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? पन्द्रह दिन में पन्द्रह रतल घटा दिया और रोग मिट गया ।

प्रश्न : पर यह रोग तो मिटता ही नहीं !

श्रीमोटा : सच बात है ।

हाँ, सुरत के प्रसिद्ध डॉ. श्री. आर. के. देसाई ने भी जाँचकर कहा था कि मोटा को यह रोग अब नहीं ! श्रीमोटा के रोग का निदान और दवा करते डॉक्टर बहुत सोच में पड़ गये और दक्षिण के एक डॉक्टर तो 'मोटा के रोग की दवा करनी कठिन है ।' ऐसा कबूल भी किया था !

आनंद की भेंट

ता. २२-८-'७२ बोम्बे सेन्ट्रल पर की बात है । श्रीमोटा *'फ्लाईंग क्वीन'* में सुरत जा रहे थे । उन दिनों में मुंबई शहर में गठिया और हड्डियों के अनेक रोगों पर तांबा का कड़ा हाथ में पहनाने का बहुत प्रचलित था । यह अनेकों को लाभदायी हुआ था । उसे खरीदने को एक स्थान पर लंबी लाईन लगती थी । किसी परोपकारी भाई ने उसे खोज निकाला था और एक रुपए में बिकता । एक भाई वैसा कड़ा लेकर श्रीमोटा के पास आये और उनकी इच्छा थी कि पूज्यश्री वह पहने, जिससे उनके शरीर को रोग से राहत मिले । यद्यपि यह रोग तो दूसरों के और दवा से पर होते हैं, तब भी वे सभी प्रकार की दवा करते । जो कोई भी उन्हें कुछ भी कहता वे करते । ऐसी उनकी भक्तों को खुश रखने की कला थी ।

इसलिए उस कड़े के बारे में उस भाई ने बात की और श्रीमोटा ने तुरन्त ही कहा, 'लाओ, मैं पहन लेता हूँ ।' और तुरन्त

ही उन्होंने दायें हाथ में पहन लिया ! और फिर पूछा, 'इस कड़े में क्या है ?'

'तांबा और अन्य कितनी ही धातुओं का मिश्रण ।'

'कींमत ?'

'एक रुपया ।'

'बहुत कहलाएगा ।'

सुरत के तमाकूवाले कुटुम्ब की एक बहन ने देखकर कहा, 'मोटा, मुझे यह पहनने से गठिया रोग पर ठीक लग रहा है और ब्लेक में आज इसकी किंमत चालीस रुपए है !'

श्रीमोटा ने कहा, 'तुम्हें चाहिए तो इस कड़े को ले लो ।'

बहन ने कहा, 'मेरे पास ऐसे चार पड़े हैं ।'

'मैं तो यह बेच डालूँगा', श्रीमोटा ने स्मित के साथ कहा । हाँ, आपश्री कहाँ अपने शौख की खातिर कुछ पहनते हैं ? धूल जैसी चीज का भी सदुपयोग करते । उनके हिसाब से कुछ भी बेकार नहीं । इन सभी बातों से उनके आसपास घिरकर खड़े भक्तों को मजा आता और अन्य लोग भी 'कौन होगा यह बहुरूपी जैसा व्यक्ति ? !' इस विचार से उन्हें देखने को कुछ देर रुक जाते । आनंद को बाँटने की उनमें अनोखी कला थी ।

निर्भय बनाने के लिए

अहमदाबाद के श्री चीमनभाई शाह की (महाजन बुक डेपोवालों की) दो बेटियाँ एक बार नड़ियाद आश्रम में गयीं । श्रीमोटा ने एक को वटवृक्ष के मंचान पर और दूसरी को पीपल के पेड़ पर पूरी रात सोने के लिए कहा । उनमें से एक बहन

को ठीक लगा और छोटी बहन को डर लगा, इसलिए मौन रुम में रहने गयी । श्रीमोटा ने उन्हें अपने घर की खुली छत में सो जाने की सलाह दी । 'अकेले सोने में डर लगता है ।' ऐसा लड़कियों ने कहा तब श्रीमोटा ने एक काले धागे में सातेक गाँठ मारकर गले में बांधने को दिया और कहा 'इसे बांधकर सो जाने से डर नहीं लगेगा ।' वैसा करके वे सोने लगी । बच्चों को निर्भय बनाने की यह उनकी बुनियादी शिक्षा थी और अनेक लड़के-लड़कियों को इसप्रकार की अनेक तालीम उन्होंने दी थी ।

भाव विकसित करने का तरीका

सुरत के आश्रम से एक बार पूज्यश्री के साथ एक जगह जाने को हुआ । कार की पिछली सीट में जगह न थी, इसलिए ड्राईवर और पूज्यश्री के बीच इस लेखक को बैठने का सद्भाग्य मिला । कार के चलते ही श्रीमोटा की नजर *'विन्डस्क्रीन'* के नीचे की जगह पर जड़े फोटो पर पड़ी । उसे देखकर हमको पूछने लगे, 'यह किसकी फोटो है ?'

'एक स्वामिनारायण के श्रीजी भगवान और दूसरे रामदेव पीर' इससे उन्होंने श्रीजी भगवान के बारे में कितनी ही बातें की । कार चलानेवाले सद्गृहस्थ श्री जादवजीभाई श्रीजी महाराज के भक्त थे । उन्हें देखते हुए कहा, 'मुझे श्रीजी महाराज के प्रति बहुत मान है, प्रेमभाव है । उन्होंने अद्भुत कार्य किया है । हरिजनों का उद्धार किया है । लुटेरों का हृदय परिवर्तन किया है । भगवान श्री किसी भेदभाव में, ऊँचनीच में नहीं मानते थे ।

उनकी बातें अनोखी हैं ।' हम सभी उनको बहुत ध्यान से सुन रहे थे ।

अंत में उन्होंने बहुत भाव से और धीरे से सीख देते हुए कहा, 'देखो भाई, हम एकाश्रय रखें । श्रीजी भगवान की भक्ति करते हों तो उनकी ही भक्ति करें । यह भाव विकसित करने का तरीका बता रहा हूँ । हम जैसों के लिए एकाश्रय बहुत आवश्यक है । इसलिए मैं कह रहा हूँ ।' और श्री जादवजीभाई ने उस सीख का स्वीकार किया ।

मनोरंजन के साथ सीख

मुंबई में एक बार *'वेलार्ड व्यू'* में हरमुखभाई जोगी के वहाँ पूज्य श्रीमोटा थे, तब तीनेक बहनें आयीं । बड़े घर की और स्मार्ट लग रही थी । वे श्रीमती पूर्णिमाबहन पकवासा के 'शक्तिदल' में काम करती हैं, ऐसा उन्होंने बतलाया । श्रीमोटा ने उनके नाम पूछे । उत्तर में 'उषाबहन, दामिनीबहन और कृष्णाप्रिया' एक बहन ने सभी का परिचय दिया । श्रीमोटा ने स्मित के साथ कहा, 'सभी के नाम सुंदर है । 'दामिनी' हाँ, दामिनी चमके तो कुछ का कुछ हो जाय ! हम ऐसे बने । 'कृष्णप्रिया' सचमुच सुंदर नाम है ! ऐसे कृष्ण को प्रिय हो तो कितना अच्छा !'' ऐसे मनोरंजन के साथ वे सीख देते थे ।

उसमें दामिनीबहन अधिक हिंमत से बोली, पर विवेकपूर्वक, 'मुझे एक प्रश्न पूछना है ।'

'दुनिया में कुछ भी मुफ्त में नहीं मिलता । दो पैसे की वरियाली भी मुफ्त में मिलती है ?'

'नहीं,' उस बहन ने कहा ।

'तो दक्षिणा रखो ।'

'अवश्य ।'

'तो अब पूछो, पूछना हो वह ।'

'घर में, मौन में बैठना और आश्रम में जाकर मौन में बैठना, इन दोनों में क्या अंतर है ?'

श्रीमोटा ने घर और आश्रम इन दो स्थानों के वातावरण में रहा अंतर समझाया । तब भी पूज्यश्रीने 'आश्रम में ही बैठना' ऐसा किसी को कभी नहीं कहा था और वैसा दामिनीबहन को भी नहीं कहा । उठने से पहले वे बहनें दक्षिणा रखकर, श्रीमोटा के चरणस्पर्श करके गयीं । **मंदिर में या संतो के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, ऐसा रामकृष्ण परमहंस ने समझाते हुए कहा था 'मुझे मिलने आओ, तब कुछ नहीं तो सुपारी का एक टुकडा लेकर आना ।' श्रीमोटा यही पाठ सिखाते ।**

छोटे व्यक्ति के लिए भी करुणा

श्रीमोटा के हृदय में छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए कैसी करुणा है, वह एक बार रांदेर आश्रम में देखने को मिली । आश्रम में एक छोटी उम्र का सेवक कितने ही दिनों से बुखार से पीड़ित था । बुखार कम ज्यादा हुआ करे, इसलिए वह स्नान न कर पाता । इसलिए पूज्यश्री ने डाहीबहन से कहा, 'तुम्हें सेवा का काम बतलाऊँ' गरम पानी लेकर, उसके शरीर में *'स्पंज'* कर डालो । वह दो तीन दिन से नाहया नहीं है । और डाहीबहन

ने ऐसा किया । एक डॉक्टर गाँव से उस लड़के को जाँचने के लिए आते थे । उनको श्रीमोटा ने कहा, 'भाईसाहब, रोज आते रहना और लड़के को जाँचते रहना । तुम्हारा *चार्ज* जो हो वह ले लेना ।' 'मोटा, उसमें लेने का कुछ नहीं होता ।' डॉक्टर ने कहा । फिर श्रीमोटा ने कहा, 'बेचारे की ऐसी स्थिति में उसके गाँव भी कैसे भेज सकते हैं ? हम से होगा उतना करेंगे ।' बुखार न उतरने पर अंत में उसे अस्पताल भेजना पड़ा और थोड़े दिन बाद अच्छा होकर आया ।

पूजा का स्वीकार क्यों ?

श्रीमोटा की पादपूजा कितने ही भक्त करते, आरती उतारते वह गुजरात के एक प्रसिद्ध लेखक श्री ईश्वर पेटलीकर के देखने में आया । इसे देखकर उन्होंने श्रीमोटा को इसका अर्थ समझाने को कहा, 'आपके जैसे क्रांतिकारी साधु पूजा स्वीकार कर लोगों को अंधश्रद्धालु होने को उत्तेजना नहीं दे रहे हैं ?'

श्रीमोटा ने कहा, 'मैं उन्हें मेरी पूजा करने को नहीं कहता । वैसा वे भावना से मेरी पूजा करना चाहते हैं तो उन्हें मैं मना भी नहीं कर सकता । भावना को रुंधने का कार्य नहीं होगा ।'

श्री ईश्वर पेटलीकर बुद्धिजीवी और सुधारवादी विचारक होने के कारण लोगों की ऐसी भावना के विरोधी थे । पर महात्मा गाँधीजी की पूजा और आरती अनेक लोग करते, उतारते वह हम भूल जाते हैं । बुद्धि और हृदय के प्रदेश की बातें न्यारी हैं, भिन्न भिन्न हैं ।

एक की एक लीला का मात्र छोटा प्रसंग

ता.११-८-'६४ से ता.१८-८-'६४ के लिए इस पुस्तक के लेखक श्री रतिलाल मेहता ने रांदेर आश्रम में मौन लिया । तब उन्हें श्रीमोटा की शक्ति का अनुभव हुआ था । मौनमंदिर में प्रवेश करने से पहले वे पूज्य श्रीमोटा के चरणस्पर्श करने गये थे । तब आपश्री ने कहा, 'मौन में अच्छी तरह बैठना ।' श्री मेहता ने विनती की, 'मैं तो आपकी शरण में आया हूँ, फिर क्या ? आप कोई जादू जैसा करो और सब अच्छा हो !' पूज्य ने कहा, 'भाई जादू तो मैं नहीं जानता' और स्मित कर पीठ पर हाथ फेरा ।

गुरुवार ता.१३-८-'६४ की दोपहर को पूज्य ने एक हार भेजा । सफेद फूल का हार मध्य में एक ही गुलाब का फूल । टेबल पर उनकी छबि को उन्होंने हार पहना दिया । दो घण्टे बाद वहाँ देखा तो हार छबि पर होने के बदले टेबल पर फूलों की प्लेट और फोटो के बीच की जगह पर बिलकुल सीधी लाईन में रखा देखा ! इससे आश्चर्य हुआ ! खिड़की-दरवाजे सब बंद होते हैं । कोई अंदर आया नहीं है । किसी ने उसे छुआ नहीं है । फोटो पर से वह गिर जाय ऐसी स्थिति भी नहीं थी । पूज्य श्रीमोटा की यह लीला नहीं होगी ? यह हार दुबारा उनकी छबि को पहना दिया ! रात हो गई । श्री मेहता सो गये और हार का विस्मरण हो गया ।

दूसरे दिन जल्दी सुबह सवा तीन बजे उठकर छबि के आगे नमस्कार करने गये तो परम आश्चर्य हुआ ! फूलों का हार

फोटो के नीचे की खाली जगह पर (टेबल पर) उल्टा चार के अंक के आकार में व्यवस्थित देखने में आया ! पहली बार बिलकुल सीधी लाईन में और इस समय ऐसे आकार में । कहीं कोई स्वयं रखे तब ही हार इस आकृति में रखा जो सकता है । इसलिए आश्चर्यचकित हो गया । खिड़की दरवाजे अंदर से बाहर से बंद होने पर भी ऐसा कौन कर जाता है ?! अभी तक पढ़ा था या सुना था कि **पूज्य श्रीमोटा कहीं भी हो, तब भी मौनमंदिर में आना जाना करते हैं और कितनों को उनके स्थूल दर्शन हुए हैं । इसप्रकार, श्रीमोटा की शक्ति का परचा मिला । इस** संबंध में तुरन्त उन्हें पत्र लिखा । प्रत्युत्तर में उन्होंने बतलाया, 'यह तो एक की एक लीला का मात्र छोटा प्रसंग है, पर इससे क्या मिला ? इससे भक्ति अधिक विकसित, नवपल्लवित या नवांकुरित नहीं होती ।' अंत में उन्होंने अधिक तमन्ना से प्रभुस्मरण करने और कामक्रोधादि दुश्मनों को मार हटाने की सीख दी ।

'दुःख में हिस्सा चाहिए'

मौनएकांत से बाहर निकले और अंदर बैठने जानेवालों की संयुक्त प्रार्थना तारीख ३-१-'६७ के दिन सुबह छः बजे धुंधली चांदनी और ठंडी के चमकारे के बीच रांदेर आश्रम में अपनी तबियत अच्छी न होने से चारपाई में सोते सोते श्रीमोटाने एक संक्षिप्त पर दर्दभरा प्रवचन किया था, वह याद करने जैसा है ।

'मौनएकांत के साथ जुड़े भाई, बहनों और स्वजनों, तुम

सभी मेरे पास आकर अपने दु:खों का निवेदन करते हो, पर वह पूरीतरह नहीं कहते हो, परदा रखते हो । ऐसा नहीं होना चाहिए । तुम्हारे सुख में मुझे हिस्सा नहीं चाहिए, पर तुम्हारे दु:ख में हिस्सा लेना है । तुम दो-पाँच लाख कमाओगे तो ऐसा नहीं कहनेवाले कि चलो उसमें से थोड़ा मोटा को दें । यद्यपि मोटा को अपने स्वयं के लिए नहीं चाहिए, यह तो तुम सभी जानते हो । तब भी कुछ नहीं, तुम्हारे दु:ख में हिस्सा चाहिए । अब कुछ समय के लिए यह देह है । मुझे ऐसे तो मरना नहीं और जीना भी नहीं है, पर वह कब तक चलेगा ? तो वहाँ तक तो मैं तुम्हें मदद करूँ ।'

विविध संतो के विविध आचरण

विलेपार्ले-जुहु में एक बार श्री भाईलालभाई पटेल के यहाँ पूज्य श्रीमोटा प्रसाद लेने गये थे । तब पच्चीस-तीस भक्त इकट्ठे हुए थे । कोई खास बात चल नहीं रही थी । इसलिए पूज्य नंदुभाई ने श्री मेहता को संबोधन कर पूछा, 'रतिभाई, क्यों चुप हो ?' (इस भाई को पहले बहुत प्रश्न पूछने की आदत थी ।)

पूज्यश्री बोले, 'उसे डर होगा कि शायद मोटा दोचार बातें सुना दें तो ?' उस भाई ने स्मित के साथ कहा, 'ऐसा डर नहीं है ।' 'तब तो अच्छा है ।' श्रीमोटाने संतोष व्यक्त किया । इसलिए रतिभाई को प्रश्न पूछने का जोश चढ़ा ।

प्रश्न : मोटा, विविध संत विविध रूप से आचरण करते हैं और उनका *'मेनिफेस्टेशन्स'* (व्यवहार) अलग अलग होता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर : प्रकृति और गुण के कारण भी हो । फिर भी इसका अर्थ नहीं कि वे कुछ नहीं जानते । समय और संयोग की माँग के अनुसार वे सभी कालपुरुष के रूप में व्यवहार करते हैं । इसलिए वह काम उस समय के लिए घटना के लिए सत्य होता है ।

हनुमान कूद

श्रीमोटा को प्रत्येक काम में शीघ्रता प्रिय है । आवश्यकता पड़ने पर वहाँ अपार धीरज भी रखते हैं । यदि कोई कार में लंबे अंतर में जाना हो तो संभव उतनी तेजी से जाने में उनको और आनंद आता था । गुजरात विद्युत बोर्ड के सलाहकार सभ्य श्री पी. टी. पटेल इस बात में साक्षी देते हैं । एक दिन श्री पी. टी. पटेल, उनकी धर्मपत्नी और श्री मधुरीबहन खरे (प्रसिद्ध रेड़ियो गायक) को लेकर श्रीमोटा ने गलतेश्वर जाने का निश्चित किया । वह १९५८, रामनवमी का दिन था । पूज्यश्री ने कहा, 'रामनवमी अर्थात् हनुमान कूद ।' रामनवमी के दिन (१९३९) उन्हें निर्गुण का साक्षात्कार हुआ था । हम सभी जीप में गये । श्रीमोटा नियमानुसार ड्राईवर के साथ बैठे । ड्राईवर के रूप में श्री पी. टी. पटेल थे ।

श्रीमोटा ने पूछा, 'मोटर कंपनीवालों ने स्पीडोमीटर एक सौ बीस मील का बनाया है तो इतनी तेजी से जीप चल सकती है सही ?' श्री पटेल ने मना किया । इसलिए श्रीमोटा ने इतनी ही तेजी से जीप चलाने का आग्रह किया । इसलिए जीप दबाने लगे । सौ से एक सौ दस पर कांटा चढ़ा । श्री पटेल को इसका

पता नहीं चला साथ ही साथ श्री मधुरीबहन का भजन चल रहा था । जीप जमीन से डेढ़ फूट ऊँची दौड़ती और कूदती हो ऐसा लगा । श्रीमोटा ने श्री पटेल की पीठ थपथपायी । श्री पटेल इस संबंध में कहते हैं, 'मुझे कुछ पता न चला की गाड़ी कितने में दौड़ रही है । पर उस दौरान एक अद्‌भूत अनुभव हो गया । फिर, श्रीमोटा का वह साक्षात्कार का दिन भी था न !'

'...बारह मन के सभी जगह क्या ताले भी मारे हैं ?'

पूज्य श्रीमोटा किसी का स्वभाव सुधारने के लिए सीधा उपदेश कभी नहीं देते थे । आपश्री कहते, 'जो मेरी निकटता पाता है, उसका मैं पहले स्वभाव, आदत आदि देख लेता हूँ ।' और फिर परोक्षरूप में मजाक द्वारा या अन्य साधन या दूसरों को उद्‌बोधन के निमित्त बनाकर संकेत कर देता हूँ । एक बहन ऐसे भाववाली पर स्वभाव से बहुत उग्र । श्रीमोटा के लिए कुछ भी अर्पण करने को तैयार और अपने घर में साफ-सफाई, व्यवस्था रखने के पीछे खूब ध्यान दे, खूब शक्ति लगाती, स्वयं मेहनत करती । घर के अन्य काम से ऐसे काम मानो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, ऐसा उसे लगता । श्रीमोटा के ध्यान में यह सब आ गया ।

एक बार निमित्त मिलते ही, 'आओ कालकामाता !' ऐसा कहकर उसका अभिवादन किया । जब जब वह बहन आश्रम में पति के साथ आती तब श्रीमोटा कहते, 'इसे (बहन के पति को) मैं लिखके दूँ इतनी गाली माईक पर दे तो तुझे पाँच रुपए

दूँ । इसे सीधाकर, अभी बहुत रोफ मारता हैं कि नहीं ?' दूसरी बार कहा, 'इसे भर दोपहर में तारे दिखाना !'

उसी बहन को आपश्री ने दूसरी बार कहा, 'लड़के को मनपसंद खाना खिलाती हो या फिर हरि, हरि?..... ऐसा हीरे जैसा लड़का ! कहाँ अधिक दूसरे लड़के हैं ?' लड़के के प्रति मातापिता की बेदरकारी के बारे में आपश्री हमेशा नाराजगी व्यक्त करते । लड़के को प्यार करने को हमेशा कहते ।

उस बहन को आश्रम में दौड़ आने का बहुत मन न होता और जब जब वह आती तब श्रीमोटा बहुत खुश हो जाते और मातापिता से भी अधिक भाव दर्शाते । कहते 'बहन, यह साहब (उनके पति) तुम्हें साथ न लाये तो मेरे पास से आनेजाने का किराया ले लेना और आना ! तुम आती हो तो मुझे अच्छा लगता है ।'

श्रीमोटा हमेशा कहते, 'हमारा धर्म सभी को चाहना है । इसके द्वारा ईश्वर के प्रति सभी का मुँह मोड़ना है ।' पर बहुत कम लोग उनके प्रति प्रत्युत्तर देते, तब दुःख के साथ ऊपर शीर्षकवाला वाक्य कहते थे ।

सोमवती अमावस के दिन

१४ जुलाई, १९६९ पुरुषोत्तम महीने का अंतिम दिन, सोमवार था - सोमवती अमावस । बहुत ही पवित्र दिन । श्रीमोटा (मुंबई के भाई श्री चन्द्रकान्त मेहता के वहाँ) ने कहा, 'भाई, यहाँ (उनके चरणों में) थोड़ा थोड़ा आज रखेंगे तो बहुत पुण्य मिलेगा । आज के दिन लोग नदी में नहाने जाते हैं, मंदिर

में जाते हैं, महादेव की पूजा करने जाते हैं ।' हमारे मन में विचार आया, 'यहाँ जीते-जागते देव या महादेव हैं । चेतनानिष्ठ महात्मा प्रत्यक्ष सदेह उपस्थित हो तो उनकी पूजा क्यों न करें ?' पर हम उनके पास खाली हाथ गये थे । 'गृहमंत्री' ने कुछ ले जाने की सलाह दी तब भी ! तब श्रीमोटा के उपरोक्त बोल सुनते ही इसकी यथार्थता का पता चला ।

श्रीमोटा तब दाढ़ी करवाते थे । यह काम पूरा होते ही डाहीबहन, नर्मदाबहन कांटावाला, योगिनीबहन, गंगाबहन पटेल आदि श्रीमोटा की पूजा करने पूजा की थाली लेकर आयीं । श्रीमोटा ने कहा, 'मुझे मुँह धो आने दो ।' बाथरुम में जाकर हाथ मुँह धोकर आये और कुर्सी में पलथी लगाकर बैठे गये । बहनों ने एक के बाद एक आकर पूजा की और पाँच पाँच रुपए दक्षिणा रखी । श्रीमोटा हाथ जोड़कर आँखें बंद किये ध्यानस्थ बैठे रहे । फिर बहनों ने उनकी प्रदक्षिणा की और करते करते 'हरिः ॐ' का उच्चारण करके दशेक परिक्रमाएँ करके पैरों में पड़ी । Frail body with a small loin - cloth, bare head clean-shaven, he was unique in appearance. Inward divinity filled the whole atmoshpere with unique peace and spiritual vibration. (सूखी लकड़ी जैसा शरीर, कमर पर लपेटी धोती, पूरा सिर मुंडवाया हुआ, पूज्यश्री की दिखावट अनुपम थी । आन्तरदिव्यता ने अनोखी शांति और आध्यात्मिक आंदोलनों से समग्र वातावरण को भर दिया था ।)

तब प्रतीति हुई कि उनमें ऐसा क्या है कि जिसे सभी नमन करते हैं, जिससे लोग आकर्षित होकर उनके चरणों में गिर पड़ते है !

केवल प्रशंसा काम की नहीं

श्रीमोटा मुंबई एक भाई के यहाँ गये थे । तब यजमान के यहाँ बाहर से एक भाई आए थे । वे तो आने के साथ ही पूज्य श्रीमोटा की प्रशंसा करने लगे और बोले, 'ओहो मोटा ! आपके बारे में तो मैंने कितना सारा अखबार में पढ़ा है । आप बहुत अच्छा काम करते हो । यह बहुत अच्छा है ।' आदि खूब जोश में आकर प्रशंसा करने लगे । वे शायद बोलते हुए न रुकते, इसलिए श्रीमोटा ने कहा, 'केवल प्रशंसा काम की नहीं । काम अच्छा लगता हो तो योगदान दो !' 'हाँ, हाँ मोटा, अवश्य ।' और जाते जाते पच्चीस रुपए देते गए । श्रीमोटा को ऐसी प्रशंसा कभी अच्छी नहीं लगती थी । ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग देखें ।

मुंबई में श्री धीरुभाई की मोदी के यहाँ एक बार श्रीमोटा पधारे । तब एक प्रसिद्ध कॉलेज के आचार्य श्री अमृतलाल याज्ञिक भी पधारे थे । श्रीमोटा ने 'ज्ञानगंगोत्री' के लिए विचार प्रेरित किया और उसे मूर्त स्वरुप देने का दान किया था । इसके बाद उसके कितने ही भाग एक के बाद एक प्रगट होने लगे, उसके विषय में बात हुई । याज्ञिक साहब ने इस कार्य की बहुत प्रशंसा की । तब पूज्य श्रीमोटा ने कहा, 'याज्ञिक साहब, केवल प्रशंसा करो वह किस काम की ? मेरा कार्य पसंद हो तो उसमें कोई ठोस दान में दो तो सही, बाकी तो अनेक प्रशंसा करते

हैं ! वह किस काम का ?' याज्ञिक साहब ने यथाशक्ति दान देने का वचन दिया और दूसरे दिन दो सौ इक्कावन रुपए का चेक भिजवा दिया ।

प्यार और कठोरता

एक बार एक भक्त आश्रम में आकर श्रीमोटा के पैरों में पड़ा और बैठा । कुछ देर के बाद उठकर जाने लगा तब श्रीमोटा ने गुस्सा व्यक्त करते हुए कहा, 'तुम्हारा मन कहाँ है ? सांईबाबा की और ऐसा सब लिखते हो पर न कहाँ मेरे में है ? चाहूँ तो भरसभा में अपमान करूं ।' उनके बोल सीधे दिलमें प्रवेश कर जाय ऐसे थे । निकट के भक्त जो स्वजन बन गये हों, उन्हें कई बार ऐसा भी बोलते । उस बोल में रंजमिश्रित धमकी देते हुए थोड़ा गुस्सा भी होता । जिस किसी के लिए प्रेम हो, आशा हो वह उल्टी दिशा में जा रहा हो तो उसका उन्हें दुःख होता और उसे जागृत करने योग्य *'ट्रीटमेन्ट'* देते । उपरोक्त भाई को दूसरी बार फटकारते हुए कहा, 'भाई साहब बैठे हो रोफ से, पर एक दिन उसकी धोती खींच डालूँगा ।' फिर, कभी वह भाई उनके पास आकर पैर पड़े तो उसके सामने देखा अनदेखाकर देते । एक सभा में उसी भाई ने अमुक प्रश्न पूछा तो उसका नाम लिये बिना उसे डाँट दिया, 'तुम अभी कहाँ पड़े हो, उसका तुम्हें तो भान नहीं है !' फिर एक बार वही भाई, उनके पास पहुँचे थे, उनके संबंध में श्री नंदुभाई से पूछा, 'इस साहब का सिर मुंडवा डालें ?' श्री नंदुभाई ने कहा, 'अभी नहीं !' श्रीमोटा ने जिन्हें स्वजन बनाया हो,

उनकी बेमायनी बातें वे सहन नहीं कर पाते थे । तब व्यक्त होती उनकी कठोरता से छक्के छूट जाते थे । प्यार के साथ कठोरता सहने की तैयारी रखनी रही ।

ईश्वर रखें वैसा रहें

ता.१४-९-७४ के दिन हम रांदेर गये थे । श्रीमोटा दिन में एक बजे के बाद झूले पर तेल मालिश करवाते थे । श्री मुकुंदभाई सचदे सहकुटुंब आये थे । पैरों में पड़कर दक्षिणा दी । दो महीने में पूज्य श्रीमोटा के शरीर में बहुत फरक पड़ गया था । चमड़ी का रंग एकदम काला पड़ गया था । खून शरीर में नहीं था । आँखें संकुचित होकर फूल गई थीं । बोलने में जीभ हकला रही थी और आवाज क्षीण हो गई थी । जोश, स्पष्टता और शीघ्र प्रश्न-उत्तर अदृश्य हो गये थे । कहते हैं कि याददास्त को भी कभी कभी असर हुई थी । खड़े तो हुआ नहीं जाता था । पैर लकड़ी जैसे हो गये थे । यह देखकर बहुत दुःख हुआ । उन्होंने कहा, 'दो बार *डायाबिटीस* हो गया और मिट गया । *कामपोझ - ट्रान्कविलाईजर* की दो गोली रात को लेता हूँ, इससे नींद ज्यादा रहती है । इसलिए सोये रहने से दम नहीं चढ़ता है और हृदय पर असर नहीं होती है । पर शरीर की स्फूर्ति, ताजगी आदि नहीं रहे, भूख नहीं लगती है ।' और कहा, 'ईश्वर रखें वैसा रहें । उनका हुक्म हो तो अभी शरीर छोड़ दूँ, प्रार्थना करुँ । पर हुक्म के बिना नहीं होता । प्रेम से सहन करें । सहन करने की शक्ति के लिए प्रार्थना करें ।'

सुबह शाम अभी घूमने भी नहीं जाते । फिर भी ऐसी स्थिति में भी आपश्री भजन लिखते जाते हैं । इस दौरान हमारे

सभी के लिए चाय मँगायी । *रसोईघर में जाकर पीने के बदले उन्होंने कहा कि यहाँ मेरे पास आकर पीओ ।* उन्होंने भी श्री मुकुन्दभाई की विनती से चीनी बिना की चाय पी ।

'प्रेम रख सकें तो रखें'

ता.२६-१०-'७४ के दिन रांदेर आश्रम में हम गये थे । तब श्रीमोटा ने हम से कहा, 'रतिभाई, यह शरीर अब खोखला हो गया है । हार्ट को असर हुई है । फेफड़े में पानी भरते ही *'हार्ट डाईलेट'* हुआ है ऐसा लगता है । मुँह फूला हुआ और हँसते हुए सभी के साथ प्रेम से बात करता हूँ । इसलिए किसी को बीमारी और दुःख का ख्याल नहीं आता । तो प्रेम रख सकें तो रखें । अब वे श्री चंदा आदि के लिए किसी के वहाँ नहीं जाते । दो समय कार में घूमने जाते हैं । बाकी, बिस्तर में बहुत बोलते भी नहीं । भूख मर गई है । थोड़ी राब भोजन के समय और दो बार सुबह दोपहर में चाय । वर्तमानपत्र स्वयं नहीं पढ़ते हैं । कोई एकाद व्यक्ति समाचार की मुख्य मुख्य खबरें पढ़े, उसे सुनते हैं । स्वजनों को स्वयं के बारे में जानने और देखने आने की भी मनाई की है । *'बहुत बातें की, कहने जैसा बहुत कहा है । घर पर रहकर नामस्मरण करो । मुझे वह अधिक अच्छा लगेगा ।'* यह उनका प्रत्येक स्वजन के लिए संदेश है । इसप्रकार सब कुछ समेटने लगे ।

बिलकुल निःस्पृही

श्रीमोटा का जीवनचरित्र प्रसिद्ध विक्रेता आर. आर. शेठ की कंपनी ने प्रकाशित किया था । उसमें श्रीमोटा के जन्मस्थान,

बचपन, पढ़ाई और दूसरे जिन-जिन स्थानों पर रहे थे, उनकी फोटो खिंची थी वह प्रसिद्ध हुई थी । वे उन्हें १९७४ के अक्तूबर में दिखाया । यह देखकर पूज्यश्री ने कहा, 'जीवनचरित्र लिखने का यही सच्चा तरीका है । लेफ्टनल कर्नल श्री बलवंत भट्ट ने अधिक खर्च करके फोटो लिये हैं । यह उन्होंने याद करके उनके कार्य की कदर की ।'

हमने उनको और बताया, 'हमारा विचार आपकी साधना के और अन्य जगह के फोटों लेने का है । वह जीवनचरित्र में छपे कि नहीं उसकी परवाह नहीं है, अब सभी का एक आलबम बनाकर आश्रम को भेंट में देना है, ऐसी भी बलवंतभाई की इच्छा है, जिससे भविष्य की पीढ़ी को चित्रों में आपका जीवन याद रहे ।' पूज्यश्री को यह विचार पसंद आया, पर स्मित करते हुए कहा, 'मुझे मेरी *जिंदगी* के दौरान न देना । नहीं तो मैं distribute बीक्री कर दूँगा ।' यह सुनकर सभी हँस पड़े । हाँ, उन्हें मिलती सौगातें वे संग्रह करके नहीं रखते हैं । उन्हें बेचकर अच्छे काम के लिए पैसा इकट्ठा करते हैं, यह प्रसिद्ध बात है ।

बनारस में १९३९ की साल में रामनवमी के दिन उन्हें निर्गुण का साक्षात्कार हुआ था । तब पूज्यश्री जिस जगह रहते थे, उनकी तसवीर लेने का हमारा इरादा बतलाकर उस स्थान को जानना चाहा, यदि वह उन्हें याद हो तो । तब पूज्यश्री ने कहा, 'उस जगह के बारे में मुझे कुछ भी याद नहीं । दो बार वहाँ गया था और दूसरों के साथ भी पत्रव्यवहार किया था ।

उसमें स्थान का पता हो । पर वे पत्र मैंने संभालकर रखे नहीं हैं । दूसरे किसी के पास हों तो पता नहीं ।' फिर रुककर कहा, 'पर वहाँ के फोटो का क्या काम है ? जाने दो । केवल घूमने के लिए जाना हो तो जाओ पर फोटो के लिए नहीं जाना ।' ऐसी उनकी स्पष्ट आज्ञा के कारण वहाँ का फोटो लेने छोड़ दिया । इसप्रकार, वे किसी भी चीज के लिए आसक्त नहीं थे, बिलकुल निःस्पृही थे ।

मंहगा कोलनवॉटर कहाँ से खर्च करे ?

श्रीमोटा को *स्पोन्डिलाईटिस*-करोड़ की हड्डी खिसक जाने का रोग हुआ था । उसकी असर पैर पर हुई थी । पैर कमजोर हो गये थे । इसलिए हड्डी के रोग विशेषज्ञ मढ़ीवाला श्री मंचेरशा की सलाह अनुसार रोज पैर में तैलमालिश होती । तब वे अनेक बार चौपट पलथी लगाकर बैठते भी सही । इसे देखकर हमने कहा, 'मोटा, ऐसे दर्दवाले तो बैठ ही नहीं सकते, शरीर मोड़ भी नहीं सकते, पर आप तो अनेक बार ठीक सीधे बैठते हो । ऐसा कैसे हो पाता है ?' तब पूज्यश्री ने कहा, 'बैठने पर दुःखता तो है । पर सोये रहने से पीठ पर होनेवाले फोड़े पर जलन होती है और पीठ दुःखती है ।' डॉक्टर ने कहा, 'कोलनवॉटर लगाओ, पावडर छिड़को ।' 'अरे भाई, इतना मंहगा कोलनवॉटर कहाँ से खर्च करे ? पैसे किसके बाप के हैं ? हम तो भगवान के *क्लर्क* हैं । वे कराये वैसा करें और रहें । *हमसे पैसे खर्च नहीं होगे ।' ऐसी उनकी लक्ष्मी और आश्रम की मिलकत के प्रति नीति थी ।*

मैं कोन ?

पूज्य श्रीमोटा एक बार मुंबाई में थे । वहाँ उन्हें प्रसिद्ध नेता सद्‌गत श्री उछरंगराय ढेबर मिलने के लिए आये । उनके साथ तीन घण्टे तक बातें हुई । यह लेखक उस समय उनके साथ नहीं थे । पूज्य ने कहा, 'तुम तब होते तो मजा आता । बहुत सत्संग हुआ ।' मुझे दिलगीरी हुई । पूज्यश्री ने भाई श्री चंद्रकान्त को सत्संग का सारांश कहने को कहा । उस सारांश से एक बात याद आ रही है । श्री ढेबरभाई ने पूछा, 'मैं कोन ?' ऐसा प्रश्न पूछकर अपने आपको इकझोरने की महर्षि की क्रिया सरल नहीं है ?

श्रीमोटा : एक तरह से यह सरल है । पर 'मैं कौन ?' 'मैं कोन ?' यह प्रश्न हमारे मन में निरन्तर घोंटना चाहिए । तभी इसकी असर होगी । किसी भी साधना में सातत्य और जागृति प्रगट होनी चाहिए ।

केवल पुरोहित के रूप में

एक भाई ने श्रीमोटा के पास आकर कहा, 'मोटा, आपके हाथ से उस भाई की शादी हुई थी, वह निष्फल गयी ।' 'तो ऐसा करो कि दो पैसे का काजल लाकर मेरे मुँह में लगा दो ।' प्रश्नकार इस प्रत्युत्तर से ठंडा हो गया । वह कहने लगा, 'मोटा, लोगों के मन में ऐसी अपेक्षा है कि आपके आश्रम में, आपके आशीर्वाद से शादी हो तो वह सुखी ही होंगे ।' 'नहीं, ऐसा न भी हो । वे लोग मेरे पास आये तो मैं मना नहीं कर सकता । उससे मुझे दान मिलता है और मैं समाज के हित में उपयोग

करता हूँ । विवाह करके दूँ पर उनका संसार सुखी होगा उसकी *गैरंटी* नहीं देता, पर *जो चेतननिष्ठ में हिलमिलकर रत हो गये हैं । उनके केस में मुक्तात्मा के आशीर्वाद फलित होंगे सही ।'* बाकी तो वे केवल पुरोहित का काम करते हैं । यह बहुत समझने जैसी बात है । *महात्मा के आशीर्वाद मिले तो हमारा बेड़ा पार हो जाये ऐसी हमारी मान्यता कितनी भूल भरी है, वह इस उदाहरण से समझ में आ जाएगा ।*

मेरे साथ थकान नहीं होगी

श्री नंदुभाई के दो भतीजे, बड़ा हरि और छोटा हरि ; रामनवमी के उत्सव में भाग लेने त्रिची से मुंबाई आये । उनके साथ पूज्य श्रीमोटा ने बात की, 'हम एक महीने एक जंगल में बिताने जानेवाले है, वहाँ सभी काम हाथ से करना पड़ेगा । बर्तन, कपड़े, झाड़ूपोचा सभी स्वयं साफ करना है । हमारे साथ आकर काम करके थक तो नहीं जाओगे ?'

छोटा हरि थोड़ा मजाकिया है । वह कहे, 'मोटा, काम तो करेंगे पर थकान लगे तो नहीं होगा ।'

श्रीमोटा : मेरे साथ तुम रहोगे तो थकान न होगी ।

'तो कोई बात नहीं ।'

बात सच है । पूज्य श्रीमोटा किसी के घर में रहे हों, तब यजमान के वहाँ खूब काम रहता । सुबह चार बजे उठने का और रात्रि के सात आठ बजे तक सतत काम रहता । जिस यजमान को चार बजे उठने की आदत न हो, उन्हें भी उतने जल्दी उठने का और जल्दी उठते, पर कभी थकान न होती, ऊब

नहीं, ऐसा वे कहते । श्रीमोटा जब बिदा होते फिर कुछ लगे, उनकी चेतना सभी को मदद करती । ऐसा प्रत्येक का अनुभव है ।

त्याग और गुणों का आदर

महात्मा गाँधीजी के साथी और भक्त पंडित श्री नारायण खरे 'आश्रम भजनावलि' के संपादक साबरमती आश्रम में रहते । वे एक उच्चकोटि के शास्त्रीय संगीतकार थे । साबरमती आश्रम में आने से पहले कोई एक देशी राज्य में संगीतकार के रूप में खूब आदर सत्कार के साथ उनका जीवन व्यतीत होता था । परन्तु देशप्रेम के कारण और राष्ट्रीयता के रंग में रंगकर उन्होंने जीवन का उस सुखचैन का त्याग किया और फकीरी को स्वीकार किया । हृदय से वे भक्त थे । संगीत और हृदय की सच्ची भक्ति का उनमें सुमेल था । इसी कारण से पूज्य श्रीमोटा साबरमती आश्रम में रहते, तब दोनों के बीच एक सात्त्विक भावानुराग का संबंध था । एकदूसरे के हृदय के सौंदर्य को वे पहचानते थे । पंडित श्री नारायण खरे ने मनोमन पूज्य श्रीमोटा (उस समय के चूनीलाल भगत) का तेज परखा था । पूज्य श्रीमोटा भी इतने ही अंतर के गुणानुरागी थे । उस समय आश्रम में उनकी नम्रता की साधना होती थी । इसलिए बहुत व्यक्त न होते थे । समय जाने पर श्री नारायण खरे का देहांत हुआ । समय जाने पर पूज्य श्रीमोटा के साक्षात्कार के पश्चात् आश्रम की स्थापना की और आध्यात्मिक मार्गदर्शन देना शुरु किया । उस समय उनका घर घर पधारना होता । उस समय पूज्यश्री को, श्री

नारायण खरे के, नम्र भक्त के गुणों का आदर करने का मन हुआ ।

श्री नारायण खरे की बेटी मधुरीबहन खरे भी अच्छी संगीतकार और आकाशवाणी के भक्तिसंगीत की नामी कलाकार । पूज्य श्रीमोटा का उन पर बेटी के समान प्यार था । पूज्य श्रीमोटा को यदि कोई पधारने की इच्छा रखता तो वे मधुरीबहन को आमंत्रण देने हेतु उन्हें सूचित करते थे । उनके भजन रखे जाते और भेंट रूप में जो भी भेंट पूज्य श्रीमोटा के चरण में रखी जाती उसे अलग रखते । इसतरह पूज्य श्रीमोटा ने दस हजार जितनी राशि इकट्ठी कर उसका अलग ट्रस्ट बना मधुरीबहन को सोंपा । इसतरह अपने पुराने स्नेही और राष्ट्रीयता के रंग से रंगे एक अनोखे संगीतकार और अंतर के साधुपुरुष; जिन्होंने अपना भव्य कार्यकाल का त्याग करके साधुता स्वीकारी थी, उनके गुणों को सम्मानित करने के रूप में पूज्य श्रीमोटा ने यह कार्य किया ।

चलते फिरते भजन लेखन

एक बार श्रीमोटा मुंबाई से बैंगलोर हवाईजहाज से जा रहे थे । शाम को जाना था । इसलिए कितने ही भक्त *एरपोर्ट* पर आ पहुँचे थे । हमने जाकर उन्हें नमन किया । मेरा हाथ पकड़कर दबाया । उसमें भी प्रेम का स्पर्श अनुभव हुआ । इसी दौरान उन्हें कुछ पंक्तियाँ 'अनुभव' के विषय में स्फुरित हुई । उन पंक्तिओं का अर्थ ऐसा था कि अनुभवी का काम मौलिक, स्वाभाविक और अनोखा होता है । उन्होंने कहा, 'भगवान ने कैसे

कैसे गूढ़ विषयों पर लिखवाया है !' 'स्वार्थ', 'रागद्वेष', 'जिज्ञासा', 'कृपा', 'भाव', 'श्रीसद्गुरु' आदि । ऐसा लिखा कहीं देखने में नहीं आता ! वर्षों के बाद जब कोई अभ्यासी जागेगा और देखेगा तब कहेगा, 'कोई मनुष्य हुआ था जिसने ऐसा शास्त्र लिखा है ?' अभी किसी को इसका पता भी नहीं चले या कदर नहीं कर पाएगा । उस समय के दौरान पूज्यश्री खूब भजन लिखते थे ।

अहम् पर प्रहार

पूज्य श्रीमोटा का जीवनचरित्र प्रख्यात पुस्तक विक्रेता आर. आर. शेठ कंपनी ने प्रकाशित किया है । इसके लिए 'बीने हुए मोती' नामक एक विभाग तैयार किया था । 'बीने हुए मोती' यह 'मुंबई समाचार' का एक ऐसा स्तंभ था, जिसमें महापुरुषों के जीवन के प्रेरणादायी प्रसंग प्रकाशित होते । (आज यह स्तंभ बंद है ।) इसी स्तंभ के अंतर्गत पूज्य श्रीमोटा के अनेको प्रसंग प्रकाशित हुए थे । उनमें से जो प्रसंग प्रस्तुत जीवनचरित्र पुस्तक में प्रकाशित हों; तो प्रत्येक प्रसंग के नीचे 'मुंबई समाचार' और प्रकाशित हुई तारीख लिखें, ऐसी सूचना श्रीमोटा ने की । उनके सामने उस स्तंभ के और इस पुस्तक के लेखक श्री रतिलाल मेहता ने ऐसी दलील की कि 'मुंबई समाचार' का नाम आदि लिखने की क्या आवश्यकता है ? यह लेख कोई 'मुंबई समाचार' ने स्वयं लिखे या लिखवाये नहीं है । उनका *कॉपीराईट* नहीं है । तब श्रीमोटा ने बतलाया कि उस दैनिक के नाम का उल्लेख करने से हमारा अच्छा दिखेगा । तब भी श्री मेहता उस सूचन को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे । इसलिए श्रीमोटा

मुँह के भाव और आवाज बदलकर रोषपूर्वक गर्जे, 'ऐसा लिखने में हमारा क्या जाता है ? उल्टा 'मुंबई समाचार' को भी अच्छा लगेगा ।' उनकी आँखे और चेहरा लाल हो गया था । वह रौद्र स्वरूप आज आठ वर्ष बाद भी भुलाया नहीं जाता । तब उनके सामने देखने की हिंमत रही नहीं, उनका ऐसा रूप कभी देखा न था । चेतना के दो पहलू – 'प्रेम और कठोरता ।' ऐसा पूज्यश्री कभी कभी समझाते । कठोरता का ऐसा अनुभव पहली बार और एक ही बार हुआ था, तब नीरवता छा गई । अहम् पर वह जबरदस्त प्रहार था । बहुत समय तक हम *आउट ओफ मूड़* हो गये थे, पर पूज्यश्री तो तुरन्त ही मानो कुछ बना ही न हो ऐसा व्यवहार करने लगे ।

भगवान को 'त्रिगुणरहितं' नहीं कह सकते

एक बार इस लेखक के यहाँ पूज्यश्री का पधारना हुआ । यह पधारना नया नया था । इसलिए पूज्यश्री की पादपूजा करने का मन हुआ । पूजा के दौरान नीचे का श्लोक किया गया —

ब्रह्मानंदं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति,
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

अंतिम पंक्ति सुनने के बाद पूज्यश्री ने कहा – अंतिम पंक्ति में 'त्रिगुणरहितं' आता है, वह ठीक नहीं लगता है । पुस्तक देखो । देखकर पुस्तक के वह श्लोक निकालकर पढ़कर बतलाया । उसमें भी 'त्रिगुणरहितं' लिखा था । पूज्यश्री ने कहा भगवान को

'त्रिगुणरहित' नहीं कह सकते । 'द्वंद्वातीतं', 'भावातीतं' आगे आता है वैसे 'त्रिगुणातीतं' होना चाहिए । परमेश्वर तीनों गुणों से पर है । 'गुणरहित या बाहर हैं' ऐसा कहेंगे तो गलत कहलाएगा । इन दो शब्दों के बीच अर्थ में अंतर है, यह ध्यान में आये तो मेरा कहना समझ आएगा ।

'समझ में आ रहा है, मोटा । आपका कहना ठीक है । तो इस श्लोक में 'त्रिगुणरहितं' क्यों लिखा होगा ?'

'शायद प्रास बिठाने के लिए लिखा हो । पर इसके लिए ऐसा नहीं लिखा होगा । जो हो वह । यह तो समझने के लिए कहा ।'

पूज्यश्री की दृष्टि कितनी सूक्ष्म है, यह इससे पता लगता है ।

वाद-विवाद से दूर

पूज्य श्रीमोटा के एक समय के ऊपरी, फिर मित्र और फिर भक्त बने स्व. श्री हेमंतकुमार नीलकंठ पूज्यश्री की लाक्षणिकता को नोट करते हैं । वह बोधदायक होने से उसमें से थोड़ा साभार उतारने का मन हुआ है । साक्षात्कार पहले की बात है ।

श्री हेमंतकुमार ने कहा, 'चूनीभाई, आप को देखकर मुझे ईश्वर का भान होता है ।'

'तब तो अच्छा है,' श्रीमोटा ने हँसकर उत्तर दिया । श्रीमोटा का एक दूसरा वाक्य उन्हें याद रह गया था । वह है, 'मेरा बेटा मन कहाँ का कहाँ दौड़ जाता है !' कहने की जरूरत है कि इस वाक्य द्वारा अस्थिर मनवालों पर उनका कटाक्ष था या संताप ।

एक बार श्री हेमंतभाई ने पूज्यश्री से दरखास्त की 'मेरे जो दोष आपको दिखें, उन्हें मुझे बतलाना और मैं आपके बतलाऊँगा ।'

'नहीं, मुझे तुम्हारे दोष नहीं दिखेंगे ।' ऐसा कहकर उस दरखास्त का श्रीमोटाने अस्वीकार किया था ।

'श्रीमोटा तब भी किसी के साथ चर्चा में या वाद-विवाद में उतरते नहीं थे ।' और श्री हेमंतभाई बतलाते हैं 'साबरमती आश्रम में भी राजनीतिक चर्चाएँ होती पर श्री चूनीभाई उसमें भाग न लेते । मेरा तो वाद-विवाद का स्वभाव ही है, पर उन्हें भाग्य से ही चर्चा में भाग लेते देखा होगा । १९३९ के पहले तो एक भी प्रसंग याद नहीं । केवल भगवान की जगत से गुप्त रूप में होती साधना के अलावा दूसरे किसी विषय में उन्हें रस न था । उन्हें कोई भी पुस्तक पढ़ते नहीं देखा है । आध्यात्मिक विषय का एक भी पुस्तक उन्होंने १९३८ तक तो पढ़ा हो ऐसा याद नहीं । मात्र एक गीता का अध्ययन सही ।'

भक्तों के श्रेय के लिए

जिसने श्रीमोटा को अपने हृदय में रखा उसका श्रेयप्रेय करने पूज्यश्री तत्पर होते । एक बहन को उनके लिए बहुत भाव, पर वह उन्हें प्रसाद लेने का आमंत्रण देने में घबराती, क्योंकि उनके साथ चार-पाँच भक्त तो होते ही । इसलिए रसोई बनाते हुए वह बहन *'नर्वस'* हो जाती । पूज्यश्री को इस बात का पता चला । उन्होंने स्वयं लिखकर बतलाया, 'अमुक दिन शाम को

आपके यहाँ खिचड़ी-सब्जी खाएँगे और शाक बैंगन आलू का ।' और वह बहन बनाये । पूज्यश्रीने घर में पधारते ही बहन की खबर पूछते और भोजन चाखकर कहते, 'अच्छा बना है ।' इसतरह उसे प्रोत्साहन देते । पर एक बार पूज्यश्री सुबह प्रसाद लेने पधारनेवाले थे, तब उस बहन को दस्त हो गये । पूज्यश्री को पता चला । बहन को पास बुलाया उसकी खबर पूछते हुए बहन का हाथ पकड़कर नाड़ी देखी । सहज रूप से, किसी को पता न चले इसतरह से । उसके बाद बहन ने कहा, 'मुझ में मानो शक्ति का संचार हो गया, भड़क और फड़क चली गयी । **दस्त बंद हो गये ।' दूसरी और पूज्यश्री को उसी समय दस्त लग गये !** मातापिता से अधिक प्रेम बरसाते थे यह 'मोटा' ।

उसी बहन के वहाँ एक बार प्रसाद लेने के बाद अन्यत्र जाने की तैयारी करते बोले, 'खानेवाले का भला हो, खिलानेवाले का भी भला हो । यह घर सांईबाबा का घर है ।' इसप्रकार, पूज्यश्री किसी भी निमित्त भक्त के कल्याण के लिए तैयार रहते और उनकी श्रद्धा को मजबूत करते ।

पूज्य श्रीमोटा की एक भाभी नड़ियाद मिल में काम करती थी । इससे उनकी कमायी कितनी होती ? इसलिए श्रीमोटा कभी कभी स्वतः उनके घर जा पहुँचते और 'भूख लगी है, कुछ भी खाने में चलेगा ।' ऐसा कहकर भाभी को लाभ देते । 'जिसका नमक खाया है, उसका बदला मेरा हजार हाथवाला देगा ।' कहकर बारबार भगवान का स्मरण करवाते । ऐसी उनकी अद्‌भुत आचरण कला थी ।

स्वजन का स्मरण

स्वजन का श्रेय करने के लिए उसका स्मरण रखना पड़े । इसलिए श्रीमोटा विविध रीतियों का यथासमय आचरण करते । एक बहन के पास से उसकी फटी रेशमी साड़ी माँग ली थी । इसतरह फटी साड़ी के टुकड़े जोड़े कि वह लूंगी की तरह पहनी जा सके । पूज्यश्री रोज रात में काफी समय तक उसे पहनते थे, ऐसा श्री नंदुभाई ने नोट किया है । भले ही दूसरे वह देखकर हँसे । चूड़ियाँ पहनकर रखते तो साड़ी पहननी यह क्या उनके लिए बड़ी बात थी ? 'अरे ! कन्याकुमारी माता के दर्शन पूज्यश्री ने साड़ी पहनकर १९४१ में किये थे । कारण ? माता के प्रति एक स्त्री की भावना का उद्दीपन हो और ऊँचे भाव से प्रार्थना हो ।'

शक्ति का ह्रास

एक बहन ने पूज्य श्रीमोटा से कहा 'मोटा, मैं श्रीसत्यसांईबाबा के आश्रम में जाकर आयी । बहुत आनंद आया !'

'पर, तुम्हारे सद्‌गुरु तो...'

'इससे क्या हो गया ? मैं सभी में मेरे सद्‌गुरु को ही देखती हूँ ।'

'तब तो अच्छा है, पर ऐसी स्थिति के लक्षण तो अलग होते हैं ।'

'मोटा, ऐसा कहकर श्रद्धा क्यों तोड़ रहे हो ?' वह बहन थोड़ी गंभीर और फिर रोते हुए आवाज में बोली । तब पूज्य श्रीमोटा अपनी बैठक पर से ऊठकर बहन की गोदी में सिर

रखकर माफी माँगकर बोले 'तुम्हारी श्रद्धा तोड़ने को नहीं कहता, पर जहाँ तक हम आगे बढ़े न हों, वहाँ तक एकाश्रय करना अच्छा । यहाँ वहाँ दौडने से शक्ति का ह्रास होता है । हाँ, जिसके साथ हृदय का स्निग्ध भाव हो तो ऐसे महात्मा के दर्शन के लिए जाने में गलत नहीं है, पर जिस जिस महात्मा के पास जाँय वहाँ वहाँ हमारे सद्गुरु का ही भाव दृढ़ करते रहो ।'

बालक क्यों बिगड़ते हैं ?

एक बहन अपने छोटे बेटे को लेकर पूज्यश्री के पास आई और बालक के तूफानों के गुबार निकालते कहा, 'मोटा, यह लड़का बहुत परेशान करता है । बहुत तूफान करता है । उसमें उसके हाथ को चोट लगी और पट्टी भी बंधवानी पड़ी ।' पूज्य श्रीमोटा ने छोटे लड़के से पूछा 'तुम्हारी माँ तुम्हें मारती हैं ?'

'हाँ ।'

'लड़के को मारने के बदले इसके पिता को क्यों नहीं डाँटते ।' पूज्य श्रीमोटा ने थोड़ा मजाक भाव से कहा ।

श्रीमोटा ने लड़के से पूछा 'तुझे तेरे पिताजी मारते हैं ?'

'हाँ, मोटा ।'

'देखा न ?' श्रीमोटा ने गंभीर आवाज से कहा 'बालक को प्यार करना किसी को आता ही नहीं है । फिर बालक तूफान करता है तो शिकायत करते हैं, लड़का खराब है, तूफानी है । ऐसे वातावरण में लड़का बिगड़ेगा नहीं तो दूसरा क्या होगा ?'

इसकारण से यह लड़का बड़ा होकर बाहर घूमने लगा । पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्र होने पर भी पिता उसे मारकर घर

से बाहर निकाल डालते है । फिर एक बार लड़के को घर में आने की बंदी की तो आज तक लड़का जहाँ तहाँ भटकता रहता है । अभी वह चक्रम की तरह घूमता है और अनेक बार कहता है कि मेरे मातापिता पागल है, इसलिए मैं भी पागल हो गया हूँ ! इसलिए पूज्य श्रीमोटा हमेशा बालक को प्यार करने पर खूब भार देते थे ।

दिया हुआ बेकार नहीं जाता

पूज्य श्रीमोटा उनके कर्मयोग से प्रसिद्ध हुए । कितने ही भक्त उनके व्यवसाय में लाभ हो तो उसमें से दो पाँच प्रतिशत जितना भाग प्रत्येक वर्ष देने लगे । इस विषय में थोड़ी बात निकली ।

'मोटा, जो कोई हमें अपने लाभ में से भाग दे, उसका कल्याण न हो जाय ?'

'ठीक पूछा गया ।' श्रीमोटा गंभीर होकर बोले, 'जिस किसी का उद्देश्य ऐसा हो कि **मोटा** को देने से **मोटा** उसका रक्षण करेंगे, तो ऐसी निश्चिंतता मेरे से बिलकुल नहीं दी जाएगी । तब भी इतना स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैं किसी का भी कुछ मुफ्त नहीं लेता, वैसे ही मुफ्त में भी नहीं खाता । मुझे देनेवाला तो मेरा हजार हाथवाला भगवान है । उसे किसी को भी निमित्त खड़ा करने में थोड़ी ही देर लगती है क्या ? जो मुझे मिलता है, वह अंत में दान में ही जाता है । उसका पुण्य भी मुझे नहीं चाहिए ।'

प्रश्न : परन्तु मोटा, दान देनेवाले को कुछ लाभ तो होगा ही न ?

उत्तर : जो प्रेमभाव से, बदले की आशा बिना मुझे देता है, उनके लिए मैं संकल्प करता हूँ कि वह पुण्य उन्हें मिले ऐसी मेरी प्रार्थना प्रभु को होती है । किसी का भी पेट में पड़ा दान बोल उठता है, उसी तरह हम किसी को भी बेवफा तो नहीं हो सकते । जिसका नमक खाया है, उसका बदला चुकाने का काम तो समर्थ हजार हाथ और हजार आँखवाला भगवान का है । मेरे पास से जो कोई बदले की आशा अपेक्षा रखेगा उसे निराशा ही मिलेगी ।

यद्यपि करुणा से भरपूर भक्त प्रेमी श्रीमोटा तुरन्त ही अधिक में बोलते आश्वासन देते है 'तुम मुझे देते हो, वह बेकार नहीं जाता और तुम्हारा ऋण होने से हृदय में हृदय से प्रार्थना तो हुआ ही करेगी । संभालने का काम तो भगवान का है ।'

'राम रा...म' 'राम रा...म'

हम अनेक बार पूज्य श्रीमोटा को आश्रम में या आश्रम के बाहर रास्ते में जोर से 'हरि:ॐ' की आवाज देकर भक्तों को अभिवादन करते हैं या बिदा करते हुए सुना है । पाश्चात्य देशों में जोर से बोलना अविनय कहलाता है । परंतु पू. श्रीमोटा क्यों जोर से 'हरि:ॐ' या 'राम रा...म' करते हैं ? साधक को आगे बढ़ते बढ़ते अनेक बार 'भार' लगता हैं । उसी तरह संसारी जीव को 'भार' या 'तनाव' लगता है । बहनों को बिना कारण रोना आता है । तब पूज्य श्रीमोटा इस 'भार' को हलका करने जोर से एकांत में जाकर 'हरि:ॐ' पुकारने की सलाह देते, परन्तु उनकी ऐसी आवाज तो सामने व्यक्ति को भाव से

भरकर उछाल देती । श्री हेमंतभाई बतलाते हैं, 'मैंने उन्हें कभी ग्लानि में नहीं देखा पर वे अधिक स्फूर्ति-आनंद मिले (स्वयं को तथा अन्य को) इसके लिए वे जोर से ऐसा बोलते होंगे । जो हो वह पर पूरा आश्रम (साबरमती) मानो कि गूंज उठे उस तरह ।'

'मोह...न ! (नरहरिभाई का बेटा) राम रा...म ।'

'वनुबह...न ! (नरहरिभाई की बेटी) राम रा...म ।'

'धुलाभा...ई ! (एक हरिजनभाई) राम रा...म ।'

ऐसा करते करते नूतन वर्ष जैसे शुभ प्रसंग में आश्रम (साबरमती) के सभी के घर के आगे से निकलते और आमने-सामने 'राम राम' 'राम राम' चला करे ।

एक बार पूज्यश्री और श्री हेमंतभाई खार से मुंबई लोकल ट्रेन के दूसरे वर्ग के डब्बे में बैठकर जा रहे थे । इतने में उनकी नजर सामने की पटरी पर गाड़ी में बैठे उनके एक समय के साथी कार्यकर्ता पर पड़ी और श्रीमोटा ने तो पूरा डिब्बा गूँज उठे ऐसी आवाज दी 'ऐ राम रा...म श्यामलभाई ! राम रा...म !' श्री हेमंतभाई कहते है कि ''श्रीमोटा का पूरा शरीर काँप उठा इतना प्रेम और *'सिन्सीएरिटी'* उनमें थी । लगभग सभी ही यात्री इस 'ग्रामीण' की ओर देखने लगे । उस समय पोशाक तो पीला कुरता और धोती तथा गांधी टोपी थी । श्यामलालभाई भी स्मार्ट थे, उन्होंने भाव पकड़ लिया 'ऐ भग...त राम रा...म !'''

भगवान का भाव भरने की उनकी यह अनोखी कला थी । उसका अनुभव अनेक स्वजनों को मिला है ।

कालका माता...बचाना !

श्रीमोटा को साबरमती आश्रम में बहुत कम अथवा कोई भी पहचानता नहीं था, क्योंकि उन्होंने ऐसा मोहरा पहना था । बहनें उन्हें पागल समझकर मजाक करतीं, पाखाना जाते उन्हें 'आज बंध रखो' कहतीं । वे वापिस आ जाते । यह प्रसंग उन्होंने कहीं लिखा भी है । तब भी बहनों के प्रति उनका भाव अद्‌भुत था, दैवी था, ऐसा कहें तो चले । छोटी बड़ी लड़कियाँ मिलती उन्हें कहते, 'कालका माता ! तुम्हारे खप्पर में से बचाना !' और सिर झुकाकर 'जय जय' कहते । बहनें खिलखिलाकर हँस पड़ती । वे बेचारी उसके पीछे छिपे 'भगत' का भाव क्या समझतीं ? श्री हेमंतभाई नीलकंठ ऐसे प्रसंगो के साक्षी हैं । उस विषय में नोट करते हैं *'देर वॉज मेथड इन हिज मैड़नेस'* (उनका पागलपन पद्धति अनुसार था) छोटे बच्चों को पढ़ाते और डाँटते, सजा करते, पर साथ ही साथ हाथ जोड़कर उन्हें भगवान का स्वरूप समझकर मन में पूजते जाते, ऐसा मुझे तो अनेक बार पता चला है ।'

सिर पर पेटी रखखर

श्री हेमंतभाई नीलकंठ को एक बार साबरमती आश्रम से कहीं जाना था । पूज्य श्रीमोटा उन्हें स्टेशन रखने जाने को तैयार हुए । साबरमती के छोटे स्टेशन पर पहुँचना था । उस स्टेशन पर पहुँचने से पहले कितने ही रेल्वे की पट्टरियाँ पार करनी पड़ती थी और एक जगह बड़ी (B.G.) ट्रेन के, गुड्‌स (मालगाड़ी) का सामान चढ़ाने-उतारने प्लेटफोर्म जैसा किया था । उस पर

चढ़कर और उतरकर जाना पड़ता था । श्री हेमंतभाई प्लेटफोर्म पर चढ़कर उतरकर आगे निकल गये, तब भी उन्हें ख्याल न आया कि पीछे **मोटा** उनकी पेटी सिर पर रखकर आ रहे हैं । वहाँ पीछे मुड़कर देखा तो श्रीमोटा सिर पर पेटी रखकर प्लेटफोर्म अधिक श्रम लेकर चड़ उतर कर रहे थे । श्री हेमंतभाई उन्हें मदद करने पहुँचे उससे पहले तो श्रीमोटा प्लेटफोर्म उतर गये । श्री हेमंतभाई ने इस विषय में बतलाते हैं, 'ऐसा **मोटा** करते हैं, पर मदद के लिए आवाज नहीं लगाते । पेटी फिर भी मेरी ही है । फिर मुझे पछतावा ऐसा हुआ कि उस जगह से गुजरते समय तक वह प्रसंग याद आता ।' महापुरुषों की ऐसी छोटी बातें कितनी बड़ी होती है, यह कहने की आवश्यकता है ?

ध्यानावस्था

श्रीरामकृष्ण परमहंस की ध्यानावस्था और समाधि अवस्था के विषय में श्री हेमंतभाई ने पढ़ा था, इसलिए समाधि देखने की उनकी इच्छा थी । वहाँ एक योगाश्रम के पूज्य श्री अमरनाथजी ने बातचीत के दौरान कहा, 'मैं ऐसी समाधि दिखाऊँ, यदि कोई दस हजार रूपया दे तो ।' श्री हेमंतभाई ने मन में एक हजार रुपए देने की तैयारी की । इसलिए यह न हुआ । इसी दौरान १९३८ में वे करांची गये । करांची में पूज्य श्रीमोटा उस समय श्री परसदभाई मेहता जिन्हें 'बापु' के दुलार नाम से बुलाते, उनके वहाँ रहते थे । तब उनकी वह इच्छा बिना कहे संतुष्ट हुई थी वैसा श्री हेमंतभाई बतलाते हैं । श्री हेमंतभाई कहते हैं 'पूज्य

श्रीमोटा अनेक बार जानबूझकर ध्यान में बैठते और देहभान बिलकुल चला जाता । कई बार इसतरह ध्यान में गये हों और एकाएक समाधि में चले जाते । समाधि बहुत लंबे समय तक नहीं रहती थी, क्योंकि उन्होंने हमेशा संसार के कर्तव्यों को संभालकर ही अपनी अनुभवदशा को पाया है । यह ध्यान या समाधि के दौरान उनकी आँखें अधिकतर बिलकुल खुली और फैली रहतीं, पर आँख बिलकुल हिलती नहीं थी । शरीर बिलकुल लकड़ी जैसा अक्कड़ । कितनी ही बार तनकर बैठे बैठे भी पड़े बिना इसतरह स्थिर हो जाते । पूज्य बापु (स्व. श्री परसदभाई एन. मेहता) ने इसप्रकार की समाधि का नाम खोजा था – 'शांभवी मुद्रा' – शंभु की – महादेव की मुद्रा, जिसका लक्षण था अंतरलक्ष बहिर दृष्टि ।'

सच्ची कला....विद्या

इस पुस्तक के लेखक को हस्तरेखाशास्त्र में कुछ रुचि थी, इसलिए वे एक विशेषज्ञ मित्र को किसी न किसी हाथ के रेखा की छाप भेजते और अभ्यास करते । १९६३ की फरवरी में उन्हें पूज्यश्री के प्रथम दर्शन हुए और कुछ निकटता पाते ही उनकी हस्तरेखाओं की छाप लेने की वृत्ति जागी । उस संबंध में उन्होंने विनती करते पूज्य श्रीमोटा को तुरन्त ही प्रेम से उनके दोनों हाथ आगे रखे और कहने लगे 'हाँ, हाँ ले लो छाप और मुझे कहना कि मेरे नसीब में क्या है ? ।' एक व्यक्ति ने हाथ देखकर कहा, 'मोटा, आपके हाथ में हाथीघोड़ा का सुख लिखा है !' मैंने कहा, 'अरे भाई ! गधे का भी सुख नहीं है ।' सब हँस पड़े ।

और उनकी हथेलियों को काली स्याही से काला करके उनके छाप लिये । फिर वह छापवाला कागज उनके हस्ताक्षर (ओटोग्राफ) के लिए आगे रखा तो उन्होंने ऐसा लिखा 'जीवन को जानो, समझो और अनुभव करो । यही सच्ची कला और सच्ची विद्या - मोटा । ता. ३१-१२-६३ ।'

इस पर से अनेक समागम में आते भावुकों को पूज्यश्री किस तरह जीत लेते, उसका ख्याल आएगा । यह उनकी अद्‌भुत कला थी, कहो प्रेमकला थी । इसलिए ही पूज्यश्री के साथ सत्संग बढ़ते यह लेखक की हाथ देखने की रुचि सूख गयी ।

दूसरी एक बार उनकी हस्तरेखाओं पर बातचीत होते उन्होंने पूछा 'इन हाथों की रेखाओं के आभारी यह 'मोटा' है कि 'मोटा' के कारण यह रेखाएँ हैं ?' 'अलबत्त, मोटा के कारण ।'

मदद

श्रीमोटा ने अपार गरीबी सहन की थी, इससे दूसरों की स्थिति समझते थे और इससे उन्होंने कर्मयोग अपनाया था । चंदा इकट्ठा करते और समाज के चरणों में रख देते । उन्होंने कब से ऐसी प्रवृत्ति शुरु की होगी यह निश्चित नहीं कह सकते, पर पूज्यश्री हरिजन सेवा में थे, तब से उन्होंने अपनी शक्ति अनुसार शुरुआत की, क्योंकि करुणा और कदरभावना यह उनमें पहले से ही स्वभावगत थीं । सार्वजनिक रूप में चंदा इकट्ठा करने का एक छोटा प्रसंग १९५१ में अहमदाबाद में हुआ । श्री हेमंतभाई बतलाते हैं । यह हम देखे, क्योंकि उसके द्वारा श्रीमोटा की मौलिक रीति का पता चलता है ।

अहमदाबाद के सांई समाज के संचालक श्री रतिलाल शेठ ने पूज्य श्रीमोटा को सांई भक्तों की सभा में सत्संग के लिए आमंत्रण दिया । श्रीमोटाने थोड़ा बोलकर घोषित किया, 'जिस किसी को प्रश्न पूछना हो वह पूछे ।' उसका उत्तर वे देंगे, पर प्रत्येक प्रश्न पर अमुक आने या रुपए प्रश्नकर्ता को देने हैं और वह राशि अहमदाबाद के रक्तपित्ताश्रम को भेजनी है, ऐसा भी उन्होंने घोषित किया । सभा के अंत में सड़सठ रुपए इकट्ठे हुए और उस आश्रम को भेज दिए !

❑

॥ हरि:ॐ ॥

खण्ड : ३

हलकी पलों में श्रीमोटा

सभी एकादशी रखी, सभी व्रत आचरित किये,
सभी आचार-विचार पूरी सजगता से किये ।
देवालय जाकर दर्शन किये, करे समय समय पर
तब भी लगनी न लगी तो, गिनो सर्वस्व बाकी है ।

– मोटा

एक भाई ने अपनी पत्नी को मारा । उस घटना के बारे में पूज्य श्रीमोटा ऐसा लिखते हैं 'हृदय में जो दु:ख उठा है, वह शांत नहीं होता । कल रात की प्रार्थना में यही उद्‌गार थे । यदि उन दोनों ने इसे सुना होता तो फिर उस रात में यह न हुआ होता । स्त्रियों के साथ यदि कोई हैवानियतभरा व्यवहार करता है तो जीव स्थिर नहीं रह पाता । नड़ियाद में भी एक पटेलभाई के यहाँ सोया था । वे अपनी पत्नी को पीटने लगे और मैं उसी रात अर्धरात्रि हो गयी, तब भी वहाँ से भाग निकला !'

❑

सांईबाबा की बात करते हुए उन्होंने कहा 'शिरड़ी में बापु (श्री पी. एन. मेहता) ने अट्ठाईस दिन का मौन लिया था । मुझे साथ लेकर गये थे । तब उनके साथ एक बार मैं समाधिमंदिर में बैठा था । आरती हो रही थी, तभी मेरी समाधि लग गयी ।

इसलिए बैठा ही रहा । बाबा अपना वरद हाथ ऊँचा करके आशीर्वाद देते दिखे । पास में आये और एक थप्पड़ मारकर कहा, 'अरे, आरती के समय सभी खड़े हुए हैं और तुम क्यों बैठे रहे ? खड़ा हो !' मैंने उनकी माफी माँगी और खड़ा हुआ... उस समय के दौरान एक बार सांईबाबा के भक्त अब्दुलबाबा मुझे देखकर दुसरों को बताते हुए कहते, *'हाँ, आमचा नातीला आहे'* - यह हमारी न्यात के हैं !

❑

एक स्वजन जल्दी सुबह रांदेर आश्रम में आए । इससे एक सेवक को पूज्य श्रीमोटा ने कहा, 'रतिभाई बहादुर आये हैं, उन्हें चायपानी और नाश्ता करवाओ । भाई, यह तो लाँच-रिश्वत का समय है !' उपस्थित रहनेवालों में हँसी फैल गयी ।

❑

मुंबई की एक सामाजिक कार्यकर्ता बहन ने मौनमंदिर में बैठने से पहले पूज्यश्री के पैरों में पड़कर प्रार्थना की, 'मोटा, मुझे मुक्ति मिले ऐसी कृपा करो ।'

'कृपा ऐसे नहीं मिलती; मुझमें ऐसी शक्ति नहीं और दस दिन मौन में बैठने से मुक्ति नहीं मिलती ।' श्रीमोटा ने समझाया ।

❑

पूज्य श्रीमोटा ने श्री वसंतभाई कोटक (मुंबाई) को देखकर कहा, 'भाई, तुम इसतरह आते रहना, मुझे अच्छा लगता है । बाकी, कौन मेरे पास आता है ? तुम्हारे आने से मेरी इज्जत

बढ़ती है ।' (सब हँस पड़े) वसंतभाई ने कहा, 'नहीं, मोटा ! हमारी इज्जत बढ़ती है ।'

❑

एक भाई को पूज्यश्री ने कहा 'आज सभी साधु-संन्यासी भी लीक पर चलते हैं । मंदिर निर्माण, यज्ञ करना आज आवश्यक नहीं है । अरे ! तुम्हारे मंदिर भी उखाड़ डालेंगे ऐसा समय आएगा ।'

❑

एक पारसी युवक को कहा, 'शादी करना, पर किसी गरीब लड़की के साथ, क्योंकि पैसेवाली लड़की सहन नहीं करेगी । यद्यपि सभी पैसेवालों की लड़कियाँ ऐसी नहीं होती, कोई कोई अच्छी भी होती हैं । तब भी गरीब घर की लड़की अच्छी । मैं गरीब हूँ, इसलिए ऐसा नहीं कहता हूँ ।'

❑

प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती वर्षाबहन अडालजा एक बार श्रीमोटा के दर्शन के लिए आयीं । उन्हें देखकर श्रीमोटा ने कहा 'सुंदर नाम है ! बरसते रहना ! तुम्हारी पुस्तक... *'मारे एक घर होय ।'*★ मुझे पसंद आयी थी... पर मुझे भी घर चाहिए... मेरे पास रहने के लिए कुछ नहीं ।' 'मोटा, पूरा विश्व ही आपका घर है न !' वर्षाबहन ने कहा । श्रीमोटा ने सास्मित हाथ जोड़े ।

❑

★(इस पुस्तक को 'हरि:ॐ आश्रम प्रेरित भगिनी निवेदिता पारितोषिक' मिला था ।)

कोई जीव श्रीमोटा का 'स्वजन' जैसा हो जाता, तब उसे अपनी आदत पर उनके प्रहार झेलने के लिए तैयार रहना पड़ता । उन्हें बेदरकारी, शिथिलता, मंदगति, भुलक्कड़पन, समयपालन में अनियमितता - यह सब पसंद नहीं था । एक बार सुरत आश्रम से उन्हें बाहर जाना था । मुंबाई से आये रतिलाल मेहता को उन्होंने कहा, 'रतिभाई पाँच मिनिट में तैयार हो जाओ, शहर में जाना है ।' और वे भाई कपड़े बदलने लगे। साथ में कोई चीज ले जानी थी, पर वह मिल नहीं रही थी । पाँच मिनिट हो गये, **इसलिए श्रीमोटा की आवाज सुनाई दी, 'क्यों रतिभाई, कितनी देर ?' ऐसा करोगे तो स्त्री का अवतार आएगा !'** नरम उलाहने के साथ मनोरंजन करने का इसप्रकार कभी कभी अवसर मिल जाता ।

❑

पूज्यश्री हमारे यहाँ मुंबाई में थे, तब कितनी बहनें आकर बैठी । कोई भी कुछ सत्संग की बात करे नहीं । उसमें एक बहन आँखे बंद करके नजर नीचे करके बैठी थीं । उनकी पहचान श्रीमोटा को देते हुए कहा, 'यह बहन आपके दर्शन करने पहली बार आयी है, पर उन्होंने आपकी दो तीन पुस्तके पढ़ी हैं।' 'खाली ढेर करने से अच्छा है पढ़ना ।' श्रीमोटा बोले । और पूज्यश्री ने कहा, 'जीवनदर्शन' पढ़ना । उपन्यास जैसा लगेगा ।

हाँ जी ।

❑

बोम्बे सेन्ट्रल स्टेशन के आरामगृह में पूज्यश्री एक कोच पर बैठे थे । कितने ही भक्त आसपास खड़े थे, कितने नीचे बैठे

थे । तब खड़े हुए भक्तों को अपने पास आकर बैठने को कहा, 'खड़े मत रहो ।' उनके पास में उन्हें छूकर कैसे बैठा जा सकता था ? संकोच होता था । इसलिए उन्होंने कहा, 'बैठ सकते हो ।' इस प्रकार, यदि जगह न हो तो अपने पास प्रेम से बिठाते । ऐसी उनकी नम्रता थी । जरा भी बड़ाई नहीं ।

❑

'मोटा, पहले मुझे आश्रम में दौड़कर आने का बहुत मन होता था और तुरन्त दौड़कर आता था । अब हजार विचार करने पड़ते हैं ।' तब श्रीमोटा ने कहा, 'यह बताता है कि मन का अभिगम इसके प्रति फीका पड़ गया हो !'

❑

मुंबाई में श्रीमोटा के साथ हम सभी एक जन के यहाँ गये थे । वहाँ यजमान भाई ने हमारे साथ पहचान की और कहाँ रहते है, यह जानकर बोलने लगे, 'तो आपकी पड़ोश में एक मारवाड़ी रहता है, वह मेरे पैसे नहीं दे रहा और रोज धक्के खिलवाता है । आप उसे जानते हो ?' 'हाँ, मैं उनकी ही लाईन में रहता हूँ ।' तुरन्त ही श्रीमोटा मनोरंजन करते हुए बोले, 'रतिभाई, तुम उनकी लाईन के हो ?' और सभी हँस पड़े । श्रीमोटा ने स्नातक होने के लिए साहित्य का विषय लिया था और उपन्यास लिखना शुरु किया था पर वे महात्माजी की चेतावनी के कारण अधूरा रहा । शब्दश्लेष की कला में भी वे पारंगत थे ।

❑

सांईबाबा के चमत्कार की बात निकलते ही –

श्रीमोटा : यह बात सच है, पर इससे हमें कितना लाभ हुआ ?

भक्त : श्रद्धा बढ़ी ।

श्रीमोटा : इसे किस तरह साबित करोगे ? कितने आगे बढ़े ?

भक्त : हाँ जी । हम आगे बढ़े नहीं है ।

श्रीमोटा : श्रद्धा बढ़ने के कारण हम में अधिक उत्साह, अधिक तीव्रता और *स्पोन्टेनियस* – सहज भावना – उद्‌भव होने चाहिए ।

❑

एक भाई पूज्य श्रीमोटा के पास आकर नमस्कार करके बैठे । श्रीमोटा ने उन्हें पूछा 'कैसे पधारना हुआ ?'

'आपके दर्शन करने आया हूँ ।'

'ऐसा मत कहो; मिलने आया हूँ । यों कहोगे तो चलेगा । ऐसा उत्तर मुझे अधिक अच्छा लगेगा, क्योंकि दर्शन करनेवाले के लक्षण अलग होते हैं । मेरा काम, भगवान के निमित्त से करोगे तो ये मेरे सच्चे दर्शन है । दंभ छोड़ो ।' पूज्य श्री हमेशा कहते, 'मैं किसी का गुरु नहीं हूँ । मेरा कोई शिष्य नहीं है ।' निकट के भक्तों को 'स्वजन' गिनते, 'शिष्य' नहीं । 'स्वजनों' को पत्र लिखते तो पत्र के अंत में 'मोटा का सप्रेम बहुत-बहुत प्यार' अवश्य लिखते । किसी के आगे कोई 'स्वजन' की पहचान देते कहते, 'ये मेरे मित्र हैं ।' ऐसी उनकी 'स्वजनों' को

प्रभु के मार्ग में मोड़ने की अनोखी प्रेमकला थी ।

❑

१९७० में एक बार पूज्य श्रीमोटा चारेक भक्तों के साथ डुमस में रास्ते पर घूमते थे, तब एक जन को कहा, 'दिलीप, कोकाकोला मिलता है ? देख ?' भाई दिलीप चार बोतल लेकर आया । पूज्य श्रीमोटा एक ही घूंट में पी गये और फिर कहा, 'बहुत कम पानी है !' 'हाँ मोटा, बोतल की दिखावट बड़ी पर पानी कम ।' 'सभी जगह ऐसा ही होता है,' श्रीमोटाने व्यंग्य में कहा, विनोद के साथ कटाक्ष ।

एक बार मुंबाई में श्री हरमुखभाई जोगी के यहाँ पूज्य श्रीमोटा थे, तब वर्षाऋतु थी । एक दिन भारी वर्षा, बादलों की गर्जना, गड़गड़ाहट और बिजली की चमक के साथ बरस रही था । तब श्रीमोटा हमसे बात करते करते कहें, 'ऐसे समय में हमारे जीवन में खमीर और खुमारी प्रगट हो तब सही ।' उन्हें कायर, तनमन से निर्बल जरा भी पसंद नहीं थे । हिंमत, साहस, मर्दानगी, धीरज विकसित करने और कठिनाईयों के सामने टक्कर लेना हमेशा सिखाते ।

❑

अनुभवी को जब निमित्त मिलता है, तब वह अपनेआप प्रगट होता है, व्यक्त होता है । पर वह भी वह संग्रह नहीं करता, समर्पण करके खाली का खाली ही रहता है ।

❑

पच्चीस प्रतिशत परमार्थ करो तो हम सरकार के काम से भी आगे निकल जाएँगे ।

❑

एक बहन अपने संगेसंबंधिओं के साथ श्रीनाथजी की यात्रा पर जा रही थीं । वे सभी श्रीमोटा के पैरों में पड़ने आये । तब **श्रीमोटा ने उस बहन को पूछा 'अकेले जा रही हो या पति के साथ ?' 'अकेली जा रही हूँ ।' 'तो यात्रा फलदायी न होगी ।' श्रीमोटा ने कहा, 'आजकल लोग यात्रा के नाम पर फिरने जाते हैं । जब तक तुम श्रीनाथजी पहुँचकर दर्शन करो नहीं, वहाँ तक रास्ते में संसारी बात मत करना ।** इतना ध्यान में रखना ।'

१९३८ के साल में पूज्य श्रीमोटा को खूब जुलाब आदि हो गये । दस्त में खून भी पड़ता था । इसलिए अहमदाबाद में, वाडीलाल साराभाई हॉस्पिटल में कुछ दिन तक रहना पड़ा था और फिर आराम के लिए बापु (श्री परसदभाई मेहता) के आमंत्रण को मान देकर करांची गये । तब श्री हेमंतकुमार नीलकंठ भी उनके साथ रहते थे और स्वयं की तबियत सुधारने योगासन सीखे हुए वे करते थे । इसलिए उन्होंने श्रीमोटा को आसन करने को कहा । श्रीमोटा ने कहा कि ऐसा आसन बताओ कि जिसमें पड़े रहकर जाप तो चालू रह सकें । श्री हेमंतभाई ने कहा, 'आपका मन पूरे समय जाप में ही रहता है, इसलिए आपके शरीर को आराम नहीं मिलता । तो कुछ दिन के लिए, जाप छोड़ दो तो नींद आये और तबियत ठीक रहे ।' (तब उन्हें

नींद भी नहीं आती थी ।) पर श्रीमोटा ने ऐसा करने से मना किया । अजपाजप जिसे हुआ हो, श्वासोश्वास में 'हरि:ॐ' का गुंजन सहजरूप से चलता हो, वह किस तरह रुक सकता है ? और अपनी ऐसी बीमारी के कारण पूज्यश्री तब क्वचित ही किसी को समझाते, क्योंकि समझाने से कोई अर्थ नहीं निकलेगा ।

❑

॥ हरि:ॐ ॥

खण्ड : ४

बीमारी और प्रवास

यह है प्रताप पद की रजधूली का,
ढिंढोरा पीट कर जग को कहूँ – ध्यान में लेना ।
– मोटा

बीमारियाँ

नेक बगल में अनेक फोड़े, खून के दस्त १९३८ में । १९४३ में त्रिची में अत्यन्त ठंडा पड़ जाना, तब खूब सोंठ घिसकर लगायी थी । १९४४ में सख्त पीलिया और ऐसी बीमारी में चोरवाड़ से त्रिची डॉक्टर की सलाह की अवगणना करके गये । हाई और लो ब्लडप्रेशर – हाई २३५, लो ६५, १९४२ में । १९७० से शरीर का वजन घटना । स्पोन्डिलाईटिस (करोडरज्जू के मनके का रोग) और पैरों की शक्ति गयी । मधुप्रमेह हो और मिटे, सिर और आँख का रोग–झामर, दम ; १९७५ से किसी भी भक्त के वहाँ रहने जाने का बंद । १९७५–७६ के दौरान खुराक नहींवत ली जाती; पढ़ना–लिखना बिलकुल बंद । उत्सव बंद । स्वजनभक्तों को आश्रम में आने की मनाही । उनके शरीर की खबर पत्र द्वारा पूछने पर भी मनाही । अनेक वर्षों तक नामस्मरण, सत्कर्म आदि जो करने को कहा है, उतना करोगे तो मुझे अच्छा लगेगा; स्थूल शरीर के दर्शन कब तक करोगे ?

शरीर तो जानेवाला ही है। शरीर यह गुरु नहीं। चेतन से चिपको, यह उनका उपदेश दृढ़ करने के लिए पूज्यश्री अंतिम देढ़ दो वर्ष से अलग रहने लगे थे।

प्रवास

पास में पैसे न होने पर भी, निमित्त बनते, किसी के आमंत्रण को मान देने या चंदा इकट्ठा करने के लिए उन्होंने कितने सारे प्रवास किये थे! रंगून, आक्याब (म्यानमार-बर्मा में) (उनके 'बापु' के साथ), कलकत्ता, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, अमृतसर, लाहोर, कश्मीर (जिन्हें पढ़ाते उनके मातापिता के साथ - पिता पागल जैसे होने से संभालने) करांची, लींबड़ी, वढ़वाण, जूनागढ़, भावनगर, चोरवाड़, शिरडी-साकोरी, पूना, पंचगिनी, महाबलेश्वर (एक हरिजन विद्यार्थी के लिए) और हरिजन फंड के लिए। श्री नंदुभाई के साथ दक्षिण हिंद के सभी बड़े शहर तथा कोलंबो, हिमालय की यात्रा तीन बार और दो बार नर्मदाजी की परिक्रमा (साधनाकाल दौरान)। इनके अलावा अनेक छोटे बड़े गाँव और शहरों के प्रवास चंदा इकट्ठा करने के लिए। उद्देश्य के बिना घूमने फिरने के लिए वे कभी कहीं गये नहीं।

❑

॥ हरि:ॐ ॥

खण्ड : ५

बिदाई

'गुरुमहाराज जीवित प्राणी है ऐसा नहीं,
यह तो उन्हें या हमें जरूरत पड़े जरूरत पड़े
मनुष्य जैसे हो हमारे आगे होकर,
सब कुछ हमारा हल कर देते हैं ।
सही वक्त में सही वक्त के भक्त का न अटका रखते हैं ।
निज के भक्त का काम कभी भी न अटकाते है ।'

– मोटा

(अंतिम पत्रों में से एक पत्र)

जिस शरीर से अनेक कठिन साधनाओं का साक्षात्कार हुआ था, समाजकल्याण की योजनाओं के लिए एक करोड़ से अधिक राशि का चन्दा इकट्ठा किया । वह शरीर अब जरजरित हो जाने पर पूज्य श्रीमोटा ने करीब बारह मास से प्रवृत्तियाँ समेटनी शुरु कर दी थीं; उनके स्थूल शरीर का मोह छोड़ने भक्तों को आदेश दिया था; और हमेशा की तरह, नये अवतार में क्रियाशील, गतिशील होने के लिए अपने 'रोग से घिरे देह को.....आनंदपूर्वक' छोड़ने का निश्चित किया । ता. १९-७-'७६ के दिन एक चिठ्ठी लिखकर रखी ।

विज्ञापन-प्रचार से हमेशा दूर रहें पूज्य श्रीमोटा ने ता. २३-७-'७६ की सुबह से पूर्व डेढ़ बजे, सांईबाबा जैसे अवधूत

की तरह मात्र छः जनों की उपस्थिति में, लगभग साड़े नौ घण्टे की समाधि के बाद जड़ देह को विदाई दी । उनकी उस चिट्ठी में व्यक्त हुई इच्छा अनुसार छः जनों की उपस्थिति में ही उनके शरीर को महीसागर के किनारे अंतिम संस्कार किया गया । उसके बाद दुनिया को पता चला कि उनके प्राण रूपी हंस उड़ गये !

हजारों को अपने दिव्य प्रेमामृत का पान करानेवाले पूज्य श्रीमोटा कैसे चूपचाप चले गये, ऐसा सोचते हैं, तब गीता कथित निरासक्त कर्मयोगी के दर्शन हुए बिना नहीं रहते । वे कर्मयोगी थे, अवधूत थे, परमहंस थे । कर्मयोग अग्र होने पर भी शास्त्रोक्त चारों प्रकार के परमहंसो का सुभग सुमेल उनमें अनुभव होता था ।

उनका अंतिम आदेश था – 'मेरी मृत्यु निमित्त जो कोई राशि फंड इकट्ठा हो, उसका उपयोग गाँवो में शाला के कमरों बांधने में करें ।' उनके निःस्पृही जीवन की असर समाज पर ऐसी हुई है कि उनके जाने के बाद, उनके आदेशानुसार समग्र गुजरात की पिछड़े गावों में शाला के कमरों के निर्माण के लिए, धन का प्रवाह बहने लगा । आज कमरों का निर्माण हो रहा है । इसके लिए कुल फंड रुपए १,००,४३,७७५ की राशि दी गई । ऐसे इस विरल मुक्तात्मा का विरल स्मारक !

॥ हरिः ॐ ॥

(आज १९९० के उत्तरार्ध में रूपए ३,९४,१९,६६९ का फंड दिया है ।)

पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना

जन्म : ता. ४-९-१८९८ ; भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, संवत १९५४ ; सावली, जिल्ला वडोदरा, नाम **:** चूनीलाल ।

मातापिता : माता का नाम श्रीमती सूरजबा; पिता का नाम श्री आशाराम भगत । व्यवसाय से रंगरेज और 'अल्ला की गाय जैसे ।' भजनानंदी होने के कारण 'भगत' के रूप में प्रख्यात । (पूज्य श्रीमोटा अपने साधनाकाल के दौरान 'भगत' के रुप में प्रख्यात, बाकी उपनाम 'भावसार') १९१६ में पिता की छत्रछाया गयी । माता का स्वर्गवास १९४१ ।

बचपन से नौकरी और अध्ययन : किशोर चूनीलाल अपनी पाँच वर्ष की उम्र के बाद गरीबी की कठिनाइयों का प्रारंभ । आर्थिक तंगी के कारण लगातार अध्ययन नहीं हो पाया । गोधरा में अनाज के व्यापारी की दुकान में मासिक वेतन पाँच रुपए में नौकरी । स्वयं की प्रामाणिकता शेठ को नापसंद होने के कारण नौकरी का त्याग । दुबारा पढ़ना प्रारंभ । कालोल में नयी खुली ऍग्लो वर्नाक्युलर मिडल स्कूल में चपरासी का काम करे और पढ़ाई करे । उम्र बढ़ जाय तो मामलतदार नहीं हुआ जाएगा, इस दहेशत से नियमानुसार असंभव होने पर भी, डेढ़ वर्ष में चार कक्षाएँ पास की ।

मैट्रिक : १९१९ में पेटलाद की हाइस्कूल में से उच्च कक्षा में उत्तीर्ण ।

वडोदरा कॉलेज में : १९१९-२० के दौरान वडोदरा की कॉलेज में ।

कॉलेज त्याग : महात्मा गाँधीजी के आह्वाहन को मान देकर ता.६-४-१९२१ के दिन कॉलेज का त्याग ।

गुजरात विद्यापीठ में : भाषा और साहित्य के विषय लेकर स्नातक होने जुड़े, पर महात्माजी के उद्बोधन से परीक्षा के तीन महिने पूर्व ही अध्ययन छोड़ा और रचनात्मक कार्य में जुड़े सन् १९२१ ।

हरिजन सेवा : १९२१ के दिसम्बर से अहमदाबाद-साबरमती आश्रम में । १९२२ से नड़ियाद में 'श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ' हरिजन सेवा का दृढ़ निश्चय ।

'तुज चरणे' : एक पादरी की चुनौती को लेकर प्रथम काव्य रचना 'तुज चरणे' और १९२८ में उसका प्रथम प्रकाशन । उसकी आय में से हिमालय की प्रथम यात्रा ।

नर्मदाजी में छलांग : १९२२ में मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास पर दैवी रक्षा ।

'हरिः ॐ' जप ने की सलाह : मिरगी की बीमारी से तंग आकर शांति के लिए नर्मदाजी के किनारे सुरपाणेश्वर समीप एक मंदिर में ठहरे । वहाँ रहते एक महात्मा की सेवा की । महात्मा ने मिरगी की बीमारी मिटाने 'हरिः ॐ' का जप करने की सलाह दी । पर नहीं रुचा । इसी दौरान वडोदरा में दूसरी मंजिल पर मिरगी आने से गिर गये । बेहोशी की हालत में उन महात्मा के दर्शन हुए और पुनः 'हरिः ॐ' जपने की आज्ञा । अंत में आज्ञापालन के कारण पाँचेक महीने में रोग मिटा, इससे 'आँख खूल गई ।'

दीक्षा : सांईखेडा (म.प्र.) में रहते समर्थ धूनीवाले दादा श्रीकेशवानंदजी 'प्रेरित' करने से श्री बालयोगी महाराज ने नड़ियाद आकर १९२३ के प्रारंभ में दीक्षा दी और उसी वर्ष में श्रीसद्गुरु केशवानंदजी के प्रथम दर्शन हुए । और तब से भजन-लेखन और रात में स्मशानवास ।

विवाह : माता के हठ के कारण १९२६ मे विवाह । पर पत्नी विवाह के बाद तुरन्त ही पियर गई और चारेक महीने में स्वधाम पहुँच गई ।

नर्मदाजी की परिक्रमा : पहली बार १९२६ में ।

सर्पदंश : १९२७ के मार्च महीने में बोदाल हरिजन आश्रम का उद्घाटन सरदार साहब के शुभ हस्त से । उसी रात सर्पदंश । जहर की असर का सामना ७६ घण्टों तक 'हरिः ॐ' जोर जोर से बोलकर रटन । इससे अजपाजप । साड़े तीन वर्ष में मंत्र सिद्धि ।

हिमालय की यात्रा : प्रथम बार १९२८ में ।

मन की नीरवता का साक्षात्कार : १९३० के लगभग । तब से वर्षों के वर्षो तक पूरी रात जागृत दशा में । तब भी गुजरात हरिजन सेवक संघ का काम १२-१२ घण्टे करना - सभी 'भावना के प्राबल्य के कारण ।'

जेलवास : १९३० से १९३२ के दौरान कुल दो वर्ष तक साबरमती, वीसापुर, नासिक और यरवडा । इसके अलावा लाठी-मार और दंड की प्रसादी, यद्यपि दंड भरने में तो असमर्थ थे । इसलिए घर का सामान, भजन की लिखी नोटबुक उठा ले गये ।

सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार : १९३४ में गीता के पुरुषोत्तम का साक्षात्कार ।

गुजरात हरिजन सेवक संघ के सहमंत्री : १९३४ से १९३९ ।

घोर साधनाएँ : अधिकतर रात्रिनिवास स्मशान में । प्रत्येक वर्ष में एक महीने की छुट्टी हरिजन सेवक संघ (साबरमती) से लेकर बिलकुल घोर और निर्जन जंगल जैसी जगह में – मात्र जलाशय पास हो वैसी जगह – साधना के लिए जाते । चित्रकुट और कच्छ (भुज) जहाँ किसी को रात रहने की रजामंदी न हो ऐसी भयंकर जगह में रात रहना । मध्यप्रदेश के निर्जन स्थान में लगभग एक महीने तक स्वमलमूल पर रहकर साधना । हिमालय में अघोरीबाबा के पास जाना, जानलेवा बीमारी में पड़ना, पर दैवी बचाव, १९३४ में । जबलपुर के पास धुंवाधार के प्रपात के पास छक्के छूट जाय ऐसी एकांत गुफा में इक्कीस दिन तक रहना । साधना के स्थान पर जाने से पहले अधिकतर गुरुआज्ञा सूक्ष्म रुप से मिलती, सुनाई देती; उन उन स्थलों के *'विजन'* फिल्म की तरह दर्शन होते और वे जगह खोज निकालते और बैठ जाते । श्रीउपासनी महाराज के आश्रम (साकोरी) में छः सात दिन तक स्व-मलमूत्र के बिस्तर में ध्यान में लग जाना । भर गर्मी में नर्मदाजी के एक निर्जन घाट पर बिलकुल नग्न अवस्थामें बहुत सारे धधकते उपलों की तिरसठ धूनी की (इक्कीस धूनी के तीने वृताकार यानी कुल तिरसठ धूनी) के बीच एक शिला पर सुबह से शाम तक साधना में बैठे रहना और शाम

को केवल कड़वे नीम का रस दो कटोरी पीना । ऐसी साधना एक महीने तक की । इसके अलावा अन्य कितने स्थान पर गये जिसका पता नहीं ।

अनेक में एक का दर्शन : गुरुमहाराज की प्रेरणा से अनेक महात्माओं के पास से प्रसादी प्राप्त हुई, पर उन सभी के पास आपश्री कारणवशात् ही अपने सद्गुरु की भावना दृढ़ कर बैठते । श्रीजानकीदासजी, श्रीसरयूदासजी, श्रीगोदड़िया महाराज (प्रकाशानंदजी) साकोरी के श्री उपासनीबाबा, शिरडी के श्रीसांईबाबा, श्रीतेजुद्दीनबाबा, श्री अक्कलकोट के स्वामीजी महाराज (अंतिम तीनों ब्रह्मलीन होने पर भी) आदि के पास से साधना क्षेत्र में मदद मिली है । अंतिम दो के विषय में उन्होंने कुछ लिखा नहीं है या किसी को कहा नहीं है, क्योंकि उनके कोई साक्षी न थे । इसके अलावा डाकोर में एक रास्ते पर मैलेकुचले पड़े रहे 'मगरमच्छ' मस्त फकीर – के पास सद्गुरु के प्रेरित करने पर जाते ।

श्री सांईबाबा की प्रसादी : करांची १९३८ में काली चौदश की मध्यरात्रि में श्री सांईबाबा की कठोर परीक्षा में से गुजरना और प्रसादी पाना । इसके अलावा दोतीन बार उनके स्थूल दर्शन और मार्गदर्शन ।

निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार : ता. २९-३-'३९, वि.सं. १९९५, काशी में रामनवमी के दिन साक्षात्कार । उसके बाद साधकों को व्यक्तिगत मार्गदर्शन, पत्रलेखन आदि ।

गुजरात हरिजन सेवक संघ को रामराम : १९३९ के सितम्बर में गुजरात हरिजन सेवक संघ को रामराम करके लोकप्रीत्यर्थ काम करने लगे ।

संघ को मदद : गुजरात हरिजन सेवक संघ छोड़ा, तब भी उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ने पर १९४२ से १९४६ के दौरान अच्छा ऐसा फंड इकट्ठा करके दिया ।

'मोटा' : १९४० से १९४६ तक दक्षिण में त्रिची और कुंभकोणम् में श्रीनंदुभाई और उनके मामा आदि के साथ निवास । १९४६ से उन्हें 'मोटा' कहना प्रारंभ हुआ ।

प्रथम हवाईजहाज प्रवास : 'पैदाईश के दिन हवाईजहाज से' ता. ९-९-१९४० के दिन अहमदाबाद से करांची जाने का साठ रुपयों के साथ (श्रीसांईबाबा का) गूढ़ आदेश और उसका पालन । इस प्रवास के दौरान बहुत ही उच्च प्रकार के ध्यान का अनुभव हुआ ।

सत्ताईश दिन का उपवास : १९४३ फरवरी में गाँधीजी के उपवास और उनके उपवास दौरान पेशाब में जहरीले जन्तुओं के दर्शन के बाद; गाँधीजी के प्रति तादात्म्य भाव के कारण वह दिखने बंद हुए और श्रीमोटा के पेशाब में वे दिखे । (ता. २४-२-४३)

हिमालय की दूसरी यात्रा : १९४५ में श्री नंदुभाई और उनके कुटुंबीजनों को लेकर हिमालय की दूसरी बार की यात्रा की ।

मौन एकांत साधन-पद्धति का श्रीगणेश : हरिजन

आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद, मीरां कुटिर में मौन-एकांत का आरंभ । (१९४६)

हरि:ॐ आश्रमों की स्थापना : (१) दक्षिण में कुंभकोणम् में १९५० । (२) नड़ियाद में ता. २८-५-१९५५ । (३) कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा, सुरत में १९५४ में तापी नदी के किनारे एक कमरे में । ता. २३-४-१९५६ से व्यवस्थित नींव पर, कुंभ रखने की विधि । १९६१ में नड़ियाद - रांदेर के आश्रम चेरिटेबल ट्रस्ट एक्ट के रूप में दर्ज हुए ।

गुणभाव द्योतक कार्य : १९६२ से प्रारंभ ।

देहोत्सर्ग : ता. १९-७-१९७६ के दिन नड़ियाद आश्रम में थे, तब अंतिम बिदाई लेने विषयक की चिट्ठी लिखकर रखी । उस अनुसार ता. २३-७-१९७६, शुक्रवार के तड़के सुबह डेढ़ बजे केवल छः जनों की उपस्थिति में अंतिम श्वास लिये और छः जनों की उपस्थिति में शरीर का अंतिम संस्कार । अंतिम आदेश – मेरे शरीर के मृत्यु निमित्त जो चंदा मिले उसका उपयोग गाँवो में शालाओं के लिए कमरे बनवाने के लिए करें । मेरा स्मारक या तुलसी क्यारा भी न करें ।' उनकी इच्छा फलीभूत हुई ।

॥ हरि:ॐ ॥